जो भक्तिपूर्वक कार्तिकेयका दर्शन और पूजन करता है वह शिवलोकको प्राप्त करता है। जो सदा शरवणोद्भव आदिदेव कार्तिकेयकी आराधना करता है, वह बहुत कालतक स्वर्गका सुख भोगकर पृथ्वीपर जन्म ग्रहण करता तथा चक्रवर्ती राजाका सेनापति होता है। (अध्याय ४२)

विजयासप्तमी-व्रत

युधिष्ठिरने पूछा—देव! विजयासप्तमी-व्रतमें किसकी पूजा की जाती है, उसका क्या विधान है और क्या फल है? इसे आप बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको यदि आदित्यवार हो तो उसे विजया सप्तमी कहते हैं। वह सभी पातकोंका विनाश करनेवाली है। उस दिन किया हुआ स्नान, दान, जप, होम तथा उपवास आदि कर्म अनन्त फलदायक होता है। जो उस दिन फल, पुष्प आदि लेकर भगवान् सूर्यकी प्रदक्षिणा करता है, वह सर्वगुणसम्पन्न उत्तम पुत्रको प्राप्त करता है। पहली प्रदक्षिणा नारियल-फलोंसे, दूसरी रक्तनागरसे, तीसरी बिजौरा नींबूसे, चौथी कदलीफलसे, पाँचवीं श्रेष्ठ कूष्माण्डसे, छठी पके हुए तेंदूके फलोंसे और सातवीं वृन्ताक-फलोंसे करे अथवा अष्टोत्तरशत प्रदक्षिणा करे। मोती, पद्मराग, नीलम, पन्ना, गोमेद, हीरा और वैदूर्य आदिसे भी प्रदक्षिणा करे तथा अखरोट, बेर, बिल्व, करौंदा, आम्र, आम्रातक (आमड़ा), जामुन आदि जो भी उस कालमें फल-फूल मिले उससे प्रदक्षिणा करे। प्रदक्षिणा करते समय बीचमें बैठे नहीं, न किसीको स्पर्श करे और न किसीसे बात करे। एकाग्रचित्तसे प्रदक्षिणा करनेसे सूर्यभगवान् प्रसन्न होते हैं। गौके घृतसे वसोर्धारा भी दे। किंकिणीयुक्त ध्वजा तथा श्वेत छत्र चढ़ाये और फिर कुंकुम, गन्ध, पुष्प, धूप तथा नैवेद्य आदि उपचारोंसे पूजन कर इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यसे क्षमा-प्रार्थना करे—

भानो भास्कर मार्तण्ड चण्डरश्मे दिवाकर।
आरोग्यमायुर्विजयं पुत्रं देहि नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व ४३। १४)

इस व्रतमें उपवास, नक्तव्रत अथवा अयाचित-व्रत करे। इस विजयासप्तमीका नियमपूर्वक व्रत करनेसे रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है, दरिद्र लक्ष्मी प्राप्त करता है, पुत्रहीन पुत्र प्राप्त करता है तथा विद्यार्थी विद्या प्राप्त करता है। शुक्ल पक्षकी आदित्यवारयुक्त सात सप्तमियोंमें नक्तव्रत कर मूँगका भोजन करना चाहिये। भूमिपर पलाशके पत्तोंपर शयन करना चाहिये। इस प्रकार व्रतकी समाप्तिपर सूर्यभगवान्‌का पूजनकर षडक्षर-मन्त्र (**'खखोल्काय नमः'**)-से अष्टोत्तरशत हवन करे। सुवर्णपात्रमें सूर्यप्रतिमा स्थापित कर रक्त वस्त्र, गौ और दक्षिणा इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए ब्राह्मणको प्रदान करे—

ॐ भास्कराय सुदेवाय नमस्तुभ्यं यशस्कर॥
ममाद्य समीहितार्थप्रदो भव नमो नमः।

(उत्तरपर्व ४३। २३-२४)

तदनन्तर शय्या-दान, श्राद्ध, पितृतर्पण आदि कर्म करे। इस व्रतके करनेसे यात्रियोंकी यात्रा प्रशस्त हो जाती है, विजयकी इच्छावाले राजाको युद्धमें विजय अवश्य प्राप्त होती है, इसलिये लोकमें यह विजया सप्तमीके नामसे विश्रुत है। इस व्रतको करनेवाला पुरुष संसारके समस्त सुखोंको भोगकर सूर्यलोकमें निवास करता है और फिर पृथ्वीपर जन्म ग्रहणकर दानी, भोगी, विद्वान्, दीर्घायु, नीरोग, सुखी और हाथी, घोड़े तथा रत्नोंसे सम्पन्न बड़ा प्रतापी राजा होता है। यदि स्त्री इस व्रतको करे तो वह पुण्यभागिनी होकर उत्तम फलोंको प्राप्त करती है। राजन्! इसमें आपको किंचित् भी संदेह नहीं करना चाहिये। (अध्याय ४३)

आदित्य-मण्डलदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं समस्त अशुभोंके निवारण करनेवाले श्रेयस्कर आदित्य-मण्डलके दानका वर्णन करता हूँ। जौ अथवा गोधूमके चूर्णमें गुड़ मिलाकर उसे गौके घृतमें भलीभाँति पकाकर सूर्यमण्डलके समान एक अति सुन्दर अपूप बनाये और फिर सूर्यभगवान्‌का पूजनकर उनके आगे रक्त चन्दनका मण्डप अंकितकर उसके ऊपर वह सूर्यमण्डलात्मक मण्डक (एक प्रकारका पिष्टक) रखे। ब्राह्मणको सादर आमन्त्रित कर रक्त वस्त्र तथा दक्षिणासहित वह मण्डक इस मन्त्रको पढ़ते हुए ब्राह्मणको प्रदान करे—

आदित्यतेजसोत्पन्नं राजतं विधिनिर्मितम्।
श्रेयसे मम विप्र त्वं प्रतिगृह्णेदमुत्तमम्॥

(उत्तरपर्व ४४।५)

ब्राह्मण भी उसे ग्रहणकर निम्नलिखित मन्त्र बोले—

कामदं धनदं धर्म्यं पुत्रदं सुखदं तव।
आदित्यप्रीतये दत्तं प्रतिगृह्णामि मण्डलम्॥

(उत्तरपर्व ४४।६)

इस प्रकार विजयसप्तमीको मण्डकका दान करे और सामर्थ्य होनेपर सूर्यभगवान्‌की प्रीतिके लिये शुद्धभावसे नित्य ही मण्डक प्रदान करे। इस विधिसे जो मण्डकका दान करता है, वह भगवान् सूर्यके अनुग्रहसे राजा होता है और स्वर्गलोकमें भगवान् सूर्यकी तरह सुशोभित होता है। (अध्याय ४४)

वर्ज्यसप्तमी-व्रत

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! धन, सौख्य तथा समस्त मनोवाञ्छित कामनाओंको प्रदान करनेवाली किसी सप्तमीव्रतका आप वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! उत्तरायणके व्यतीत हो जानेपर शुक्ल पक्षमें पुरुषवाची नक्षत्रमें आदित्यवारको सप्तमी-तिथि-व्रत ग्रहण करे। धान, तिल, जौ, उड़द, मूँग, गेहूँ, मधु, निन्द्य भोजन, मैथुन, कांस्यपात्रमें भोजन, तैलाभ्यङ्ग, अंजन और शिलापर पीसी हुई वस्तु—इन सबका षष्ठी तिथिको प्रयोग न करे। इन पदार्थोंका षष्ठीके दिन परित्याग कर केवल चनाका भोग करे और देवता, मुनि तथा पितर—इन सबका तर्पण कर भगवान् सूर्यका पूजन करे। घृतयुक्त तिल और जौका हवन कर भगवान् सूर्यका ध्यान करता हुआ भूमिपर शयन करे। इस विधिसे जो एक वर्षतक व्रत करता है, वह अपने सभी मनोवाञ्छित फलको प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय ४५)

कुक्कुट-मर्कटी-व्रतकथा (मुक्ताभरण सप्तमीव्रत-कथा)

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज युधिष्ठिर! एक बार महर्षि लोमश मथुरा आये और वहाँ मेरे माता-पिता—देवकी-वसुदेवने उनकी बड़ी श्रद्धासे आवभगत की। फिर वे प्रेमसे बैठकर अनेक प्रकारकी कथाएँ कहने लगे। उन्होंने उसी प्रसंगमें मेरी मातासे कहा—'देवकी! कंसने तुम्हारे बहुतसे पुत्रोंको मार डाला है, अतः तुम मृतवत्सा एवं दुःखभागिनी बन गयी हो। इसी प्रकारसे प्राचीन

कालमें चन्द्रमुखी नामकी एक सुलक्षणा रानी भी मृतवत्सा एवं दुःखी हो गयी थी। परंतु उसने एक ऐसे व्रतका अनुष्ठान किया, जिसके प्रभावसे वह जीवत्पुत्रा हो गयी। इसलिये देवकी! तुम भी उस व्रतके अनुष्ठानके प्रभावसे वैसी हो जाओगी, इसमें संशय नहीं।'

माता देवकीने उनसे पूछा—महाराज! वह चन्द्रमुखी रानी कौन थी? उसने सौभाग्य और आरोग्यकी वृद्धि करनेवाला कौन-सा व्रत किया था? जिसके कारण उसकी संतान जीवित हो गयी। आप मुझे भी वह व्रत बतलानेकी कृपा करें।

लोमशमुनि बोले—प्राचीन कालमें अयोध्यामें नहुष नामके एक प्रसिद्ध राजा थे, उन्हींकी महारानीका नाम चन्द्रमुखी था। राजाके पुरोहितकी पत्नी मानमानिकासे रानी चन्द्रमुखीकी बहुत प्रीति थी। एक दिन वे दोनों सखियाँ स्नान करनेके लिये सरयू-तटपर गयीं। उस समय नगरकी और भी बहुत-सी स्त्रियाँ वहाँ स्नान करने आयी हुई थीं। उन सब स्त्रियोंने स्नानकर एक मण्डल बनाया और उसमें शिव-पार्वतीकी प्रतिमा चित्रितकर गन्ध, पुष्प, अक्षत आदिसे भक्तिपूर्वक यथाविधि उनकी पूजा की। अनन्तर उन्हें प्रणामकर जब वे सभी अपने घर जानेको उद्यत हुईं, तब महारानी चन्द्रमुखी तथा पुरोहितकी स्त्री मानमानिकाने उनसे पूछा—'देवियो! तुमलोगोंने यह किसकी और किस उद्देश्यसे पूजा की है?' इसपर वे कहने लगीं—'हमलोगोंने भगवान् शिव एवं भगवती पार्वतीकी पूजा की है और उनके प्रति आत्म-समर्पण कर यह सुवर्णसूत्रमय धागा भी हाथमें धारण किया है। हम सब जबतक प्राण रहेंगे, तबतक इसे धारण किये रहेंगी और शिव-पार्वतीका पूजन भी किया करेंगी।' यह सुनकर उन दोनोंने भी यह व्रत करनेका निश्चय किया और वे अपने घर आ गयीं तथा नियमसे व्रत करने लगीं। परंतु कुछ समय बाद रानी चन्द्रमुखी प्रमादवश व्रत करना भूल गयीं और सूत्र भी न बाँध सकीं। इस कारण मरनेके अनन्तर वह वानरी हुई, पुरोहितकी स्त्रीका भी व्रत भङ्ग हो गया, इसलिये मरकर वह कुक्कुटी हुई। उन योनियोंमें भी उनकी मित्रता और पूर्वजन्मकी स्मृतियाँ बनी रहीं।

कुछ कालके अनन्तर दोनोंकी मृत्यु हो गयी। फिर रानी चन्द्रमुखी तो मालव देशके पृथ्वीनाथ नामक राजाकी मुख्य रानी और पुरोहित अग्निमीलकी स्त्री मानमानिका उसी राजाके पुरोहितकी पत्नी हुई। रानीका नाम ईश्वरी और पुरोहितकी स्त्रीका नाम भूषणा था। भूषणाको अपने पूर्वजन्मोंका ज्ञान था। उसके आठ उत्तम पुत्र हुए। परंतु रानी ईश्वरीको बहुत समयके बाद एक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह रोगग्रस्त रहता था। इस कारण थोड़े ही समय बाद (नवें वर्ष) उसकी मृत्यु हो गयी। तब दुःखी हो भूषणा अपनी सखी रानी ईश्वरीको आश्वासन देने उनके पास आयी। भूषणाके बहुतसे पुत्रोंको देखकर ईश्वरीके मनमें ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी, फलस्वरूप रानी ईश्वरीने धीरे-धीरे भूषणाके सभी पुत्र मरवा डाले, परंतु भगवान् शंकरके अनुग्रहसे वे मरकर भी पुनः जीवित हो उठे। तब ईश्वरीने भूषणाको अपने यहाँ बुलवाया और उससे पूछा—'सखि! तुमने ऐसा कौन-सा पुण्यकर्म किया है, जिसके कारण तुम्हारे मरे हुए भी पुत्र जीवित हो जाते हैं और तुम्हारे बहुतसे चिरंजीवी पुत्र उत्पन्न हुए हैं, मुक्ता आदि आभूषणोंसे रहित होनेपर भी कैसे तुम सदा सुशोभित रहती हो?'

भूषणाने कहा—सखि! मुक्ताभरण सप्तमी-व्रतका विलक्षण माहात्म्य है। भाद्रपद मासके

शुक्ल पक्षकी सप्तमीको किये जानेवाले इस व्रतमें स्नानकर एक मण्डल बनाकर उसमें शिव-पार्वतीका पूजन करे और शिवको आत्म-निवेदित सूत्र (दोरक)- को हाथमें धारण करे अथवा चाँदी, सोनेकी अँगूठी बनाकर अँगुलीमें पहने। उस दिन उपवास करे। बादमें व्रतका उद्यापन करे। उद्यापनके दिन शिव-पार्वतीका मण्डलमें पूजन कर वह अँगूठी ताम्रके पात्रमें रखकर ब्राह्मणको दे दे तथा यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन भी कराये। इस व्रतके करनेसे सभी पदार्थ प्राप्त होते हैं।

सखि! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको तुमने और मैंने साथ ही इस व्रतका नियम ग्रहण किया था, परंतु प्रमादवश तुमने इसे छोड़ दिया, इसीसे तुम्हारा पुत्र नष्ट हो गया और राज्य पाकर भी तुम दुःखी ही रहती हो। मैंने व्रतका भक्तिपूर्वक पालन किया, इससे मैं सब प्रकारसे सुखी हूँ, परंतु मेरा व्रत अन्तमें भङ्ग हो गया था, इसलिये एक जन्ममें मुझे कुक्कुटी बनना पड़ा। सखि! मैं तुम्हें अपने द्वारा किये गये व्रतका आधा पुण्यफल देती हूँ, इससे तुम्हारे सभी दुःख दूर हो जायँगे। इतना कहकर भूषणाने अपने व्रतका आधा पुण्यफल ईश्वरीको दे दिया। उसके प्रभावसे ईश्वरीके दीर्घ आयुवाले बहुत पुत्र उत्पन्न हुए और उसे सब प्रकारका सुख प्राप्त हुआ तथा अन्तमें मोक्ष भी प्राप्त हुआ।

लोमशमुनि बोले—देवकी! तुम भी इस व्रतको करो, इससे तुम्हारी संतान स्थिर हो जायगी और तुम्हारा पुत्र तीनों लोकोंका स्वामी होगा। यह कहकर लोमशमुनि अपने आश्रमको चले गये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! (मेरी माताको इसी व्रतके प्रभावसे मेरे-जैसा पुत्र पैदा हुआ और मेरी इतनी आयु बढ़ी तथा कंस आदि दुष्टोंसे बच भी गया।) यह प्रसंगवश मैंने इस व्रतका माहात्म्य बतलाया है, अन्य जो भी कोई स्त्री इस व्रतका आचरण करेगी, उसे कभी संतानका वियोग नहीं होगा और अन्तमें वह शिवलोकको प्राप्त करेगी*।

(अध्याय ४६)

उभय-सप्तमीव्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं सप्तमी-कल्पका वर्णन करता हूँ। आप इसे प्रीतिपूर्वक सुनें। माघ महीनेकी शुक्ला सप्तमीको संकल्पकर भगवान् सूर्यका वरुणदेव नामसे पूजन करे। अष्टमीके दिन तिल, पिष्ट, गुड़ और ओदन ब्राह्मणोंको भोजन कराये, ऐसा करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है। फाल्गुन शुक्ला सप्तमीको भगवान् सूर्यका पूजन करनेसे वाजपेय-यज्ञका फल प्राप्त होता है। चैत्र शुक्ला सप्तमीमें वेदांशु नामसे सूर्य-पूजन करनेसे उक्थ नामक यज्ञके समान पवित्र फल प्राप्त होता है। वैशाखके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको धाता नामसे पूजा करनेसे पशुबन्ध-यागके पुण्यके समान फल प्राप्त होता है। ज्येष्ठ मासकी सप्तमीको इन्द्र नामसे सूर्यकी पूजा करनेसे वाजपेय-यज्ञका दुर्लभ फल प्राप्त होता है। आषाढ़ मासकी सप्तमीको दिवाकरकी पूजा करनेसे बहुत सुवर्णकी दक्षिणावाले यज्ञका फल प्राप्त होता है। श्रावणकी सप्तमीको मातापि (लोलार्क)-को पूजनेसे सौत्रामणि यागका

* इसी व्रतका ठीक इन्हीं श्लोकोंमें हेमाद्रि, जयसिंह-कल्पद्रुम तथा व्रतराज आदि निबन्ध-ग्रन्थोंमें मुक्ताभरण-सप्तमीके नामसे उल्लेख किया गया है और उसके श्लोक भविष्यपुराणके नामसे सूचित किये गये हैं, किंतु आश्चर्य है कि वहाँ इसे कुक्कुट-मर्कटी-सप्तमी नहीं कहा गया है। सम्भव है कि भविष्यपुराणके अन्य किन्हीं हस्तलिखित प्रतियोंकी पुष्पिकामें इन्हें मुक्ताभरण-सप्तमीके नामसे निर्दिष्ट किया गया हो। मोनियर विलियम नामक संस्कृत अंग्रेजीके विख्यात कोशमें कैटलगस नामसे कुक्कुट-मर्कट-सप्तमीके नामका ही उल्लेख किया गया है।

फल प्राप्त होता है। भाद्रपद मासमें शुचि नामसे सूर्यका पूजन करे तो तुलापुरुष-दानका फल प्राप्त होता है। आश्विन शुक्ला सप्तमीको सविताकी पूजा करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। कार्तिक शुक्ला सप्तमीमें सप्तवाहन दिनेशकी पूजा करनेसे पुण्डरीक-यागका फल प्राप्त होता है। मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीमें भानुकी पूजा करनेसे दस राजसूय-यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। पौष मासमें शुक्ल पक्षकी सप्तमीको भास्करकी पूजा करनेसे अनेक यज्ञोंका फल मिलता है। इसी प्रकार प्रत्येक मासके कृष्ण पक्षकी सप्तमीको भी उन-उन नामोंसे पूजा करनी चाहिये।

महाराज! इस प्रकार एक वर्षतक व्रत और पूजन कर उद्यापन करे। पवित्र भूमिपर एक हाथ, दो हाथ अथवा चार हाथ रक्त चन्दनका मण्डल बनाकर उसमें सिंदूर और गेरुका सूर्यमण्डल बनाये। कमल आदि रक्तपुष्पों, शल्लकी वृक्षके गोंद आदिसे निर्मित धूप तथा अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे भगवान् सूर्यका पूजन करे। अन्न तथा स्वर्णसे भरे कलशोंको उनके सामने स्थापित करे। फिर अग्निसंस्कार कर तिल, घृत, गुड़ और आककी समिधाओंसे '**आ कृष्णेन०**' (यजु० ३३। ४३) इस मन्त्रसे एक हजार आहुति दे। अनन्तर द्वादश ब्राह्मणोंको रक्त वस्त्र, एक-एक सवत्सा गौ, छतरी, जूता, दक्षिणा और भोजन देकर क्षमा-प्रार्थना करे। बादमें स्वयं भी मौन होकर भोजन करे।

इस विधिसे जो सप्तमीका व्रत करता है, वह नीरोग, कुशल वक्ता, रूपवान् और दीर्घायु होता है। जो पुरुष सप्तमीके दिन उपवास कर भगवान् सूर्यका दर्शन करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें निवास करता है। यह उभय-सप्तमीव्रत सम्पूर्ण अशुभोंको दूर कर आरोग्य और सूर्यलोक प्राप्त करानेवाला है, ऐसा देवर्षि नारदका कहना है। (अध्याय ४७)

कल्याणसप्तमी-व्रतकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! यदि इस संसार-सागरसे पार उतारनेवाला तथा स्वर्ग, आरोग्य एवं सुखप्रदायक कोई व्रत हो तो उसे आप बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! जिस शुक्ला सप्तमीको आदित्यवार हो, उसे विजया-सप्तमी या कल्याण-सप्तमी कहते हैं। यह तिथि महापुण्यमयी है। इस दिन प्रातःकाल गोदुग्धयुक्त जलसे स्नानकर शुक्ल वस्त्र धारण कर अक्षतोंसे अति सुन्दर एक कर्णिकायुक्त अष्टदलकमल बनाये तथा पूर्वादि आठों दलोंमें क्रमशः पूर्व दिशामें '**ॐ तपनाय नमः**,' अग्निकोणमें '**ॐ मार्तण्डाय नमः**', दक्षिण दिशामें '**ॐ दिवाकराय नमः**', नैर्ऋत्यकोणमें '**ॐ विधात्रे नमः**', पश्चिम दिशामें '**ॐ वरुणाय नमः**', वायव्यकोणमें '**ॐ भास्कराय नमः**', उत्तर दिशामें '**ॐ विकर्तनाय नमः**' तथा ईशानकोणमें '**ॐ रवये नमः**'—इस प्रकारसे नाम-मन्त्रोंद्वारा कर्णिकाओंमें सभी उपचारोंसे पूजन करे। शुक्ल वस्त्र, फल, भक्ष्य पदार्थ, धूप, पुष्पमाला, गुड़ और लवणसे नमस्कारान्त इन नाम-मन्त्रोंसे वेदीके ऊपर पूजा करे। इसके बाद व्याहृति-होमकर यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन कराये। गुरुको सुवर्णसहित तिलपात्र-दान करे। दूसरे दिन प्रातः उठकर नित्य-क्रियासे निवृत्त हो ब्राह्मणोंके साथ घृत एवं पायससे

बने पदार्थोंका भोजन करे। इस प्रकार एक वर्षतक भगवान् सूर्यका पूजन एवं व्रतकर उद्यापन करे। जल, कलश, घृतपात्र, सुवर्ण, वस्त्र, आभूषण और सवत्सा गौ ब्राह्मणको दे। इतनी शक्ति न हो तो गोदान करे। जो इस कल्याणसप्तमी-व्रतको करता है अथवा माहात्म्यको पढ़ता या सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें निवास करता है[१]। (अध्याय ४८)

शर्करासप्तमी-व्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—धर्मराज! अब मैं सभी पापोंको नष्ट करनेवाले तथा आयु, आरोग्य और अनन्त ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले शर्करासप्तमी-व्रतका वर्णन करता हूँ। वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको श्वेत तिलोंसे युक्त जलसे स्नानकर शुक्ल वस्त्रोंको धारण करे तथा वेदीके ऊपर कुंकुमसे कर्णिकासहित अष्टदल-कमलकी रचना करे और '**सवित्रे नमः**' इन नाम-मन्त्रसे गन्ध-पुष्प आदिसे सूर्यकी पूजा करे। जलपूर्ण कलशके ऊपर शक्करसे भरा पूर्णपात्र स्थापित करे। उस कलशको रक्त वस्त्र, श्वेत माला आदिसे अलंकृत करे, साथ ही वहाँ एक सुवर्ण-निर्मित अश्व भी स्थापित करे। तदनन्तर भगवान् सूर्यका आवाहनकर इस मन्त्रसे उनका पूजन करे—

विश्वेदेवमयो यस्माद् वेदवादीति पठ्यते॥
त्वमेवामृतसर्वस्वमतः पाहि सनातन।

(उत्तरपर्व ४९। ५-६)

'हे भगवान् सूर्यदेव! यह सारा विश्व एवं सभी देवता आपके ही स्वरूप हैं, इस कारण आपको ही वेदोंका तत्त्वज्ञ एवं अमृतसर्वस्व कहा गया है। हे सनातनदेव! आप मेरी रक्षा करें।'

तदनन्तर सौरसूक्त[२]का जप करे अथवा सौरपुराण[३]का श्रवण करे। अष्टमीको प्रातः उठकर स्नान आदि नित्यक्रिया सम्पन्नकर भगवान् सूर्यका पूजन करे। तत्पश्चात् सारी सामग्री वेदवेत्ता ब्राह्मणको देकर शर्करा, घृत और पायससे यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराये। स्वयं भी मौन होकर तेल और लवणरहित भोजन करे। इस विधिसे प्रतिमास व्रत करके वर्ष पूरा होनेपर यथाशक्ति उत्तम शय्या, दूध देनेवाली गाय, शर्करापूर्ण घट, गृहस्थके उपकरणोंसे युक्त मकान तथा अपनी सामर्थ्यके अनुकूल एक हजार अथवा एक सौ या पाँच निष्क सोनेका बना हुआ एक अश्व ब्राह्मणको दान करे। भगवान् सूर्यके मुखसे अमृतपान करते समय जो अमृत-बिन्दु गिरे, उनसे शालि (अगहनी धान), मूँग और इक्षु उत्पन्न हुए, शर्करा इक्षुका सार है, इसलिये हव्य-कव्यमें इस शर्कराका उपयोग करना भगवान् सूर्यको अति प्रिय है एवं यह शर्करा अमृतरूप है। यह शर्करासप्तमी-व्रत अश्वमेध-यज्ञका फल देनेवाला है। इस व्रतके करनेसे संतानकी वृद्धि होती है तथा समस्त उपद्रव शान्त हो जाते हैं। इस व्रतका करनेवाला व्यक्ति एक कल्प स्वर्गमें निवासकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है।[४] (अध्याय ४९)

१-मत्स्यपुराण (अध्याय ७४)-में भी इस व्रतका प्रायः इन्हीं श्लोकोंमें उल्लेख प्राप्त होता है।

२-ऋग्वेदके प्रथम मण्डलका ५० वाँ सूक्त सूर्यसूक्त या सौरसूक्त कहलाता है।

३-सौरपुराणसे मुख्य तात्पर्य है भविष्यपुराण और साम्बपुराण। आजकल सौरपुराणके नामसे प्रकाशित जो सूर्यपुराण हैं, वास्तवमें वे शैवपुराण हैं सौर नहीं।

४-भविष्यपुराणका यह अध्याय भी मत्स्यपुराणके अ० ७७ में प्रायः इसी रूपमें प्राप्त होता है।

कमलसप्तमी-व्रत *

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं कमलसप्तमी-व्रतका वर्णन करता हूँ, जिसके नाम लेनेमात्रसे ही भगवान् सूर्य प्रसन्न हो जाते हैं। वसन्त-ऋतुमें शुक्ल पक्षकी सप्तमीको प्रातःकाल पीली सरसोंयुक्त जलसे स्नान करे। एक पात्रमें तिल रखकर उसमें सुवर्णका कमल बनाकर स्थापित करे और उसमें भगवान् सूर्यकी भावना कर दो वस्त्रोंसे आवृत करे तथा गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे पूजाकर निम्नलिखित श्लोकसे प्रार्थना करे—

नमस्ते पद्महस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे॥
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते।

(उत्तरपर्व ५०। ३-४)

तदनन्तर वस्त्र, माला तथा अलंकारोंसे सुसज्जित उस उदककुम्भको प्रतिमासहित ब्राह्मणकी पूजाकर प्रदान कर दे। दूसरे दिन अष्टमीको यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराये और स्वयं भी तेल आदिसे रहित विशुद्ध भोजन करे। इसी प्रकार वर्षपर्यन्त प्रत्येक मासकी शुक्ल सप्तमीको भक्तिपूर्वक व्रत करे। व्रतकी समाप्तिपर वह भक्तिपूर्वक सुवर्ण-कमल, सुवर्णकी पयस्विनी गौ, अनेक पात्र, आसन, दीप तथा अन्य सामग्रियाँ ब्राह्मणको दानमें दे। इस विधिसे जो कमल-सप्तमीका व्रत करता है, वह अनन्त लक्ष्मीको प्राप्त करता है और सूर्यलोकमें प्रसन्न होकर निवास करता है। कल्प-कल्पभर सात लोकोंमें निवास करता हुआ अन्तमें परमगतिको प्राप्त करता है। (अध्याय ५०)

शुभसप्तमी-व्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! अब मैं एक दूसरी सप्तमीका वर्णन कर रहा हूँ, वह शुभसप्तमी कहलाती है। इसमें उपवासकर व्यक्ति रोग, शोक तथा दुःखोंसे मुक्त हो जाता है। इस पुण्यप्रद व्रतमें आश्विन मासमें (शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको) स्नान करके पवित्र हो ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराये। तदनन्तर गन्ध, माल्य तथा अनुलेपनादिसे भक्तिपूर्वक कपिला गौका निम्नलिखित मन्त्रसे पूजन करे—

नमामि सूर्यसम्भूतामशेषभुवनालयाम्॥
त्वामहं शुभकल्याणशरीरां सर्वसिद्धये।

(उत्तरपर्व ५१। ३-४)

'देवि! आप सूर्यसे उत्पन्न हुई हैं और सम्पूर्ण लोकोंकी आश्रयदात्री हैं, आपका शरीर सुशोभन मङ्गलोंसे युक्त है, आपको मैं समस्त सिद्धियोंकी प्राप्तिके निमित्त नमस्कार करता हूँ।'

तत्पश्चात् ताम्रपात्रमें एक सेर तिल रखकर उसपर वृषभकी स्वर्ण-प्रतिमा स्थापित करे और उसकी वस्त्र, माल्य, गुड़ आदिसे पूजा करे। सायंकालमें '**अर्यमा प्रीयताम्**' यह कहकर सब सामग्री भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको निवेदित करे। रात्रिमें पञ्चगव्यका प्राशन करे तथा भूमिपर ही मात्सर्यरहित होकर शयन करे। प्रातः भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको पूजा आदिसे संतुष्ट करे। प्रत्येक मासमें दो वस्त्र, स्वर्णमय वृषभ और गौ आदिका पूजनपूर्वक दान करे। संवत्सरके अन्तमें ईख, गुड़, वस्त्र, पात्र, आसन, गद्दा, तकिया आदिसे समन्वित शय्या, एक सेर तिलसे पूर्ण ताम्रपात्र, सौवर्ण वृषभ '**विश्वात्मा प्रीयताम्**' कहकर वेदज्ञ ब्राह्मणको दान करे। इस विधिसे शुभसप्तमी-व्रत करनेवाला व्यक्ति जन्म-

* कई व्रत-निबन्धों एवं पुराणोंमें इसे ही कमल-षष्ठी भी कहा गया है।

जन्ममें विमल कीर्ति एवं श्री प्राप्त करता है और देवलोकमें पूजित तथा प्रलयपर्यन्त गणाधिप होता है। एक कल्पके अनन्तर वह पृथ्वीपर जन्म लेकर सातों द्वीपोंका चक्रवर्ती सम्राट् होता है। यह पुण्यदायिनी शुभ-सप्तमी सहस्रों ब्रह्महत्या और सैकड़ों भ्रूणहत्या आदि पापोंका नाश करती है। इस शुभ-सप्तमीके माहात्म्यको जो पढ़ता है अथवा क्षणभर भी सुनता है, वह शरीर छूटनेपर विद्याधरोंका अधिपति होता है[1]।

(अध्याय ५१)

सप्तमी-स्नपनव्रत और उसकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—प्रभो! मनुष्यको अपने मनमें उद्भूत उद्वेग तथा खेद-खिन्नता और अपनी दरिद्रताकी निवृत्तिके लिये अद्भुत[2]-शान्तिके निमित्त कौन-सा धर्म-कृत्य करना चाहिये? मृतवत्सा स्त्रीको (जिसके बच्चे पैदा होकर मर जाते हैं) अपनी संततिकी रक्षा और दुःस्वप्नादिकी शान्तिके लिये क्या करना चाहिये?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! पूर्वजन्मके पाप इस जन्ममें रोग, दुर्गति तथा इष्टजनोंकी मृत्युके रूपमें फलित होते हैं। उनके विनाशके लिये मैं कल्याणकारी सप्तमी-स्नपन नामक व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, यह लोगोंकी पीड़ाका विनाश करनेवाला है। जहाँ दुधमुँहे शिशुओं, वृद्धों, आतुरों और नवयुवकोंकी आकस्मिक मृत्यु होती देखी जाती है, वहाँ उसकी शान्तिके लिये इस '**मृतवत्साभिषेक**' को बतला रहा हूँ। यह समस्त अद्भुत उत्पातों, उद्वेगों और चित्त-भ्रमोंका भी विनाशक है।

वराह-कल्पके वैवस्वत मन्वन्तरमें सत्ययुगमें हैहयवंशीय क्षत्रियोंके कुलकी शोभा बढ़ानेवाला कृतवीर्य नामक एक राजा हुआ था। उसने सतहत्तर हजार वर्षतक धर्म और नीतिपूर्वक समस्त प्रजाओंका पालन किया। उसके सौ पुत्र थे, जो च्यवनमुनिके शापसे दग्ध हो गये। फिर राजाने भगवान् सूर्यकी विधिपूर्वक उपासना प्रारम्भ की। कृतवीर्यके उपवास-व्रत, पूजा और स्तोत्रोंसे संतुष्ट होकर भगवान् सूर्यने उसे अपना दर्शन दिया और कहा—'कृतवीर्य! तुम्हें (कार्तवीर्य नामक) एक सुन्दर एवं चिरायु पुत्र उत्पन्न होगा, किंतु तुम्हें अपने पूर्वकृत पापोंको विनष्ट करनेके लिये स्नपन-सप्तमी नामक व्रत करना पड़ेगा। तुम्हारी मृतवत्सा पत्नीके जब पुत्र उत्पन्न हो जाय तो सात महीनेपर बालकके जन्म-नक्षत्रकी तिथिको छोड़कर शुभ दिनमें ग्रह एवं ताराबलको देखकर ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराना चाहिये। इसी प्रकार वृद्ध, रोगी अथवा अन्य लोगोंके लिये किये जानेवाले इस व्रतमें जन्म-नक्षत्रका परित्याग कर देना चाहिये। गोदुग्धके साथ लाल अगहनीके चावलोंसे हव्यान्न पकाकर मातृकाओं, भगवान् सूर्य एवं रुद्रकी तुष्टिके लिये अर्पण करना चाहिये और फिर भगवान् सूर्यके नामसे अग्निमें घीकी सात आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। फिर बादमें रुद्रसूक्तसे भी आहुतियाँ देनी चाहिये। इस आहुतिमें आक एवं पलाशकी समिधाएँ प्रयुक्त करनी चाहिये तथा हवन-कार्यमें काले तिल, जौ एवं घीकी एक सौ आठ आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। हवनके बाद शीतल गङ्गाजलसे स्नान करना चाहिये। तदनन्तर हाथमें कुश लिये हुए वेदज्ञ ब्राह्मणद्वारा चारों कोणोंमें चार सुन्दर कलश

१-भविष्यपुराणका यह अध्याय मत्स्यपुराण (अध्याय ८०)-में इसी रूपमें प्राप्त होता है।

२-सामवेदीय 'अद्भुतब्राह्मण' (ताण्ड्य २६) तथा अथर्वपरिशिष्ट (७२)-में अद्भुत-शान्तिका विस्तारसे उल्लेख है।

स्थापित कराये। पुनः उसके बीचमें छिद्ररहित पाँचवाँ कलश स्थापित करे। उसे दही-अक्षतसे विभूषित करके सूर्यसम्बन्धी सात ऋचाओंसे अभिमन्त्रित कर दे। फिर उसे तीर्थ-जलसे भरकर उसमें रत्न या सुवर्ण डाल दे। इसी प्रकार सभी कलशोंमें सर्वौषधि, पञ्चगव्य, पञ्चरत्न, फल और पुष्प डालकर उन्हें वस्त्रोंसे परिवेष्टित कर दे। फिर हाथीसार, घुड़शाल, बिमौट, नदीके संगम, तालाब, गोशाला और राजद्वार—इन सात जगहोंसे शुद्ध मृत्तिका लाकर उन सभी कलशोंमें डाल दे।'

तदनन्तर ब्राह्मण रत्नगर्भित चारों कलशोंके मध्यमें स्थित पाँचवें कलशको हाथमें लेकर सूर्य-मन्त्रोंका पाठ करे तथा सात सुलक्षणा स्त्रियोंद्वारा जो पुष्प-माला और वस्त्राभूषणोंद्वारा पूजित हों, ब्राह्मणके साथ-साथ उस घड़ेके जलसे मृतवत्सा स्त्रीका अभिषेक कराये। (अभिषेकके समय इस प्रकार कहे—) 'यह बालक दीर्घायु और यह स्त्री जीवत्पुत्रा (जीवित पुत्रवाली) हो। सूर्य, ग्रहों और नक्षत्र-समूहोंसहित चन्द्रमा, इन्द्रसहित लोकपालगण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर इनके अतिरिक्त अन्यान्य देव-समूह इस कुमारकी सदा रक्षा करें। सूर्य, शनि, अग्नि अथवा अन्यान्य जो कोई बालग्रह हों, वे सभी इस बालकको तथा इसके माता-पिताको कहीं भी कष्ट न पहुँचायें।[1]' अभिषेकके पश्चात् वह स्त्री श्वेत वस्त्र धारण करके अपने बच्चे और पतिके साथ उन सातों स्त्रियोंकी भक्तिपूर्वक पूजा करे। पुनः गुरुकी पूजा करके धर्मराजकी स्वर्णमयी प्रतिमा ताम्रपात्रके ऊपर स्थापित करके गुरुको निवेदित कर दे। उसी प्रकार कृपणता छोड़कर अन्य ब्राह्मणोंका भी वस्त्र, सुवर्ण, रत्नसमूह आदिसे पूजन करके उन्हें घी और खीरसहित भक्ष्य पदार्थोंका भोजन कराये। भोजनोपरान्त गुरुदेवको बालककी रक्षाके लिये इन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये—'यह बालक दीर्घायु हो और सौ वर्षोंतक सुखका उपभोग करे। इसका जो कुछ पाप था, उसे वडवानलमें डाल दिया गया। ब्रह्मा, रुद्र, वसुगण, स्कन्द, विष्णु, इन्द्र और अग्नि—ये सभी दुष्ट ग्रहोंसे इसकी रक्षा करें और सदा इसके लिये वरदायक हों[2]।' इस प्रकारके वाक्योंका उच्चारण करनेवाले गुरुदेवका यजमान पूजन करे। अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें एक कपिला गौ प्रदान करे और फिर प्रणाम करके बिदा करे। तत्पश्चात् मृतवत्सा स्त्री पुत्रको गोदमें लेकर सूर्यदेव और भगवान् शंकरको नमस्कार करे और हवनसे बचे हुए हव्यान्नको 'सूर्यदेवको नमस्कार है'—यह कहकर खा जाय। यह व्रत उद्विग्नता और दुःस्वप्नादिमें भी प्रशस्त माना गया है।

इस प्रकार कर्ताके जन्मदिनके नक्षत्रको छोड़कर शान्ति-प्राप्तिके हेतु शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिमें सदा (सूर्य और शंकरका) पूजन करना चाहिये, क्योंकि इस व्रतका अनुष्ठान करनेवाला कभी कष्टमें नहीं पड़ता। जो मनुष्य इस विधानके अनुसार इस व्रतका सदा अनुष्ठान करता है, वह दीर्घायु होता है। (इसी व्रतके प्रभावसे) कार्तवीर्यने दस हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीपर शासन किया था। राजन्! इस प्रकार सूर्यदेव इस पुण्यप्रद, परम पावन और आयुवर्धक सप्तमी-स्नपनव्रतका विधान

१-दीर्घायुरस्तु बालोऽयं जीवपुत्रा च भाविनी। आदित्यचन्द्रमासार्धं ग्रहनक्षत्रमण्डलम्॥
शक्रः सलोकपालो वै ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः। एते चान्ये च वै देवाः सदा पान्तु कुमारकम्॥
मा शनिर्मा स हुतभुङ्मा च बालग्रहाः क्वचित्। पीडां कुर्वन्तु बालस्य मा मातृजनकस्य वै॥ (उत्तरपर्व ५२। २६—२८)

२-दीर्घायुरस्तु बालोऽयं यावद्वर्षशतं सुखी। यत्किञ्चिदस्य दुरितं तत्क्षिप्तं वडवामुखे॥
ब्रह्मा रुद्रो विष्णुः स्कन्दो वायुः शक्रो हुताशनः। रक्षन्तु सर्वे दुष्टेभ्यो वरदा यान्तु सर्वदा॥ (उत्तरपर्व ५२। ३२-३३)

बतलाकर वहीं अन्तर्हित हो गये। मनुष्यको सूर्यसे नीरोगता, अग्निसे धन, ईश्वर (शिवजी)-से ज्ञान और भगवान् जनार्दनसे मोक्षकी अभिलाषा करनी चाहिये[१]। यह व्रत बड़े-बड़े पापोंका विनाशक, बाल-वृद्धिकारक तथा परम हितकारी है। जो मनुष्य अनन्यचित्त होकर इस व्रत-विधानको सुनता है, उसे भी सिद्धि प्राप्त होती है[२]। (अध्याय ५२)

अचलासप्तमी[३]-व्रत-कथा तथा व्रत-विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आपने सभी उत्तम फलोंको देनेवाले माघस्नानका[४] विधान बतलाया था, परंतु जो प्रातःकाल स्नान करनेमें समर्थ न हो तो वह क्या करे? स्त्रियाँ अति सुकुमारी होती हैं, वे किस प्रकार माघस्नानका कष्ट सहन कर सकती हैं? इसलिये आप कोई ऐसा उपाय बतायें कि थोड़ेसे परिश्रमसे भी नारियोंको रूप, सौभाग्य, संतान और अनन्त पुण्य प्राप्त हो जाय।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! मैं अचला-सप्तमीका अत्यन्त गोपनीय विधान आपको बतलाता हूँ, जिसके करनेसे सब उत्तम फल प्राप्त हो जाते हैं। इस सम्बन्धमें आप एक कथा सुनें—

मगध देशमें अति रूपवती इन्दुमती नामकी एक वेश्या रहती थी। एक दिन वह वेश्या प्रातःकाल बैठी-बैठी संसारकी अनवस्थिति (नश्वरता)-का इस प्रकार चिन्तन करने लगी—देखो! यह विषयरूपी संसार-सागर कैसा भयंकर है, जिसमें डूबते हुए जीव जन्म-मृत्यु-जरा आदिसे तथा जल-जन्तुओंसे पीड़ित होते हुए भी किसी प्रकार पार उतर नहीं पाते। ब्रह्माजीके द्वारा निर्मित यह प्राणिसमुदाय अपने किये गये कर्मरूपी ईंधनसे एवं कालरूपी अग्निसे दग्ध कर दिया जाता है। प्राणियोंके जो धर्म, अर्थ, कामसे रहित दिन व्यतीत होते हैं, फिर वे कहाँ वापस आते हैं? जिस दिन स्नान, दान, तप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण आदि सत्कर्म नहीं किया जाता, वह दिन व्यर्थ है। पुत्र, स्त्री, घर, क्षेत्र तथा धन आदिकी चिन्तामें सारी आयु बीत जाती है और मृत्यु आकर धर दबोचती है।

इस प्रकार कुछ निर्विण्ण—उद्विग्न होकर सोचती-विचारती हुई वह इन्दुमती वेश्या महर्षि वसिष्ठके आश्रममें गयी और उन्हें प्रणामकर हाथ जोड़कर कहने लगी—'महाराज! मैंने न तो कभी कोई दान दिया, न जप, तप, व्रत, उपवास आदि सत्कर्मोंका अनुष्ठान किया और न शिव, विष्णु आदि किन्हीं देवताओंकी आराधना की, अब मैं इस भयंकर संसारसे भयभीत होकर आपकी शरण आयी हूँ, आप मुझे कोई ऐसा व्रत बतलायें, जिससे मेरा उद्धार हो जाय।'

वसिष्ठजी बोले—'वरानने! तुम माघ मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको स्नान करो, जिससे रूप, सौभाग्य और सद्गति आदि सभी फल प्राप्त होते

१-आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात्। शंकराज्ज्ञानमिच्छेत्तु गतिमिच्छेज्जनार्दनात्॥ (उत्तरपर्व ५२। ३९)

२-भविष्यपुराणका यह अध्याय मत्स्यपुराण (अ० ६८)-से प्रायः मिलता है।

३-यह सप्तमी पुराणोंमें रथ, सूर्य, भानु, अर्क, महती, पुत्रसप्तमी आदि अनेक नामोंसे विख्यात है और अनेक पुराणोंमें उन-उन नामोंसे अलग-अलग विधियाँ निर्दिष्ट हैं, जिनसे सभी अभिलाषाएँ पूरी होती हैं।

४-पुराणोंका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। माघस्नानकी विस्तृत विधि पद्मपुराणके उत्तरखण्ड एवं वायुपुराणमें प्राप्त होती है। इनमें बड़ी सुन्दर एवं श्रेष्ठ कथाएँ हैं।

हैं। षष्ठीके दिन एक बार भोजनकर सप्तमीको प्रातःकाल ही ऐसे नदीतट अथवा जलाशयपर जाकर दीपदान और स्नान करो, जिसके जलको किसीने स्नानकर हिलाया न हो, क्योंकि जल मलको प्रक्षालित कर देता है। बादमें यथाशक्ति दान भी करो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।' वसिष्ठजीका ऐसा वचन सुनकर इन्दुमती अपने घर वापस लौट आयी और उनके द्वारा बतायी गयी विधिके अनुसार उसने स्नान-ध्यान आदि कर्मोंको सम्पन्न किया। सप्तमीके स्नानके प्रभावसे बहुत दिनोंतक सांसारिक सुखोंका उपभोग करती हुई वह देह-त्यागके पश्चात् देवराज इन्द्रकी सभी अप्सराओंमें प्रधान नायिकाके पदपर अधिष्ठित हुई। यह अचलासप्तमी सम्पूर्ण पापोंका प्रशमन करनेवाली तथा सुख-सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाली है।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! अचलासप्तमीका माहात्म्य तो आपने बतलाया, कृपाकर अब स्नानका विधान भी बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! षष्ठीके दिन एकभुक्त होकर सूर्यनारायणका पूजन करे। यथासम्भव सप्तमीको प्रातःकाल ही उठकर नदी या सरोवरपर जाकर अरुणोदय आदि वेलामें बहुत सबेरे ही स्नान करनेकी चेष्टा करे। सुवर्ण, चाँदी अथवा ताम्रके पात्रमें कुसुम्भकी रँगी हुई बत्ती और तिलका तेल डालकर दीपक प्रज्वलित करे। उस दीपकको सिरपर रखकर हृदयमें भगवान् सूर्यका इस प्रकार ध्यान करे—

नमस्ते रुद्ररूपाय रसानाम्पतये नमः।
वरुणाय नमस्तेऽस्तु हरिवास नमोऽस्तु ते॥
यावज्जन्म कृतं पापं मया जन्मसु सप्तसु।
तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हन्तु सप्तमी॥
जननी सर्वभूतानां सप्तमी सप्तसप्तिके।
सर्वव्याधिहरे देवि नमस्ते रविमण्डले॥

(उत्तरपर्व ५३। ३३—३५)

तदनन्तर दीपकको जलके ऊपर तैरा दे, फिर स्नानकर देवता और पितरोंका तर्पण करे और चन्दनसे कर्णिकासहित अष्टदल-कमल बनाये। उस कमलके मध्यमें शिव-पार्वतीकी स्थापना कर प्रणव-मन्त्रसे पूजा करे और पूर्वादि आठ दलोंमें क्रमसे भानु, रवि, विवस्वान्, भास्कर, सविता, अर्क, सहस्रकिरण तथा सर्वात्माका पूजन करे। इन नामोंके आदिमें '**ॐ**'कार तथा अन्तमें '**नमः**'पद लगाये। यथा—'**ॐ भानवे नमः**', '**ॐ रवये नमः**'इत्यादि।

इस प्रकार पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा वस्त्र आदि उपचारोंसे विधिपूर्वक भगवान् सूर्यकी पूजाकर '**स्वस्थानं गम्यताम्**' यह कहकर विसर्जित कर दे। बादमें ताम्र अथवा मिट्टीके पात्रमें गुड़ और घृतसहित तिलचूर्ण तथा सुवर्णका ताल-पत्राकार एक कानका आभूषण बनाकर पात्रमें रख दे। अनन्तर रक्त वस्त्रसे उसे ढँककर पुष्प-धूपादिसे पूजन करे और वह पात्र दौर्भाग्य तथा दुःखोंके विनाशकी कामनासे ब्राह्मणको दे दे। अनन्तर '**सपुत्रपशुभृत्याय मेऽर्कोऽयं प्रीयताम्**' पुत्र, पशु, भृत्यसमन्वित मेरे ऊपर भगवान् सूर्य प्रसन्न हो जायँ—ऐसी प्रार्थना करे। फिर गुरुको वस्त्र, तिल, गौ और दक्षिणा देकर तथा यथाशक्ति अन्य ब्राह्मणोंको भोजन कराकर व्रत समाप्त करे।

जो पुरुष इस विधिसे अचलासप्तमीको स्नान करता है, उसे सम्पूर्ण माघ-स्नानका फल प्राप्त होता है। जो इस माहात्म्यको भक्तिसे कहेगा या सुनेगा तथा लोगोंको इसका उपदेश करेगा, वह उत्तम लोकको अवश्य प्राप्त करेगा। (अध्याय ५३)

बुधाष्टमीव्रत-कथा तथा माहात्म्य

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं बुधाष्टमीव्रतका विधान बतलाता हूँ, जिसे करनेवाला कभी नरकका मुख नहीं देखता। इस विषयमें आप एक आख्यान सुनें। सत्ययुगके प्रारम्भमें मनुके पुत्र राजा इल* हुए। वे अनेक मित्रों तथा भृत्योंसे घिरे रहते थे। एक दिन वे मृगयाके प्रसंगसे एक हिरणका पीछा करते हुए हिमालय पर्वतके समीप एक जंगलमें पहुँच गये। उस वनमें प्रवेश करते ही वे सहसा स्त्री-रूपमें परिणत हो गये। वह वन शिवजी और माता पार्वतीजीका विहार-क्षेत्र था। वहाँ शिवजीकी यह आज्ञा थी कि 'जो पुरुष इस वनमें प्रवेश करेगा, वह तत्क्षण ही स्त्री हो जायगा।' इस कारण राजा इल भी स्त्री हो गये। अब वे स्त्री-रूपसे वनमें विचरण करने लगे। वे यह नहीं समझ सके कि मैं कहाँ आ गया हूँ। उसी समय चन्द्रमाके पुत्र कुमार बुधकी दृष्टि उनपर पड़ी। उसके उत्तम रूपपर आकृष्ट हो बुधने उसे अपनी स्त्री बना लिया। इलासे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम पुरूरवा था। पुरूरवासे ही चन्द्रवंशका प्रारम्भ हुआ।

जिस दिन बुधने इलासे विवाह किया, उस दिन अष्टमी तिथि थी, इसलिये यह बुधाष्टमी जगत्में पूज्य हुई। यह बुधाष्टमी सम्पूर्ण पापोंका प्रशमन तथा उपद्रवोंका नाश करनेवाली है।

राजन्! अब मैं आपको एक दूसरी कथा सुना रहा हूँ—विदेह राजाओंकी नगरी मिथिलामें निमि नामके एक राजा थे। वे शत्रुओंद्वारा लड़ाईके मैदानमें मार डाले गये। उनकी स्त्रीका नाम था उर्मिला। उर्मिला जब राज्य-च्युत एवं निराश्रित हो इधर-उधर घूमने लगी, तब अपने बालक और कन्याको लेकर वह अवन्ति देश चली गयी और वहाँ एक ब्राह्मणके घरमें कार्यकर अपना निर्वाह करने लगी। वह विपत्तिसे पीड़ित थी, गेहूँ पीसते समय वह थोड़ेसे गेहूँ चुराकर रख लेती और उसीसे क्षुधासे पीड़ित अपने बच्चोंका पालन करती। कुछ समय बाद उर्मिलाका देहान्त हो गया। उर्मिलाका पुत्र बड़ा हो गया, वह अवन्तिसे मिथिला आया और पिताके राज्यको पुनः प्राप्तकर शासन करने लगा। उसकी बहन श्यामला विवाह-योग्य हो गयी थी। वह अत्यन्त रूपवती थी। अवन्तिदेशके राजा धर्मराजने उसके उत्तम रूपकी चर्चा सुनकर उसे अपनी रानी बना लिया।

एक दिन धर्मराजने अपनी प्रिया श्यामलासे कहा—'वैदेहिनन्दिनि! तुम और सभी कामोंको तो करना, परंतु ये सात स्थान जिनमें ताले बंद हैं, इनमें तुम कभी मत जाना।' श्यामलाने 'बहुत अच्छा' कहकर पतिकी बात मान ली, परंतु उसके मनमें कुतूहल बना रहा।

एक दिन जब धर्मराज अपने किसी कार्यमें व्यस्त थे, तब श्यामलाने एक मकानका ताला खोलकर वहाँ देखा कि उसकी माता उर्मिलाको अति भयंकर यमदूत बाँधकर तप्त तेलके कड़ाहमें बार-बार डाल रहे हैं। लज्जित होकर श्यामलाने वह कमरा बंद कर दिया, फिर दूसरा ताला खोला तो देखा कि वहाँ भी उसकी माताको यमदूत शिलाके ऊपर रखकर पीस रहे हैं और माता चिल्ला रही है। इसी प्रकार उसने तीसरे कमरेको खोलकर देखा कि यमदूत उसकी माताके मस्तकमें लोहेकी कील ठोंक रहे हैं, इसी तरह चौथेमें अति भयंकर श्वान उसका

* इनका मुख्य नाम सुद्युम्न था, किंतु जन्मके समय पुत्रीरूपमें उत्पन्न होनेके कारण 'इला' और बादमें पुरुष-रूपमें परिवर्तित हो जानेपर 'इल' नाम हुआ। इनकी कथा प्रायः सभी पुराणों तथा महाभारत आदिमें भी आती है।

भक्षण कर रहे हैं, पाँचवेंमें लोहेके संदंशसे उसे पीड़ित कर रहे हैं। छठेमें कोल्हूके बीच ईखके समान पेरी जा रही है और सातवें स्थानपर ताला खोलकर देखा तो वहाँ भी उसकी माताको हजारों कृमि भक्षण कर रहे हैं और वह रुधिर आदिसे लथपथ हो रही है।

यह देखकर श्यामलाने विचार किया कि मेरी माताने ऐसा कौन-सा पाप किया, जिससे वह इस दुर्गतिको प्राप्त हुई। यह सोचकर उसने सारा वृत्तान्त अपने पति धर्मराजको बतलाया।

धर्मराज बोले—'प्रिये! मैंने इसीलिये कहा था कि ये सात ताले कभी न खोलना, नहीं तो तुम्हें वहाँ पश्चात्ताप होगा। तुम्हारी माताने संतानके स्नेहसे ब्राह्मणके गेहूँ चुराये थे, क्या तुम इस बातको नहीं जानती हो जो तुम मुझसे पूछ रही हो? यह सब उसी कर्मका फल है। ब्राह्मणका धन स्नेहसे भी भक्षण करे तो भी सात कुल अधोगतिको प्राप्त होते हैं और चुराकर खाये तो जबतक चन्द्रमा और तारे हैं, तबतक नरकसे उद्धार नहीं होता। जो गेहूँ इसने चुराये थे, वे ही कृमि बनकर इसका भक्षण कर रहे हैं।'

श्यामलाने कहा—महाराज! मेरी माताने जो कुछ भी पहले किया, वह सब मैं जानती ही हूँ, फिर भी अब आप कोई ऐसा उपाय बतलायें, जिससे मेरी माताका नरकसे उद्धार हो जाय। इसपर धर्मराजने कुछ समय विचार किया और कहने लगे—'प्रिये! आजसे सात जन्म पूर्व तुम ब्राह्मणी थी। उस समय तुमने अपनी सखियोंके साथ जो बुधाष्टमीका व्रत किया था, यदि उसका फल तुम संकल्पपूर्वक अपनी माताको दे दो तो इस संकटसे उसकी मुक्ति हो जायगी।' यह सुनते ही श्यामलाने स्नानकर अपने व्रतका पुण्यफल संकल्पपूर्वक माताके लिये दान कर दिया। व्रतके फलके प्रभावसे उसकी माता भी उसी क्षण दिव्य देह धारणकर विमानमें बैठकर अपने पतिसहित स्वर्गलोकको चली गयी और बुध ग्रहके समीप स्थित हो गयी।

राजन्! अब इस व्रतके विधानको भी आप सावधान होकर सुनें—जब-जब शुक्ल पक्षकी अष्टमीको बुधवार पड़े तो उस दिन एकभुक्त-व्रत करना चाहिये। पूर्वाह्णमें नदी आदिमें स्नान करे और वहाँसे जलसे भरा नवीन कलश लाकर घरमें स्थापित कर दे, उसमें सोना छोड़ दे और बाँसके पात्रमें पक्वान्न भी रखे। आठ बुधाष्टमियोंका व्रत करे और आठोंमें क्रमसे ये आठ पक्वान्न—मोदक, घीका अपूप, वटक, श्वेत कसारसे बने पदार्थ, सोहालक (खांडयुक्त अशोकवर्तिका) और फल, पुष्प तथा फेनी आदि अनेक पदार्थ बुधको निवेदित कर बादमें स्वयं भी अपने इष्ट-मित्रोंके साथ भोजन करे। साथ ही बुधाष्टमीकी कथा भी सुने। बिना कथा सुने भोजन न करे। बुधकी एक माशे (८ रत्ती=एक माशा) या आधे माशेकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर गन्ध, पुष्प, नैवेद्य, पीत वस्त्र तथा दक्षिणा आदिसे उसका पूजन करे। पूजनके मन्त्र इस प्रकार हैं—

'ॐ बुधाय नमः, ॐ सोमात्मजाय नमः, ॐ दुर्बुद्धिनाशनाय नमः, ॐ सुबुद्धिप्रदाय नमः, ॐ ताराजाताय नमः, ॐ सौम्यग्रहाय नमः तथा **ॐ सर्वसौख्यप्रदाय नमः।'**

तदनन्तर निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर मूर्तिके साथ-साथ वह भोज्य-सामग्री तथा अन्य पदार्थ ब्राह्मणको दान कर दे—

ॐ बुधोऽयं प्रतिगृह्णातु द्रव्यस्थोऽयं बुधः स्वयम्।
दीयते बुधराजाय तुष्यतां च बुधो मम॥

(उत्तरपर्व ५४।५१)

ब्राह्मण भी मूर्ति आदि ग्रहणकर यह मन्त्र पढ़े—

बुधः सौम्यस्तारकेयो राजपुत्र इलापतिः।
कुमारो द्विजराजस्य यः पुरूरवसः पिता॥
दुर्बुद्धिबोधदुरितं नाशयित्वावयोर्बुधः।
सौख्यं च सौमनस्यं च करोतु शशिनन्दनः॥

(उत्तरपर्व ५४।५२-५३)

इस विधिसे जो बुधाष्टमीका व्रत करता है, वह सात जन्मतक जातिस्मर होता है। धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, दीर्घ आयुष्य और ऐश्वर्य आदि संसारके सभी पदार्थोंको प्राप्त कर अन्त समयमें नारायणका स्मरण करता हुआ तीर्थ-स्थानमें प्राण त्याग करता है और प्रलयपर्यन्त स्वर्गमें निवास करता है। जो इस विधानको सुनता है, वह भी ब्रह्महत्यादि पापोंसे मुक्त हो जाता है[1]।

(अध्याय ५४)

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीव्रतकी कथा एवं विधि

राजा युधिष्ठिरने कहा—अच्युत! आप विस्तारसे (अपने जन्म-दिन) जन्माष्टमीव्रतका विधान बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! जब मथुरामें कंस मारा गया, उस समय माता देवकी मुझे अपनी गोदमें लेकर रोने लगीं। पिता वसुदेवजी भी मुझे तथा बलदेवजीको आलिङ्गित कर गद्गदवाणीसे कहने लगे—'आज मेरा जन्म सफल हुआ, जो मैं अपने दोनों पुत्रोंको कुशलसे देख रहा हूँ। सौभाग्यसे आज हम सभी एकत्र मिल रहे हैं।' हमारे माता-पिताको अति हर्षित देखकर बहुतसे लोग वहाँ एकत्र हुए और मुझसे कहने लगे—'भगवन्! आपने बहुत बड़ा काम किया, जो इस दुष्ट कंसको मारा। हम सभी इससे बहुत पीड़ित थे। आप कृपाकर यह बतलायें कि आप माता देवकीके गर्भसे कब आविर्भूत हुए थे? हम सब उस दिन महोत्सव मनाया करेंगे। आपको बार-बार नमस्कार है, हम सब आपकी शरण हैं। आप हम सभीपर प्रसन्न होइये। उस समय पिता वसुदेवजीने भी मुझसे कहा था कि अपना जन्मदिन इन्हें बता दो।'

तब मैंने मथुरानिवासी जनोंको जन्माष्टमीव्रतका रहस्य बतलाया और कहा—'पुरवासियो! आपलोग मेरे जन्मदिनको विश्वमें जन्माष्टमीके नामसे प्रसारित करें। प्रत्येक धार्मिक व्यक्तिको जन्माष्टमीका व्रत अवश्य करना चाहिये। जिस समय सिंह राशिपर सूर्य और वृषराशिपर चन्द्रमा था, उस भाद्रपद मासकी कृष्ण पक्षकी अष्टमी तिथिको अर्धरात्रिमें रोहिणी नक्षत्रमें मेरा जन्म हुआ[2]। वसुदेवजीके द्वारा माता देवकीके गर्भसे मैंने जन्म लिया। यह दिन संसारमें जन्माष्टमी नामसे विख्यात होगा। प्रथम यह व्रत मथुरामें प्रसिद्ध हुआ और बादमें सभी लोकोंमें इसकी प्रसिद्धि हो गयी। इस व्रतके करनेसे संसारमें शान्ति होगी, सुख प्राप्त होगा और प्राणिवर्ग रोगरहित होगा।'

१-मत्स्यपुराणमें बुधका स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है—

पीतमाल्याम्बरधरः कर्णिकारसमद्युतिः। खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः॥ (९४।४)

बुध पीले रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं। उनकी शरीरकान्ति कनेरके पुष्प-सरीखी है। वे चारों हाथोंमें क्रमशः तलवार, ढाल, गदा और वरदमुद्रा धारण किये रहते हैं तथा सिंहपर सवार होते हैं।

हेमाद्रि, व्रतराज तथा जयसिंहकल्पद्रुम आदि निबन्धग्रन्थोंमें भी भविष्योत्तरपुराणके नामसे बुधाष्टमीव्रत दिया गया है, पर पाठ-भेद अधिक है। व्रतराजमें बुधके पूजनकी तथा व्रतके उद्यापनकी विधि भी भविष्योत्तरपुराणके नामसे दी गयी है। इस कथामें बुद्धि, युक्ति और विमर्श-शक्तिका भी पर्याप्त सम्मिश्रण दीखता है।

२-सिंहराशिगते सूर्ये गगने जलदाकुले। मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां कृष्णपक्षेऽर्धरात्रके।
वृषराशिस्थिते चन्द्रे नक्षत्रे रोहिणीयुते॥ (उत्तरपर्व ५५।१४)

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! अब आप इस व्रतका विधान बतलायें, जिसके करनेसे आप प्रसन्न होते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! इस एक ही व्रतके कर लेनेसे सात जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं। व्रतके पहले दिन दन्तधावन आदि करके व्रतका नियम ग्रहण करे। व्रतके दिन मध्याह्नमें स्नानकर माता भगवती देवकीका एक सूतिका-गृह बनाये। उसे पद्मरागमणि और वनमाला* आदिसे सुशोभित करे। गोकुलकी भाँति गोप, गोपी, घण्टा, मृदङ्ग, शङ्ख और माङ्गल्य-कलश आदिसे समन्वित तथा अलंकृत सूतिका-गृहके द्वारपर रक्षाके लिये खड्ग, कृष्ण छाग, मुशल आदि रखे। दीवालोंपर स्वस्तिक आदि माङ्गलिक चिह्न बना दे। षष्ठीदेवीकी भी नैवेद्य आदिके साथ स्थापना करे। इस प्रकार यथाशक्ति उस सूतिकागृहको विभूषितकर बीचमें पर्यङ्कके ऊपर मुझसहित अर्धसुप्तावस्थावाली, तपस्विनी माता देवकीकी प्रतिमा स्थापित करे। प्रतिमाएँ आठ प्रकारकी होती हैं—स्वर्ण, चाँदी, ताम्र, पीतल, मृत्तिका, काष्ठकी, मणिमयी तथा चित्रमयी। इनमेंसे किसी भी वस्तुकी सर्वलक्षणसम्पन्न प्रतिमा बनाकर स्थापित करे। माता देवकीका स्तनपान करती हुई बालस्वरूप मेरी प्रतिमा उनके समीप पलँगके ऊपर स्थापित करे। एक कन्याके साथ माता यशोदाकी प्रतिमा भी वहाँ स्थापित की जाय। सूतिका-मण्डपके ऊपरकी भित्तियोंमें देवता, ग्रह, नाग तथा विद्याधर आदिकी मूर्तियाँ हाथोंसे पुष्प-वर्षा करते हुए बनाये। वसुदेवजीको भी सूतिकागृहके बाहर खड्ग और ढाल धारण किये चित्रित करना चाहिये। वसुदेवजी महर्षि कश्यपके अवतार हैं और देवकी माता अदितिकी। बलदेवजी शेषनागके अवतार हैं, नन्दबाबा दक्षप्रजापतिके, यशोदा दितिकी और गर्गमुनि ब्रह्माजीके अवतार हैं। कंस कालनेमिका अवतार है। कंसके पहरेदारोंको सूतिकागृहके आस-पास निद्रावस्थामें चित्रित करना चाहिये। गौ, हाथी आदि तथा नाचती-गाती हुई अप्सराओं और गन्धर्वोंकी प्रतिमा भी बनाये। एक ओर कालिय नागको यमुनाके ह्रदमें स्थापित करे।

इस प्रकार अत्यन्त रमणीय नवसूतिका-गृहमें देवी देवकीका स्थापनकर भक्तिसे गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, नारियल, दाडिम, ककड़ी, बीजपूर, सुपारी, नारंगी तथा पनस आदि जो फल उस देशमें उस समय प्राप्त हों, उन सबसे पूजनकर माता देवकीकी इस प्रकार प्रार्थना करे—

गायद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिवृता वेणुवीणानिनादै-
र्भृङ्गारादर्शकुम्भप्रमरकृतकरैः सेव्यमाना मुनीन्द्रैः।
पर्यङ्के स्वास्तृते या मुदिततरमनाः पुत्रिणी सम्यगास्ते
सा देवी देवमाता जयति सुवदना देवकी कान्तरूपा॥

(उत्तरपर्व ५५। ४२)

'जिनके चारों ओर किंनर आदि अपने हाथोंमें वेणु तथा वीणा-वाद्योंके द्वारा स्तुति-गान कर रहे हैं और जो अभिषेक-पात्र, आदर्श, मङ्गलमय कलश तथा चँवर हाथोंमें लिये श्रेष्ठ मुनिगणोंद्वारा सेवित हैं तथा जो कृष्ण-जननी भलीभाँति बिछे हुए पलँगपर विराजमान हैं, उन कमनीय स्वरूपवाली सुवदना देवमाता अदिति-स्वरूपा देवी देवकीकी जय हो।'

उस समय यह ध्यान करे कि कमलासना लक्ष्मी देवकीके चरण दबा रही हों। उन देवी लक्ष्मीकी—'**नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।**' इस मन्त्रसे पूजा करे। इसके बाद '**ॐ देवक्यै नमः, ॐ वसुदेवाय नमः, ॐ बलभद्राय नमः,**

* आजानुलम्बिनी ऋतु-पुष्पोंकी माला और पद्मराग, मुक्ता आदि पञ्चमणियोंकी माला तथा तुलसीपत्रमिश्रित विविध पुष्पोंकी मालाको भी वनमाला, जयमाला और वैजयन्ती माला कहा गया है।

ॐ श्रीकृष्णाय नमः, ॐ सुभद्रायै नमः, ॐ नन्दाय नमः तथा **ॐ यशोदायै नमः**'—इन नाम-मन्त्रोंसे सबका अलग-अलग पूजन करे।

कुछ लोग चन्द्रमाके उदय हो जानेपर चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान कर हरिका ध्यान करते हैं, उन्हें निम्नलिखित मन्त्रोंसे हरिका ध्यान करना चाहिये—

अनघं वामनं शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम्।
वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम्॥
वाराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं ब्राह्मणप्रियम्।
दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम्॥
गोविन्दमच्युतं कृष्णमनन्तमपराजितम्।
अधोक्षजं जगद्बीजं सर्गस्थित्यन्तकारणम्॥
अनादिनिधनं विष्णुं त्रैलोक्येशं त्रिविक्रमम्।
नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम्॥
पीताम्बरधरं नित्यं वनमालाविभूषितम्।
श्रीवत्साङ्कं जगत्सेतुं श्रीधरं श्रीपतिं हरिम्॥

(उत्तरपर्व ५५। ४६—५०)

—इन मन्त्रोंसे भगवान् श्रीहरिका ध्यान करके '**योगेश्वराय योगसम्भवाय योगपतये गोविन्दाय नमो नमः**'—इस मन्त्रसे प्रतिमाको स्नान कराना चाहिये। अनन्तर '**यज्ञेश्वराय यज्ञसम्भवाय यज्ञपतये गोविन्दाय नमो नमः**'—इस मन्त्रसे अनुलेपन, अर्घ्य, धूप, दीप आदि अर्पण करे। तदनन्तर '**विश्वाय विश्वेश्वराय विश्वसम्भवाय विश्वपतये गोविन्दाय नमो नमः।**' इस मन्त्रसे नैवेद्य निवेदित करे। दीप अर्पण करनेका मन्त्र इस प्रकार है—'**धर्मेश्वराय धर्मपतये धर्मसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः।**'

इस प्रकार वेदीके ऊपर रोहिणीसहित चन्द्रमा, वसुदेव, देवकी, नन्द, यशोदा और बलदेवजीका पूजन करे, इससे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है। चन्द्रोदयके समय इस मन्त्रसे चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे—

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव।
गृहाणार्घ्यं शशाङ्केन्दो रोहिण्या सहितो मम॥

(उत्तरपर्व ५५। ५४)

आधी रातको गुड़ और घीसे वसोर्धाराकी आहुति देकर षष्ठीदेवीकी पूजा करे। उसी क्षण नामकरण आदि संस्कार भी करने चाहिये। नवमीके दिन प्रातःकाल मेरे ही समान भगवतीका भी उत्सव करना चाहिये। इसके अनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर '**कृष्णो मे प्रीयताम्**' कहकर यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये और यह मन्त्र भी पढ़ना चाहिये—

यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत्।
भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः॥

(उत्तरपर्व ५५। ६०)

इसके बाद ब्राह्मणोंको बिदा करे और ब्राह्मण कहे—'**शान्तिरस्तु शिवं चास्तु।**'

धर्मनन्दन! इस प्रकार जो मेरा भक्त पुरुष अथवा नारी देवी देवकीके इस महोत्सवको प्रतिवर्ष करता है, वह पुत्र, संतान, आरोग्य, धन-धान्य, सद्गृह, दीर्घ आयुष्य और राज्य तथा सभी मनोरथोंको प्राप्त करता है। जिस देशमें यह उत्सव किया जाता है, वहाँ जन्म-मरण, आवागमनकी व्याधि, अवृष्टि तथा ईति-भीति आदिका कभी भय नहीं रहता। मेघ समयपर वर्षा करते हैं। पाण्डुपुत्र! जिस घरमें यह देवकी-व्रत किया जाता है, वहाँ अकालमृत्यु नहीं होती और न गर्भपात होता है तथा वैधव्य, दौर्भाग्य एवं कलह नहीं होता। जो एक बार भी इस व्रतको करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है। इस व्रतके करनेवाले संसारके सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें विष्णुलोकमें निवास करते हैं।

(अध्याय ५५)

दूर्वाकी उत्पत्ति एवं दूर्वाष्टमीव्रतका विधान

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिको अत्यन्त पवित्र दूर्वाष्टमीव्रत होता है। जो पुरुष इस पुण्य दूर्वाष्टमीका श्रद्धापूर्वक व्रत करता है, उसके वंशका क्षय नहीं होता। दूर्वाके अङ्कुरोंकी तरह उसके कुलकी वृद्धि होती रहती है।

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—लोकनाथ! यह दूर्वा कहाँसे उत्पन्न हुई? कैसे चिरायु हुई तथा यह क्यों पवित्र मानी गयी और लोकमें वन्द्य तथा पूज्य कैसे हुई? इसे भी बतानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—देवताओंके द्वारा अमृतकी प्राप्तिके लिये क्षीरसागरके मथे जानेपर भगवान् विष्णुने अपनी जंघापर हाथसे पकड़कर मन्दराचलको धारण किया था। मन्दराचलके वेगसे भ्रमण करनेके कारण रगड़से विष्णुभगवान्‌के जो रोम उखड़कर समुद्रमें गिरे थे, पुनः समुद्रकी लहरोंद्वारा उछाले गये वे ही रोम हरित वर्णके सुन्दर एवं शुभ दूर्वाके रूपमें उत्पन्न हुए। उसी दूर्वापर देवताओंने मन्थनसे उत्पन्न अमृतका कुम्भ रखा, उससे जो अमृतके बिन्दु गिरे, उनके स्पर्शसे वह दूर्वा अजर-अमर हो गयी। वह देवताओंके लिये पवित्र तथा वन्द्य हुई। देवताओंने भाद्रपदकी शुक्ला अष्टमीको गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, खर्जूर, नारिकेल, द्राक्षा, कपित्थ, नारंग, आम्र, बीजपूर, दाड़िम आदि फलों तथा दही, अक्षत, माला आदिसे निम्न मन्त्रोंद्वारा उसका पूजन किया—

त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दिता च सुरासुरैः।
सौभाग्यं संततिं कृत्वा सर्वकार्यकरी भव॥
यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले।
तथा ममापि संतानं देहि त्वमजरामरे॥

(उत्तरपर्व ५६। १२-१३)

देवताओंके साथ ही उनकी पत्नियाँ तथा अप्सराओंने भी उसका पूजन किया। मर्त्यलोकमें वेदवती, सीता, दमयन्ती आदि स्त्रियोंके द्वारा भी सौभाग्यदायिनी यह दूर्वा पूजित (वन्दित) हुई और सभीने अपना-अपना अभीष्ट प्राप्त किया। जो भी नारी स्नानकर शुद्ध वस्त्र धारणकर दूर्वाका पूजन कर तिलपिष्ट, गोधूम और सप्तधान्य आदिका दानकर ब्राह्मणको भोजन कराती है और श्रद्धासे इस पुण्य तथा संतानकारक दूर्वाष्टमी-व्रतको करती है वह पुत्र, सौभाग्य—धन आदि सभी पदार्थोंको प्राप्तकर बहुत कालतक संसारमें सुख भोगकर अन्तमें अपने पतिसहित स्वर्गमें जाती है और प्रलयपर्यन्त वहाँ निवास करती है तथा देवताओंके द्वारा आनन्दित होती है।

(अध्याय ५६)

मासिक कृष्णाष्टमी*-व्रतोंकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—पार्थ! अब आप समस्त पापों तथा भयोंके नाशक, धर्मप्रद और भगवान् शंकरके प्रीतिकारक मासिक कृष्णाष्टमी-व्रतोंके विधानका श्रवण करें। मार्गशीर्ष मासकी कृष्णाष्टमीको उपवासके नियम ग्रहणकर जितेन्द्रिय और क्रोधरहित हो गुरुके आज्ञानुसार उपवास

* यह श्रीकृष्णजन्माष्टमीसे भिन्न शिवोपासनाका एक मुख्य अङ्गभूत व्रत है। इसकी महिमा तथा अनुष्ठान-विधिका वर्णन मत्स्यपुराण, अध्याय ५६, नारदपुराण, सौरपुराण १४। १—३६, व्रत-कल्पद्रुम आदिमें बहुत विस्तारसे है। विशेष जानकारीके लिये उन्हें भी देखना चाहिये। ज्योतिषग्रन्थों और पुराणोंके अनुसार अष्टमी तिथिके स्वामी शिव ही हैं। अतः अष्टमी तथा चतुर्दशीको उनकी उपासना विशेष कल्याणकारिणी होती है।

करे। मध्याह्नके अनन्तर नदी आदिमें स्नानकर गन्ध, उत्तम पुष्प, गुग्गुल, धूप, दीप, अनेक प्रकारके नैवेद्य तथा ताम्बूल आदि उपचारोंसे शिवलिङ्गका पूजनकर काले तिलोंसे हवन करे। इस मासमें शंकरजीका पूजन करे और गोमूत्र-पानकर रात्रिमें भूमिपर शयन करे, इससे अतिरात्र-यज्ञका फल प्राप्त होता है। पौष मासकी कृष्णाष्टमीको शम्भु नामसे महेश्वरका पूजनकर घृत प्राशन करनेसे वाजपेय-यज्ञका फल प्राप्त होता है। माघ मासकी कृष्णाष्टमीको महेश्वर नामसे भगवान् शंकरका पूजनकर गोदुग्ध-प्राशन करनेसे अनेक यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। फाल्गुन मासकी कृष्णाष्टमीमें महादेव नामसे उनका पूजनकर तिल भक्षण करनेसे आठ राजसूय-यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। चैत्र मासकी कृष्णाष्टमीमें स्थाणु नामसे शिवका पूजनकर यवका भोजन करनेसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। वैशाख मासकी कृष्णाष्टमीमें शिव नामसे इनका पूजनकर रात्रिमें कुशोदक-पान करनेसे दस पुरुषमेध यज्ञोंका फल मिलता है। ज्येष्ठ मासकी कृष्णाष्टमीमें पशुपति नामसे भगवान् शंकरका पूजनकर गोशृंगजलका पान करनेसे लाख गोदानका फल मिलता है। आषाढ़ मासकी कृष्णाष्टमीमें उग्र नामसे शंकरका पूजनकर गोमय-प्राशन करनेवाला दस लाख वर्षसे भी अधिक समयतक रुद्रलोकमें निवास करता है। श्रावण मासकी कृष्णाष्टमीमें शर्व नामसे भगवान् शंकरकी पूजाकर रात्रिमें अर्क-प्राशन करनेसे बहुत-सा सुवर्ण-दान किये जानेवाले यज्ञका फल मिलता है। भाद्रपद मासकी कृष्णाष्टमीमें त्र्यम्बक नामसे इनकी पूजाकर एवं बिल्वपत्रका भक्षण करनेसे अन्न-दानका फल मिलता है। आश्विन मासकी कृष्णाष्टमीमें भव नामसे भगवान् शंकरका यजनकर तण्डुलोदकका पान करनेसे सौ पुण्डरीक यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार कार्तिक मासकी कृष्णाष्टमीमें रुद्र नामसे भगवान् शंकरकी भक्तिसे पूजाकर रात्रिमें दहीका प्राशन करनेसे अग्निष्टोम-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

इस प्रकार बारह महीने शिवजीका पूजन कर अन्तमें शिवभक्त ब्राह्मणोंको घृत, शर्करायुक्त पायस भोजन कराये तथा यथाशक्ति सुवर्ण, वस्त्र आदि उनको देकर प्रसन्न करे। काले तिलसे पूर्ण बारह कलश, छाता, जूता तथा वस्त्र आदि ब्राह्मणोंको देकर दूध देनेवाली सवत्सा एक कृष्णवर्णकी गौ भी महादेवजीको निवेदित करे। इस मासिक कृष्णाष्टमी-व्रतको जो एक वर्षतक निरन्तर करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करता है और सौ वर्षपर्यन्त संसारके आनन्दोंका उपभोग करता है। इसी व्रतका अनुष्ठान कर इन्द्र, चन्द्र, ब्रह्मा तथा विष्णु आदि देवताओंने उत्तम-उत्तम पदोंको प्राप्त किया है। जो स्त्री-पुरुष इस व्रतको भक्तिपूर्वक करते हैं, वे उत्तम विमानमें बैठकर देवताओंद्वारा स्तुत होते हुए शिवलोकमें जाते हैं और भगवान् शंकरके ऐश्वर्यसे सम्पन्न हो जाते हैं। वहाँ आठ कल्पपर्यन्त निवास करते हैं और जो इस व्रतके माहात्म्यको सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। (अध्याय ५७)

अनघाष्टमीव्रतकी कथा एवं विधि

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! प्राचीन कालमें ब्रह्माजीके महातेजस्वी अत्रि पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए। अत्रिकी भार्याका नाम था अनसूया, वह महान् भाग्यशालिनी एवं पतिव्रता थी। कुछ कालके बाद उनके महातेजस्वी पुत्र दत्त हुए। दत्त महान् योगी थे। ये विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए थे। इनका दूसरा नाम था अनघ। इनकी भार्याका नाम था नदी। ब्राह्मणोंके सभी गुणोंसे सम्पन्न इनके आठ पुत्र थे। 'दत्त' विष्णुरूपमें थे तथा 'नदी' लक्ष्मीकी रूप थीं। दत्त अपनी भार्या नदीके साथ योगाभ्यासमें लीन थे, उसी समय जम्भ* नामक दैत्यसे पीड़ित तथा पराजित देवता विन्ध्यगिरिमें स्थित इनके आश्रममें आये और उन्होंने इनकी शरण ग्रहण की। दत्तात्रेयजीने इन्द्रके साथ उन सभी देवताओंको अपने योगबलसे अपने आश्रममें रख लिया और कहा—'आपलोग निर्भय तथा निश्चिन्त होकर यहाँ रहें।' देवगण अत्यन्त प्रसन्न हो गये और वे वहीं रहने लगे।

दैत्य-समुदाय भी देवताओंको खोजते-खोजते इसी आश्रमपर आ पहुँचा। वे क्रोधपूर्वक ललकारकर कहने लगे—'इस मुनिकी पत्नीको पकड़ लो और यह सारा आश्रम उजाड़ डालो।' यह कहते हुए दैत्यगण आश्रममें घुस गये और उनकी पत्नीको उठाकर अपने सिरपर रखकर चल पड़े। लक्ष्मीको सिरपर उठाते ही सभी दैत्य श्रीहीन हो गये और दत्तकी दृष्टि पड़नेसे वे सभी दैत्य भागने और नष्ट होने लगे। देवताओंने भी उन्हें मारना प्रारम्भ कर दिया। निश्चेष्ट होकर दैत्यगण हाहाकार करने लगे। दत्तमुनिके प्रभावसे वहाँ प्रलय मच गया। इन्द्रादि देवताओंने सभी असुरोंको पराजित कर दिया और फिर वे सभी अपने-अपने लोक चले गये तथा पूर्ववत् आनन्दसे रहने लगे। देवताओंने उन भगवान् दत्तात्रेयकी महिमा और प्रभावको ही इसमें कारण माना।

दत्तात्रेयजी भी संसारके कल्याणके लिये ऊर्ध्वबाहु होकर कठिन तपस्या करने लगे। वे योगमार्गका आश्रय लेकर ध्यान-समाधिमें स्थित हो गये। इसी प्रकार समाधिमें उन्हें तीन हजार वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन माहिष्मतीके राजा हैहयाधिपति कार्तवीर्यार्जुन उनके पास आया और रात-दिन उनकी सेवा करने लगा। दत्त उसकी सेवासे अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन्होंने उसकी याचनापर उसे चार वर प्रदान किये—पहला वर था हजार हाथ हो जायँ, दूसरे वरसे सारी पृथ्वीको अधर्मसे बचाते हुए धर्मपूर्वक पृथ्वीका शासन करना। तीसरे वरसे लड़ाईके मैदानमें किसीसे पराजित न होना तथा चौथे वरसे भगवान् विष्णुके हाथों मृत्यु होना।

कौन्तेय! योगाभ्यासमें लीन उन दत्तमुनिने कार्तवीर्यार्जुनको अष्टसिद्धियोंसे समन्वित चक्रवर्ती-पदवाले राज्यको प्रदान किया। कार्तवीर्यार्जुनने भी सप्तद्वीपा वसुमतीको धर्मपूर्वक अपने अधीन कर लिया। यह सब उसके हजार बाहुओंका प्रभाव था। वह अपनी मायाद्वारा यज्ञोंके माध्यमसे ध्वजावाला रथ उत्पन्न कर लेता था। उसके प्रभावसे सभी द्वीपोंमें दस हजार यज्ञ निरन्तर होते रहते थे। उन यज्ञोंकी वेदियाँ, यूप तथा मण्डप आदि सभी सोनेके रहते थे। उनमें प्रचुर दक्षिणाएँ दी जाती थीं। विमानमें बैठकर सभी देवता, गन्धर्व तथा अप्सराएँ पृथ्वीपर आकर यज्ञकी शोभा बढ़ाते रहते थे। नारद नामका गन्धर्व उसके यज्ञकी गाथा इस प्रकार गाया करता था—'कार्तवीर्यके पराक्रमकी बात सुननेसे यह पता चलता है कि संसारका कोई भी राजा उसके समान

* यह अनेक राक्षसोंका नाम है। इसका वर्णन श्रीमद्भागवत ६। १८। १२, ब्रह्माण्ड ३। ६। १०, वायु० ९७। १०३, मत्स्य० ४७। ७२ और विष्णु० ४। ६। १४ आदि पुराणोंमें आया है। इसे इन्द्रने मारा था, अतः इन्द्रका एक नाम जम्भभेदी भी है।

यज्ञ, दान तथा तप नहीं कर सकता। सातों द्वीपोंमें केवल वही ढाल, तलवार तथा धनुष-बाणवाला है। जैसे बाज पक्षीको अन्य पक्षी डरसे अपने समीप ही समझते हैं, वैसे ही अन्य राजा लोग दूरसे ही इससे भय खाते हैं। इसकी सम्पत्ति कभी नष्ट नहीं होती, इसके राज्यमें न कहीं शोक दिखायी पड़ता है न कोई क्लान्त ही। यह अपने प्रभावसे पृथ्वीपर धर्मपूर्वक प्रजाओंका पालन करता है।'

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—नराधिप! कार्तवीर्य इस पृथ्वीपर पचासी हजार वर्षतक अखण्ड शासन करता रहा। वह अपने योगबलसे पशुओंका पालक तथा खेतोंका रक्षक भी था। समयानुसार मेघ बनकर वृष्टि भी करता था। धनुषकी प्रत्यञ्चाके आघातसे कठोर त्वचायुक्त अपनी सहस्रों भुजाओंद्वारा वह सूर्यके समान उद्भासित होता था। उसने अपनी हजार भुजाओंके बलसे समुद्रको मथ डाला और नागलोकमें कर्कोटक आदि नागोंको जीतकर वहाँ भी अपनी नगरी बसा ली। उसकी भुजाओंद्वारा समुद्रके उद्वेलित होनेसे पातालवासी महान् असुर भी निश्चेष्ट हो जाते थे। बड़े-बड़े नाग उसके पराक्रमको देखकर सिर नीचा कर लेते थे। सभी धनुर्धरोंको उसने जीत लिया। अपने पराक्रमसे रावणको भी उसने अपनी माहिष्मती नगरीमें लाकर बंदी बना रखा था, जिसे पुलस्त्य ऋषिने छुड़वाया। एक बार भूखे-प्यासे चित्रभानु (अग्निदेव)-को राजा कार्तवीर्यार्जुनने समस्त सप्तद्वीपा वसुन्धराको दानमें दे दिया। इस प्रकार वह कार्तवीर्यार्जुन बड़ा पराक्रमी एवं गुणवान् राजा हुआ था।

योगाचार्य भगवान् अनघ (दत्तात्रेय)-से वर प्राप्तकर कार्तवीर्यार्जुनने पृथ्वीलोकमें इस अनघाष्टमी-व्रतको प्रवर्तित किया। अघको पाप कहा जाता है यह तीन प्रकारका होता है—कायिक, वाचिक और मानसिक। यह अनघाष्टमी त्रिविध पापोंको नष्ट करनेवाली है, इसलिये इसे अनघा कहते हैं। इस व्रतके प्रभावसे अष्टविध ऐश्वर्य (अणिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, लघिमा, ईशित्व, वशित्व तथा सर्वकामावसायिता) प्राप्त कर लेना मानो विनोद ही है।

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—पुण्डरीकाक्ष! राजा कार्तवीर्यार्जुनके द्वारा प्रवर्तित यह अनघाष्टमी-व्रत किन मन्त्रोंके द्वारा, कब और कैसे किया जाता है? इसे आप बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! इस व्रतकी विधि इस प्रकार है—मार्गशीर्ष मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमीको कुशोंसे स्त्री-पुरुषकी प्रतिमा बनाकर भूमिपर स्थापित करनी चाहिये। उनमें एकमें सौम्य एवं शान्तिस्वरूपयुक्त अनघ (दत्तात्रेय)-की तथा दूसरेमें अनघा (लक्ष्मी)-की भावना करनी चाहिये और ऋग्वेदके विष्णुसूक्तसे* पूजा करनी चाहिये। पूजामें फल, कन्द, शृंगारकी सामग्री, बेर, विविध धान्य, विविध पुष्पका उपयोग करना चाहिये। दीपक जलाना चाहिये तथा ब्राह्मणों एवं बन्धु-बान्धवोंको भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार पूजा करनेवाला सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है, लक्ष्मी प्राप्त करता है तथा भगवान् विष्णु उसपर प्रसन्न हो जाते हैं। (अध्याय ५८)

---

* अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्त धामभिः॥
इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूहळमस्य पांसुरे॥
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्॥
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा॥
तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥
तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत् परमं पदम्॥ (ऋग्वेद १।२२।१६—२१)

सोमाष्टमी-व्रत-विधान

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं एक दूसरा व्रत बतला रहा हूँ, जो सर्वसम्मत, कल्याणप्रद एवं शिवलोक-प्रापक है। शुक्ल पक्षकी अष्टमीके दिन यदि सोमवार हो तो उस दिन उमासहित भगवान् चन्द्रचूडका पूजन करे। इसके लिये एक ऐसी प्रतिमाकी स्थापना करनी चाहिये, जिसका दक्षिण भाग शिवस्वरूप और वाम भाग उमास्वरूप हो। अनन्तर विधिपूर्वक उसे पञ्चामृतसे स्नान कराकर उसके दक्षिणभागमें कर्पूरयुक्त चन्दनका उपलेपन करे। श्वेत तथा रक्त पुष्प चढ़ाये और घृतमें पकाये गये नैवेद्यका भोग लगाये। पचीस प्रज्वलित दीपकोंसे उमासहित भगवान् चन्द्रचूडकी आरती करे। उस दिन निराहार रहकर दूसरे दिन प्रातः इसी प्रकार पूजन सम्पन्न कर तिल तथा घीसे हवन कर ब्राह्मणोंको भोजन कराये। यथाशक्ति सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करे और पितरोंका भी अर्चन करे। एक वर्षतक इस प्रकार व्रत करके एक त्रिकोण तथा दूसरा चतुष्कोण (चौकोर) मण्डल बनाये। त्रिकोणमें भगवती पार्वती तथा चौकोर मण्डलमें भगवान् शंकरको स्थापित करे। तदनन्तर पूर्वोक्त विधिके अनुसार पार्वती एवं शंकरकी पूजा करके श्वेत एवं पीत वस्त्रके दो वितान, पताका, घण्टा, धूपदानी, दीपमाला आदि पूजनके उपकरण ब्राह्मणको समर्पित करे और यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन भी कराये। ब्राह्मण-दम्पतिका वस्त्र, आभूषण, भोजन आदिसे पूजनकर पचीस प्रज्वलित दीपकोंसे धीरे-धीरे नीराजन करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक पाँच वर्षोंतक या एक वर्ष ही व्रत करनेसे व्रती उमासहित शिवलोकमें निवास कर अनामय पद प्राप्त करता है। जो पुरुष आजीवन इस व्रतको करता है, वह तो साक्षात् विष्णुरूप ही हो जाता है। उसके समीप आपत्ति, शोक, ज्वर आदि कभी नहीं आते। इतना विधान कहकर भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—महाराज इसी प्रकार रविवारयुक्त अष्टमीका भी व्रत होता है। उस दिन एक प्रतिमाके दक्षिण भागमें शिव और वाम भागमें पार्वतीजीकी पूजा करे। दिव्य पद्मरागसे भगवान् शंकरको और सुवर्णसे पार्वतीको अलंकृत करे। यदि रत्नोंकी सुविधा न हो सके तो सुवर्ण ही चढ़ाये। चन्दनसे भगवान् शिवको और कुंकुमसे देवी पार्वतीको अनुलिप्त करे। भगवती पार्वतीको लाल वस्त्र और लाल माला तथा भगवान् शंकरको रुद्राक्ष निवेदित कर नैवेद्यमें घृतपक्व पदार्थ निवेदित करे। शेष सारा विधान पूर्ववत् कर पारण गव्य-पदार्थोंसे करे। उद्यापन पूर्वरीत्या करना चाहिये। इस व्रतको एक वर्ष अथवा लगातार पाँच वर्ष करनेवाला सूर्य आदि लोकोंमें उत्तम भोगको प्राप्तकर अन्तमें परमपदको प्राप्त करता है। (अध्याय ५९)

श्रीवृक्षनवमी-व्रत-कथा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! देवता और दैत्योंने जब समुद्र-मन्थन किया था, तब उस समय समुद्रसे निकली हुई लक्ष्मीको देखकर सभीकी यह इच्छा हुई कि मैं ही लक्ष्मीको प्राप्त कर लूँ। लक्ष्मीकी प्राप्तिको लेकर देवता और दैत्योंमें परस्पर युद्ध होने लगा। उस समय लक्ष्मीने कुछ देरके लिय बिल्ववृक्षका आश्रय ग्रहण कर लिया। भगवान् विष्णुने सभीको जीतकर लक्ष्मीका वरण किया। लक्ष्मीने बिल्ववृक्षका आश्रय ग्रहण किया था, इसलिये उसे श्रीवृक्ष भी कहते हैं। अतः भाद्रपद

मासके शुक्ल पक्षकी नवमी तिथिको श्रीवृक्ष-नवमी-व्रत करना चाहिये। सूर्योदयके समय भक्तिपूर्वक अनेक पुष्पों, गन्ध, वस्त्र, फल, तिलपिष्ट, अन्न, गोधूम, धूप तथा माला आदिसे निम्नलिखित मन्त्रसे बिल्ववृक्षकी पूजा करे—

श्रीनिवास नमस्तेऽस्तु श्रीवृक्ष शिववल्लभ।
ममाभिलषितं कृत्वा सर्वविघ्नहरो भव॥

इस विधिसे पूजा कर श्रीवृक्षकी सात प्रदक्षिणा कर उसे प्रणाम करे। अनन्तर ब्राह्मणभोजन कराकर '**श्रीदेवी प्रीयताम्**' ऐसा कहकर प्रार्थना करे। तदनन्तर स्वयं भी तेल और नमकसे रहित बिना अग्निके संयोगसे तैयार किया गया भोजन, दही, पुष्प, फल आदिको मिट्टीके पात्रमें रखकर मौन हो ग्रहण करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक जो पुरुष या स्त्री श्रीवृक्षका पूजन करते हैं, वे अवश्य ही सभी सम्पत्तियोंको प्राप्त करते हैं। (अध्याय ६०)

ध्वजनवमी-व्रत-कथा

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! भगवती दुर्गाद्वारा महिषासुरके वध किये जानेपर दैत्योंने पूर्व-वैरका स्मरण कर देवताओंके साथ अनेक संग्राम किये। भगवतीने भी धर्मकी रक्षाके लिये अनेक रूप धारण कर दैत्योंका संहार किया। महिषासुरके पुत्र रक्तासुरने बहुत लम्बे समयतक घोर तपस्या कर ब्रह्माजीको प्रसन्न किया और ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर उसे तीनों लोकोंका राज्य दे दिया। उसने वर प्राप्तकर दैत्योंको एकत्रित किया तथा इन्द्रके साथ युद्ध करनेके लिये अमरावतीपर आक्रमण कर दिया। देवताओंने देखा कि दैत्य-सेना युद्धके लिये आ रही है, तब वे भी एकत्रित होकर देवराज इन्द्रकी अध्यक्षतामें युद्धके लिये आ डटे। घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया। दानवोंने इतना भयंकर युद्ध किया कि देवगण रण छोड़कर भाग गये। दैत्य रक्तासुर अमरावतीको अपने अधीन कर राज्य करने लगा। देवगण वहाँसे भागकर करछत्रापुरीमें गये, जहाँ भववल्लभा दुर्गा निवास करती हैं। चामुण्डा भी नवदुर्गाके साथ वहाँ विराजमान रहती हैं। वहाँ देवताओंने महालक्ष्मी, नन्दा, क्षेमकरी, शिवदूती, महारुण्डा, भ्रामरी, चन्द्रमङ्गला, रेवती और हरसिद्धि—इन नौ दुर्गाओंकी भक्तिपूर्वक स्तुति करते हुए कहा—'भगवति! इस घोर संकटसे आप हमारी रक्षा करें, हमारे लिये अब दूसरा कोई भी अवलम्ब नहीं है।'

देवताओंकी यह आर्त वाणी सुनकर बीस भुजाओंमें विभिन्न आयुध धारण किये सिंहारूढा नवदुर्गाके साथ कुमारीस्वरूपा भगवती प्रकट हो गयीं। तदनन्तर परम पराक्रमी और ब्रह्माजीके वरदानसे अभिमानी अधम अब्रह्मण्य प्रचण्ड दैत्यगण भी वहाँ आये, जिनमें इन्द्रमारी, गुरुकेशी, प्रलम्ब, नरक, कुष्ठ, पुलोमा, शरभ, शम्बर, दुन्दुभि, इल्वल, नमुचि, भौम, वातापि, धेनुक, कलि, मायावृत, बलबन्धु, कैटभ, कालजित्, राहु, पौण्ड्र आदि दैत्य मुख्य थे। ये प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी, विविध वाहनोंपर आरूढ अनेक प्रकारके शस्त्र, अस्त्र और ध्वजाओंको धारण किये हुए थे। उनके आगे पणव, भेरी, गोमुख, शङ्ख, डमरू, डिण्डिम आदि बाजे बज रहे थे। दैत्योंने युद्ध आरम्भ कर दिया और भगवतीपर शर, शूल, परिघ, पट्टिश, शक्ति, तोमर, कुन्त, शतघ्नी, गदा, मुद्गर आदि अनेक आयुधोंकी वृष्टि करने लगे। भगवती भी क्रोधसे प्रज्वलित हो दैत्योंका संहार करने लगीं। उनके ध्वज आदि चिह्नोंको बलपूर्वक छीनकर देवगणोंको सौंप दिया। क्षणभरमें ही उन्होंने अनन्त दैत्योंका नाश कर दिया। रक्तासुरके कण्ठको पकड़कर पृथ्वीपर पटककर

त्रिशूलसे उसका हृदय विदीर्ण कर दिया। बचे हुए दैत्यगण वहाँसे जान बचाकर भाग निकले। इस प्रकार देवीकी कृपासे देवताओंने विजय प्राप्तकर करछत्रापुरीमें आकर भगवतीका विशेष उत्सव मनाया। नगर तोरणों और ध्वजाओंसे अलंकृत किया गया। राजन्! जो नवमी तिथिको उपवासकर भगवतीका उत्सव करता है तथा उन्हें ध्वज अर्पण करता है, वह अवश्य ही विजयी होता है।

महाराज! अब इस व्रतकी विधि सुनिये। पौष मासके शुक्ल पक्षकी नवमी तिथिको स्नानकर पूजाके लिये पुष्प अपने हाथसे चुने और उनसे सिंहवाहिनी कुमारी भगवतीका पूजन करे। साथ ही विविध ध्वजाओंको भगवतीके सम्मुख स्थापित करे और मालती-पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, गन्ध, चन्दन, विविध फल, माला, वस्त्र, दधि एवं बिना अग्निसे सिद्ध विविध भक्ष्य भगवतीको निवेदित करे एवं इस मन्त्रको पढ़े—

रुद्रां भगवतीं कृष्णां ग्रहं नक्षत्रमालिनीम्।
प्रपन्नोऽहं शिवां रात्रिं सर्वशत्रुक्षयंकरीम्॥

—फिर कुमारियों और देवीभक्त ब्राह्मणोंको भोजन कराये, क्षमा-प्रार्थना करे, उपवास करे या भक्तिपूर्वक एकभुक्त रहे। इस प्रकारसे जो पुरुष नवमीको उपवास करता है और ध्वजाओंसे भगवतीको अलंकृत कर उनकी पूजा करता है, उसे चोर, अग्नि, जल, राजा, शत्रु आदिका भय नहीं रहता। इस नवमी तिथिको भगवतीने विजय प्राप्त की थी, अतः यह नवमी इन्हें बहुत प्रिय है। जो नवमीको भक्तिपूर्वक भगवतीकी पूजा कर इन्हें ध्वजारोपण करता है, वह सभी प्रकारके सुखोंको भोगकर अन्तमें वीरलोकको प्राप्त होता है। (अध्याय ६१)

उल्का-नवमी-व्रतका विधान और फल

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब आप उल्का-नवमी-व्रतके विषयमें सुनें। आश्विन मासके शुक्ल पक्षकी नवमीको नदीमें स्नानकर पितृदेवीकी विधिपूर्वक अर्चना करे। अनन्तर गन्ध, पुष्प, धूप, नैवेद्य आदिसे भैरव-प्रिया चामुण्डादेवीकी पूजा करे, तदनन्तर इस मन्त्रसे हाथ जोड़कर स्तुति करे—

महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि।
द्रव्यमारोग्यविजयौ देहि देवि नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व ६२।५)

इसके बाद यथाशक्ति सात, पाँच या एक कुमारीको भोजन कराकर उन्हें नीला कञ्चुक, आभूषण, वस्त्र एवं दक्षिणा आदि देकर संतुष्ट करे। श्रद्धासे भगवती प्रसन्न होती हैं। अनन्तर भूमिका अभ्युक्षण करे। तदनन्तर गोबरका चौका लगाकर आसनपर बैठ जाय। सामने पात्र रखकर, जो भी भोजन बना हो सारा परोस ले, फिर एक मुट्ठी तृण और सूखे पत्तोंको अग्निसे प्रज्वलित कर जितने समयतक प्रकाश रहे उतने समयमें ही भोजन सम्पन्न कर ले। अग्निके शान्त होते ही भोजन करना बंद कर आचमन करे। चामुण्डाका हृदयमें ध्यानकर प्रसन्नतापूर्वक घरका कार्य करे। इस प्रकार प्रतिमास व्रतकर वर्षके समाप्त होनेपर कुमारी-पूजा करे तथा उन्हें वस्त्र, आभूषण, भोजन आदि देकर उनसे क्षमा-याचना करे। ब्राह्मणको सुवर्ण एवं गौका दान करे। हे पार्थ! इस प्रकार जो पुरुष उल्का-नवमीका व्रत करता है, उसे शत्रु, अग्नि, राजा, चोर, भूत, प्रेत, पिशाच आदिका भय नहीं होता एवं युद्ध आदिमें उसपर शस्त्रोंका प्रहार नहीं लगता, देवी चामुण्डा उसकी सर्वत्र रक्षा करती हैं। इस उल्का-नवमी-व्रतको करनेवाले पुरुष और स्त्री उल्काकी तरह तेजस्वी हो जाते हैं। (अध्याय ६२)

दशावतार-व्रत-कथा, विधान और फल

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! सत्ययुगके प्रारम्भमें भृगु नामक एक ऋषि हुए थे। उनकी भार्या दिव्या[१] अत्यन्त पतिव्रता थीं। वे आश्रमकी शोभा थीं और निरन्तर गृहकार्यमें संलग्न रहती थीं। वे महर्षि भृगुकी आज्ञाका पालन करती थीं। भृगुजी भी उनसे बहुत प्रसन्न रहते थे।

किसी समय देवासुर-संग्राममें भगवान् विष्णुके द्वारा असुरोंको महान् भय उपस्थित हुआ। तब वे सभी असुर महर्षि भृगुकी शरणमें आये। महर्षि भृगु अपना अग्निहोत्र आदि कार्य अपनी भार्याको सौंपकर स्वयं संजीवनी-विद्याको प्राप्त करनेके लिये हिमालयके उत्तर भागमें जाकर तपस्या करने लगे। वे भगवान् शंकरकी आराधना कर संजीवनी-विद्याको प्राप्त कर दैत्यराज बलिको सदा विजयी करना चाहते थे। इसी समय गरुड़पर चढ़कर भगवान् विष्णु वहाँ आये और दैत्योंका वध करने लगे। क्षणभरमें ही उन्होंने दैत्योंका संहार कर दिया। भृगुकी पत्नी दिव्या भगवान्‌को शाप देनेके लिये उद्यत हो गयीं। उनके मुखसे शाप निकलना ही चाहता था कि भगवान् विष्णुने चक्रसे उनका सिर काट दिया। इतनेमें भृगुमुनि भी संजीवनी-विद्याको प्राप्तकर वहाँ आ गये। उन्होंने देखा कि सभी दैत्य मारे गये हैं और ब्राह्मणी भी मार दी गयी है। क्रोधान्ध हो भृगुने भगवान् विष्णुको शाप दे दिया कि 'तुम दस बार मनुष्यलोकमें जन्म लोगे।'

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! भृगुके शापसे जगत्‌की रक्षाके लिये मैं बार-बार अवतार ग्रहण करता हूँ। जो लोग भक्तिपूर्वक मेरी अर्चना करते हैं, वे अवश्य स्वर्गगामी होते हैं।

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! आप अपने दशावतार-व्रतका विधान कहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी दशमीको संयतेन्द्रिय हो नदी आदिमें स्नान कर तर्पण सम्पन्न करे तथा घर आकर तीन अञ्जलि धान्यका चूर्ण लेकर घृतमें पकाये। इस प्रकार दस वर्षोंतक प्रतिवर्ष करे। प्रतिवर्ष क्रमशः पूरी, घेवर, कसार, मोदक, सोहालक, खण्डवेष्टक, कोकरस, अपूप, कर्णवेष्ट तथा खण्डक—ये पक्वान्न उस चूर्णसे बनाये और उसे भगवान्‌को नैवेद्यके रूपमें समर्पित करे। प्रत्येक दशहराको दस गौएँ दस ब्राह्मणोंको दे। नैवेद्यका आधा भाग भगवान्‌के सामने रख दे, चौथाई ब्राह्मणको दे और चौथाई भाग पवित्र जलाशयपर जाकर बादमें स्वयं भी ग्रहण करे। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे मन्त्रपूर्वक दशावतारोंका पूजन करे। भगवान्‌के दस अवतारोंके नाम इस प्रकार हैं[२]—(१) मत्स्य, (२) कूर्म, (३) वराह, (४) नृसिंह, (५) त्रिविक्रम (वामन), (६) परशुराम, (७) श्रीराम, (८) श्रीकृष्ण, (९) बुद्ध तथा (१०) कल्कि।

अनन्तर प्रार्थना करे—

गतोऽस्मि शरणं देवं हरिं नारायणं प्रभुम्।
प्रणतोऽस्मि जगन्नाथं स मे विष्णुः प्रसीदतु॥
छिनत्तु वैष्णवीं मायां भक्त्या प्रीतो जनार्दनः।
श्वेतद्वीपं नयत्वस्मान्मयात्मा विनिवेदितः॥

(उत्तरपर्व ६३। २४-२५)

'दस अवतारोंको धारण करनेवाले सर्वव्यापी, सम्पूर्ण संसारके स्वामी हे नारायण हरि! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे देव! आप मुझपर प्रसन्न हों।

१-भागवत, विष्णु आदि पुराणोंमें भृगु-पत्नीका नाम 'ख्याति' आया है।

२-दशावतारोंमें दो पक्ष प्राप्त होते हैं, एकमें भगवान् कृष्णको पूर्णतम भगवान् मानकर केन्द्रमें रखा गया है और अन्यत्र उन्हें दस अवतारोंके भीतर ही रख लिया है। दोनों मत मान्य हैं, अतः संदेह नहीं करना चाहिये।

जनार्दन! आप भक्तिद्वारा प्रसन्न होते हैं। आप अपनी वैष्णवी मायाको निवारित करें, मुझे आप अपने धाममें ले चलें। मैंने अपनेको आपके लिये सौंप दिया है।'

इस प्रकार जो इस व्रतको करता है, वह भगवान्‌के अनुग्रहसे जन्म-मरणसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है और सदा विष्णुलोकमें निवास करता है। (अध्याय ६३)

आशादशमी-व्रत-कथा एवं व्रत-विधान

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—पार्थ! अब मैं आपसे आशादशमी-व्रत-कथा एवं उसके विधानका वर्णन कर रहा हूँ। प्राचीन कालमें निषध देशमें नल नामक एक राजा थे। उनके भाई पुष्करने द्यूतमें जब उन्हें पराजित कर दिया, तब नल अपनी भार्या दमयन्तीके साथ राज्यसे बाहर चले गये। वे प्रतिदिन एक वनसे दूसरे वनमें भ्रमण करते रहते थे, केवल जलमात्रसे अपना जीवन-निर्वाह करते थे और जनशून्य भयंकर वनोंमें घूमते रहते थे। एक बार राजाने वनमें स्वर्ण-सी कान्तिवाले कुछ पक्षियोंको देखा। उन्हें पकड़नेकी इच्छासे राजाने उनके ऊपर वस्त्र फैलाया, परंतु वे सभी उस वस्त्रको लेकर आकाशमें उड़ गये। इससे राजा बड़े दु:खी हो गये। वे दमयन्तीको गाढ़ निद्रामें देखकर उसे उसी स्थितिमें छोड़कर चले गये।

दमयन्तीने निद्रासे उठकर देखा तो नलको न पाकर वह उस घोर वनमें हाहाकार करते हुए रोने लगी। महान् दु:ख और शोकसे संतप्त होकर वह नलके दर्शनोंकी इच्छासे इधर-उधर भटकने लगी। इसी प्रकार कई दिन बीत गये और भटकते हुए वह चेदिदेशमें पहुँची। वहाँ वह उन्मत्त-सी रहने लगी। छोटे-छोटे शिशु उसे कौतुकवश घेरे रहते थे। किसी दिन मनुष्योंसे घिरी हुई उसे चेदिदेशके राजाकी माताने देखा। उस समय दमयन्ती चन्द्रमाकी रेखाके समान भूमिपर पड़ी हुई थी। उसका मुखमण्डल प्रकाशित था। राजमाताने उसे अपने भवनमें बुलाकर पूछा—'वरानने! तुम कौन हो?' इसपर दमयन्तीने लज्जित होते हुए कहा—'मैं सैरन्ध्री हूँ। मैं न किसीके चरण धोती हूँ और न किसीका उच्छिष्ट भक्षण करती हूँ। यहाँ रहते हुए कोई मुझे प्राप्त करेगा तो वह आपके द्वारा दण्डनीय होगा। देवि! इस प्रतिज्ञाके साथ मैं यहाँ रह सकती हूँ।' राजमाताने कहा—'ठीक है ऐसा ही होगा।' तब दमयन्तीने वहाँ रहना स्वीकार किया और इसी प्रकार कुछ समय व्यतीत हुआ और फिर एक ब्राह्मण दमयन्तीको उसके माता-पिताके घर ले आया। पर माता-पिता तथा भाइयोंका स्नेह पानेपर भी पतिके बिना वह अत्यन्त दु:खी रहती थी।

एक बार दमयन्तीने एक श्रेष्ठ ब्राह्मणको बुलाकर उससे पूछा—'हे ब्राह्मणदेवता! आप कोई ऐसा दान एवं व्रत बतलायें, जिससे मेरे पति मुझे प्राप्त हो जायँ।' इसपर उस बुद्धिमान् ब्राह्मणने कहा—'भद्रे! तुम मनोवाञ्छित सिद्धि प्रदान करनेवाले आशादशमी-व्रतको करो।' तब दमयन्तीने पुराणवेत्ता उस दमन नामक पुरोहित ब्राह्मणके द्वारा ऐसा कहे जानेपर आशादशमी-व्रतका अनुष्ठान किया। उस व्रतके प्रभावसे दमयन्तीने अपने पतिको पुन: प्राप्त किया।

युधिष्ठिरने पूछा—हे गोविन्द! यह आशादशमी-व्रत किस प्रकार और कैसे किया जाता है, आप सर्वज्ञ हैं, आप इसे बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे राजन्! इस व्रतके

प्रभावसे राजपुत्र अपना राज्य, कृषक खेती, वणिक् व्यापारमें लाभ, पुत्रार्थी पुत्र तथा मानव धर्म, अर्थ एवं कामकी सिद्धि प्राप्त करते हैं। कन्या श्रेष्ठ वर प्राप्त करती है, ब्राह्मण निर्विघ्न यज्ञ सम्पन्न कर लेता है, रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है और पतिके चिर-प्रवास हो जानेपर स्त्री उसे शीघ्र ही प्राप्त कर लेती है। शिशुके दन्तजनित पीड़ामें भी इस व्रतसे पीड़ा दूर हो जाती है और कष्ट नहीं होता। इसी प्रकार अन्य कार्योंकी सिद्धिके लिये इस आशादशमी-व्रतको करना चाहिये। जब भी जिस किसीको कोई कष्ट पड़े, उसकी निवृत्तिके लिये इस व्रतको करना चाहिये।

यह आशादशमी-व्रत किसी भी मासके शुक्ल पक्षकी दशमीको किया जाता है। इस दिन प्रातःकाल स्नान करके देवताओंकी पूजा कर रात्रिमें पुष्प, अलक्त तथा चन्दन आदिसे दस आशादेवियोंकी पूजा करनी चाहिये। घरके आँगनमें जौसे अथवा पिष्टातकसे पूर्वादि दसों दिशाओंके अधिपतियोंकी प्रतिमाओंको उनके वाहन तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित कर उन्हें ही ऐन्द्री आदि दिशा-देवियोंके रूपमें मानकर पूजन करना चाहिये। सबको घृतपूर्ण नैवेद्य, पृथक्-पृथक् दीपक तथा ऋतुफल आदि समर्पित करना चाहिये। इसके अनन्तर अपने कार्यकी सिद्धिके लिये इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

आशाश्चाशाः सदा सन्तु सिद्ध्यन्तां मे मनोरथाः।
भवतीनां प्रसादेन सदा कल्याणमस्त्विति॥

(उत्तरपर्व ६४। २५)

'हे आशादेवियो! मेरी आशाएँ सदा सफल हों, मेरे मनोरथ पूर्ण हों, आपलोगोंके अनुग्रहसे मेरा सदा कल्याण हो।'

इस प्रकार विधिवत् पूजा कर ब्राह्मणको दक्षिणा प्रदानकर प्रसाद ग्रहण करना चाहिये। इसी क्रमसे प्रत्येक मासमें इस व्रतको करना चाहिये। जबतक अपना मनोरथ पूर्ण न हो जाय, तबतक इस व्रतको करना चाहिये। अनन्तर उद्यापन करना चाहिये। उद्यापनमें आशादेवियोंकी सोने, चाँदी अथवा पिष्टातकसे प्रतिमा बनाकर घरके आँगनमें उनकी पूजा करके ऐन्द्री, आग्नेयी, याम्या, नैर्ऋति, वारुणि, वायव्या, सौम्या, ऐशानी, अधः तथा ब्राह्मी—इन दस आशादेवियों (दिशा-देवियों)-से अभीष्ट कामनाओंकी सिद्धिके लिये प्रार्थना करनी चाहिये, साथ ही नक्षत्रों, ग्रहों, ताराग्रहों, नक्षत्र-मातृकाओं, भूत-प्रेत-विनायकोंसे भी अभीष्ट-सिद्धिके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। पुष्प, फल, धूप, गन्ध, वस्त्र आदिसे उनकी पूजा करनी चाहिये। सुहागिनी स्त्रियोंको नृत्य-गीत आदिके द्वारा रात्रि-जागरण करना चाहिये। प्रातःकाल विद्वान् ब्राह्मणको सब कुछ पूजित पदार्थ निवेदित कर देना चाहिये और उन्हें प्रणाम कर क्षमा-याचना करनी चाहिये। अनन्तर बन्धु-बान्धवों एवं मित्रोंके साथ प्रसन्न-मनसे भोजन करना चाहिये। हे पार्थ! जो इस आशादशमी-व्रतको श्रद्धापूर्वक करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। यह व्रत स्त्रियोंके लिये विशेष श्रेयस्कर है।

(अध्याय ६४)

तारकद्वादशीके प्रसंगमें राजा कुशध्वजकी कथा तथा व्रत-विधान

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! मैं बहुत बड़ा पातकी हूँ। भीष्म, द्रोण आदि महात्माओंका मैंने वध किया। आप कृपाकर कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे मैं इस वधरूपी पापसमूहसे छुटकारा पा सकूँ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! प्राचीन कालमें विदर्भ देशमें एक बड़ा प्रतापी कुशध्वज नामका राजा रहता था। किसी दिन वह मृगयाके लिये वनमें गया। वहाँ उसने मृगके धोखेमें एक तपस्वी ब्राह्मणको बाणसे मार दिया। मरनेके बाद उस पापसे उसे भयंकर रौरव नरककी प्राप्ति हुई। फिर वह बहुत दिनोंतक नरककी यातनाको भोगकर भयंकर सर्प-योनिमें गया। सर्प-योनिमें भी उसने पाप किया। इस कारण उसे सिंह-योनि प्राप्त हुई। इस प्रकार उसने कई निन्द्य योनियोंमें जन्म लिया और उस-उस योनिमें पाप-कर्म करता रहा। इस कर्मविपाकसे उसे कष्ट भोगना पड़ता था। चूँकि उसने पूर्वजन्ममें तारकद्वादशीका व्रत किया था, अतः उस व्रतके प्रभावसे इन पाप-योनियोंसे वह जल्दी-जल्दी मुक्त होता गया। अन्तमें पुनः वह विदर्भ देशका धर्मात्मा राजा हुआ। वह भक्तिपूर्वक तारकद्वादशीका व्रत किया करता था। उसके प्रभावसे बहुत समयतक निष्कण्टक राज्यकर, मरनेपर उसने विष्णुलोकको प्राप्त किया।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—श्रीकृष्णचन्द्र! इस व्रतको किस प्रकार करना चाहिये?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको तारकद्वादशी-व्रत करना चाहिये। प्रातःकाल नदी आदिमें स्नानकर तर्पण, पूजन आदि सम्पन्न कर सूर्यास्ततक हवन करता रहे। सूर्यास्त होनेपर पवित्र भूमिके ऊपर गोमयसे ताराओंसहित एक सूर्य-मण्डलका निर्माण करे। उस आकाशमें चन्दनसे ध्रुवको भी अङ्कित करे। अनन्तर ताम्रके अर्घ्यपात्रमें पुष्प, फल, अक्षत, गन्ध, सुवर्ण तथा जल रखकर मस्तकतक उस अर्घ्यपात्रको उठाकर दोनों जानुओंको भूमिपर टेककर पूर्वाभिमुख होकर '**सहस्रशीर्षा०**' इस मन्त्रसे उस मण्डलको अर्घ्य प्रदान करे। अनन्तर ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। मार्गशीर्ष आदि बारह महीनोंमें क्रमशः खण्ड-खाद्य, सोहालक, तिल-तण्डुल, गुडके अपूप, मोदक, खण्डवेष्टक, सत्तू, गुडयुक्त पूरी, मधुशीर्ष, पायस, घृतपर्ण (करंज) और कसारका भोजन ब्राह्मणको कराये। तदनन्तर क्षमा-प्रार्थना कर मौन धारणपूर्वक स्वयं भी भोजन करे। उद्यापनमें चाँदीका तारकमण्डल बनाकर उसकी पूजा करे। मोदकके साथ बारह घड़े तथा दक्षिणाके साथ वह मण्डल ब्राह्मणको निवेदित कर दे। इस विधिसे जो पुरुष और स्त्री इस तारकद्वादशी-व्रतको करते हैं, वे सूर्यके समान देदीप्यमान विमानोंमें बैठकर नक्षत्र-लोकको जाते हैं। वहाँ अयुत वर्षोंतक निवास कर विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं। इस व्रतको सती, पार्वती, सीता, राज्ञी, दमयन्ती, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि श्रेष्ठ नारियोंने किया था। इस व्रतको करनेसे अनेक जन्मोंमें किये गये पातक नष्ट हो जाते हैं।

(अध्याय ६५)

अरण्यद्वादशी-व्रतका विधान और फल

महाराज युधिष्ठिरने कहा—श्रीकृष्णचन्द्र! आप अरण्यद्वादशी-व्रतका विधान बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—कौन्तेय! प्राचीन कालमें जिस व्रतको रामचन्द्रजीकी आज्ञासे वनमें सीताजीने किया था और अनेक प्रकारके भक्ष्य-भोज्य आदिसे मुनिपत्नियोंको संतुष्ट किया था, उस अरण्यद्वादशी-व्रतका विधान मैं बतलाता हूँ, आप प्रीतिपूर्वक सुनें। इस व्रतमें मार्गशीर्ष मासकी शुक्ला एकादशीको प्रातः स्नानकर भगवान् जनार्दनकी भक्तिपूर्वक गन्ध, पुष्पादि उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये और उपवास रखना चाहिये। रात्रिमें जागरण करना चाहिये। दूसरे दिन स्नान आदि करके वेदज्ञ ब्राह्मणोंको उपवनमें ले जाकर प्रायः फल आदि भोजन कराना चाहिये। अनन्तर पञ्चगव्यका प्राशन कर स्वयं भी भोजन करना चाहिये।

इस विधिसे एक वर्षतक व्रत करे। श्रावण, कार्तिक, माघ तथा चैत्र मासमें वृक्षादिसे सुशोभित किसी सुन्दर वनमें अरण्यवासियों, मुनियों तथा ब्राह्मणोंको पूर्व या उत्तरमुख आसनपर बैठाकर मण्डक, घृतपूर, खण्डवेष्टक, शाक, व्यञ्जन, अपूप, मोदक तथा सोहालक आदि अनेक प्रकारके पक्वान्न, फल तथा विभिन्न भोज्य पदार्थोंसे संतुष्ट करे और दक्षिणा प्रदान करे। कर्पूर, इलायची, कस्तूरी आदिसे सुगन्धित पानक पिलाना चाहिये। वनमें रहनेवाले मुनिगण एवं उनकी पत्नियों, एक दण्डी अथवा त्रिदण्डी और गृहस्थ आदि अन्य ब्राह्मणोंको भी भोजन कराना चाहिये। वासुदेव, जनार्दन, दामोदर, मधुसूदन, पद्मनाभ, विष्णु, गोवर्धन, त्रिविक्रम, श्रीधर, हृषीकेश, पुण्डरीकाक्ष तथा वराह—इन बारह नामोंसे नमस्कारपूर्वक एक-एक ब्राह्मणको भोजन कराकर वस्त्र और दक्षिणा देकर '**विष्णुर्मे प्रीयताम्**' यह वाक्य कहकर अपने मित्र, सम्बन्धी और बान्धवोंके साथ स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकारसे जो अरण्यद्वादशी-व्रत करता है, वह अपने परिवारके साथ दिव्य विमानमें बैठकर भगवान्‌के धाम श्वेतद्वीपमें निवास करता है। वह वहाँ प्रलयपर्यन्त निवासकर मुक्ति प्राप्त करता है। यदि कोई स्त्री भी इस व्रतका आचरण करती है तो वह भी संसारके सभी सुखोंका उपभोग कर भगवान्‌की कृपासे पतिलोकको प्राप्त करती है। (अध्याय ६६)

रोहिणीचन्द्र-व्रत तथा अवियोग-व्रतका विधान

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! वर्षाकालमें आकाश नीले मेघसे आच्छादित हो जाता है। मोर चारों ओर मीठी-मीठी बोली बोलने लगते हैं। मेढकोंकी ध्वनि भी बड़ी सुहावनी लगती है, इस समय कुलीन स्त्रियाँ किसको अर्घ्य दें तथा कौन-सा सत्कर्म करें और वे किस तिथिमें कौन-सा व्रत करें? आप इसका वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! श्रेष्ठ स्त्रियोंको इस समय रोहिणीचन्द्र-व्रतका पालन करना चाहिये। श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी एकादशीको पवित्र होकर सर्वौषधिमिश्रित जलसे स्नान करे, अनन्तर उड़दके आटेकी एक सौ इन्दुरिका और पाँच घृत-मोदक बनाये। सभी सामग्रियोंको लेकर उत्तम जलाशयपर जाय और उसके तटपर गोबरसे मण्डलकी रचना करे, उसमें रोहिणीके साथ चन्द्रमाको अङ्कित कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, अक्षत, नैवेद्य आदिसे उनकी अर्चना करे और इस प्रकार उनकी प्रार्थना करे—

सोमराज नमस्तुभ्यं रोहिण्यै ते नमो नमः।
महासति महादेवि सम्पादय ममेप्सितम्॥

(उत्तरपर्व ६७।८)

अनन्तर '**सोमो मे प्रीयताम्**' तथा '**देवी रोहिणी मे प्रीयताम्**' ऐसा कहते हुए पूजन-द्रव्य ब्राह्मणके लिये निवेदित कर दे। अनन्तर कमरतक जलमें उतरकर मनमें रोहिणीसहित चन्द्रमाका ध्यान करते हुए उन इन्दुरिकाओंका भक्षण कर ले। अनन्तर जलसे बाहर आकर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणा दे। प्रतिवर्ष इस विधिसे जो स्त्री अथवा पुरुष भक्तिपूर्वक व्रत करता है, वह धन-धान्य, पुत्र-पौत्रादिसे परिपूर्ण होकर बहुत दिनोंतक सुख भोगकर तीर्थ-स्थानमें मृत्युको प्राप्त करता है और ब्रह्मलोकको जाता है, अनन्तर विष्णुलोक, तदनन्तर शिवलोकमें जाता है।

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आप यह बतायें कि अवियोगव्रत किस विधिसे किया जाता है?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अवियोगव्रत सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ है, मैं उसका विधान बतलाता हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनें।

भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको प्रातः उठकर जलाशयपर जाकर स्नान करे, शुद्ध शुक्ल वस्त्र धारणकर सुन्दर लिपे-पुते स्थानपर गोबरसे एक मण्डलका निर्माण कर, उसमें लक्ष्मीसहित विष्णु, गौरीसहित शिव, सावित्रीसहित ब्रह्मा, राज्ञीसहित सूर्यनारायणकी प्रतिमा स्थापितकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे इन चारों देवदम्पतियोंके पृथक्-पृथक् नाम-मन्त्रोंसे आदिमें '**ॐ**' कार तथा अन्तमें '**नमः**' पदकी योजनाकर पूजा एवं प्रार्थना करे। अनन्तर ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। फिर विविध दान देकर स्वयं भी भोजन करना चाहिये। इस अवियोगव्रतको जो करता है, उसका कभी भी इष्टजनों (मित्र, पुत्र, पत्नी आदि)-से वियोग नहीं होता और बहुत समयतक वह सांसारिक सुखोंका भोगकर क्रमशः विष्णु, शिव, ब्रह्मा और सूर्यलोकमें निवास कर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है। जो स्त्री इस व्रतको करती है, वह भी अपने सभी अभीष्ट फलोंको प्राप्त कर विष्णुलोकको प्राप्त करती है। (अध्याय ६७-६८)

गोवत्सद्वादशीका विधान, गौओंका माहात्म्य, मुनियों और राजा उत्तानपादकी कथा

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! मेरे राज्यकी प्राप्तिके लिये अट्ठारह अक्षौहिणी सेनाएँ नष्ट हुई हैं, इस पापसे मेरे चित्तमें बहुत घृणा उत्पन्न हो गयी है। उसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र आदि सभी मारे गये हैं। भीष्म, द्रोण, कलिंगराज, कर्ण, शल्य, दुर्योधन आदिके मरनेसे मेरे हृदयमें महान् क्लेश है। हे जगत्पते! इन पापोंसे छुटकारा पानेके लिये किसी धर्मका आप वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे पार्थ! गोवत्सद्वादशी नामका व्रत अतीव पुण्य प्रदान करनेवाला है।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! यह गोवत्सद्वादशी कौन-सा व्रत है? इसके करनेका क्या विधान है? इसकी कब और कैसे उत्पत्ति हुई है? मैं नरकार्णवमें डूब रहा हूँ, प्रभो! आप मेरी रक्षा कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—पार्थ! सत्ययुगमें पुण्यशाली जम्बूमार्ग (भड़ौच)-में नामव्रतधरा नामक पर्वतके टंटावि नामक रमणीय शिखरपर भगवान् शंकरके दर्शन करनेकी इच्छासे करोड़ों मुनिगण तपस्या कर रहे थे। वह तपोवन अतुलनीय दिव्य काननोंसे मण्डित था। वह महर्षि भृगुका आश्रममण्डल था। विविध मृगगण और बंदरोंसे समन्वित था। सिंह आदि सभी जंगली पशु,

आनन्दपूर्वक निर्भय होकर वहाँ साथ-साथ ही निवास करते थे। उन तपस्यारत मुनियोंको दर्शन देनेके व्याजसे भगवान् शंकरने एक वृद्ध ब्राह्मणका वेश बना लिया। जर्जर-देहवाले वे वृद्ध ब्राह्मण हाथमें डंडा लिये काँपते हुए उस स्थानपर आये। जगन्माता पार्वती भी सुन्दर सवत्सा गौका रूप धारणकर वहाँ उपस्थित हुईं।

पार्थ! गौका जो स्वरूप है, उसे आप सुनें—प्राचीन कालमें क्षीरसागरके मन्थनके समय अमृतके साथ पाँच गौएँ उत्पन्न हुईं—नन्दा, सुभद्रा, सुरभि, सुशीला तथा बहुला। इन्हें लोकमाता कहा गया है। इनका आविर्भाव लोकोपकार तथा देवताओंकी तृप्तिके लिये हुआ है। देवताओंने अभीष्ट कामनाओंकी पूर्ति करनेवाली इन पाँच गौओंको महर्षि जमदग्नि, भरद्वाज, वसिष्ठ, असित तथा गौतममुनिको प्रदान किया और इन महाभागोंने इन्हें ग्रहण किया। गौओंके छः अङ्ग—गोमय, रोचना, मूत्र, दुग्ध, दधि और घृत—ये अत्यन्त पवित्र और संशुद्धिके साधन भी हैं। गोमयसे शिवप्रिय श्रीमान् बिल्ववृक्ष उत्पन्न हुआ, उसमें पद्महस्ता श्रीलक्ष्मी विद्यमान हैं, इसीलिये इसे श्रीवृक्ष कहा जाता है। गोमयसे ही कमलके बीज उत्पन्न हुए हैं। गोरोचन अतिशय मङ्गलमय है, यह पवित्र और सर्वार्थसाधक है। गोमूत्रसे गुग्गुलकी उत्पत्ति हुई है, जो देखनेमें प्रिय और सुगन्धियुक्त है। यह गुग्गुल सभी देवोंका आहार है। विशेषरूपसे शिवका आहार है। संसारमें जो कुछ भी मूलभूत बीज हैं, वे सभी गोदुग्धसे उत्पन्न हैं। प्रयोजनकी सिद्धिके लिये सभी माङ्गलिक पदार्थ दधिसे उत्पन्न हैं। घृतसे अमृत उत्पन्न होता है, जो देवोंकी तृप्तिका साधन है। ब्राह्मण और गौ एक ही कुलके दो भाग हैं। ब्राह्मणोंके हृदयमें तो वेदमन्त्र निवास करते हैं और गौओंके हृदयमें हवि रहती है। गायसे ही यज्ञ प्रवृत्त होता है और गौमें ही सभी देवगण प्रतिष्ठित हैं। गायमें ही छः अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेद समाहित हैं*।

गौओंके सींगकी जड़में सदा ब्रह्मा और विष्णु प्रतिष्ठित हैं। शृङ्गके अग्रभागमें सभी चराचर एवं समस्त तीर्थ प्रतिष्ठित हैं। सभी कारणोंके कारणस्वरूप महादेव शिव मध्यमें प्रतिष्ठित हैं। गौके ललाटमें गौरी, नासिकामें कार्तिकेय और नासिकाके दोनों पुटोंमें कम्बल तथा अश्वतर ये दो नाग प्रतिष्ठित हैं। दोनों कानोंमें अश्विनीकुमार, नेत्रोंमें चन्द्र और सूर्य, दाँतोंमें आठों वसुगण, जिह्वामें वरुण, कुहरमें सरस्वती, गण्डस्थलोंमें यम और यक्ष, ओष्ठोंमें दोनों संध्याएँ, ग्रीवामें इन्द्र, ककुद् (मौर)-में राक्षस, पार्ष्णि-भागमें द्यौ और जंघाओंमें चारों चरणोंसे धर्म सदा विराजमान रहता है। खुरोंके मध्यमें गन्धर्व, अग्रभागमें सर्प एवं पश्चिमभागमें

---

* क्षीरोदतोयसम्भूता याः पुरामृतमन्थने। पञ्च गावः शुभाः पार्थ पञ्चलोकस्य मातरः॥
नन्दा सुभद्रा सुरभिः सुशीला बहुला इति। एता लोकोपकाराय देवानां तर्पणाय च॥
जमदग्निभरद्वाजवसिष्ठासितगौतमाः। जगृहुः कामदाः पञ्च गावो दत्ताः सुरैस्ततः॥
गोमयं रोचनां मूत्रं क्षीरं दधि घृतं गवाम्। षडङ्गानि पवित्राणि संशुद्धिकरणानि च॥
गोमयादुत्थितः श्रीमान् बिल्ववृक्षः शिवप्रियः। तत्रास्ते पद्महस्ता श्रीः श्रीवृक्षस्तेन स स्मृतः।
बीजान्युत्पलपद्मानां पुनर्जातानि गोमयात्॥
गोरोचना च माङ्गल्या पवित्रा सर्वसाधिका।
गोमूत्राद् गुग्गुलुर्जातः सुगन्धिः प्रियदर्शनः। आहारः सर्वदेवानां शिवस्य च विशेषतः॥
यद्बीजं जगतः किंचित् तज्ज्ञेयं क्षीरसम्भवम्।
दधिजातानि सर्वाणि मङ्गलान्यर्थसिद्धये। घृतादमृतमुत्पन्नं देवानां तृप्तिकारणम्॥
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम्। एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र तिष्ठति॥
गोषु यज्ञाः प्रवर्तन्ते गोषु देवाः प्रतिष्ठिताः। गोषु वेदाः समुत्कीर्णाः सषडङ्गपदक्रमाः॥ (उत्तरपर्व ६९। १६—२४)

राक्षसगण प्रतिष्ठित हैं। गौके पृष्ठदेशमें एकादश रुद्र, सभी संधियोंमें वरुण, श्रोणितट (कमर)-में पितर, कपोलोंमें मानव तथा अपानमें स्वाहारूप अलंकारको आश्रित कर श्री अवस्थित हैं। आदित्यरश्मियाँ केशसमूहोंमें पिण्डीभूत हो अवस्थित हैं। गोमूत्रमें साक्षात् गङ्गा और गोमयमें यमुना स्थित हैं। रोमसमूहमें तैंतीस करोड़ देवगण प्रतिष्ठित हैं। उदरमें पर्वत और जंगलोंके साथ पृथ्वी अवस्थित है। चारों पयोधरोंमें चारों महासमुद्र स्थित हैं। क्षीरधाराओंमें मेघ, वृष्टि एवं जलविन्दु हैं, जठरमें गार्हपत्याग्नि, हृदयमें दक्षिणाग्नि, कण्ठमें आहवनीयाग्नि और तालुमें सभ्याग्नि स्थित है। गौओंकी अस्थियोंमें पर्वत और मज्जाओंमें यज्ञ स्थित हैं। सभी वेद भी गौओंमें प्रतिष्ठित हैं*।

हे युधिष्ठिर! भगवती उमाने उन सुरभियोंके रूपका स्मरणकर अपना भी रूप वैसा ही बना लिया। छः स्थानोंसे उन्नत, पाँच स्थानोंसे निम्न, मण्डूकनेत्रा, सुन्दर पूँछवाली, ताम्रके समान रक्त स्तनवाली, चाँदीके समान उज्ज्वल कटिभागवाली, सुन्दर खुर एवं सुन्दर मुखवाली, श्वेतवर्णा, सुशीला, पुत्रस्नेहवती, मधुर दूधवाली, शोभन पयोधरवाली—इस प्रकार सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न सवत्सा गोरूपधारिणी उस उमाको वृद्ध विप्ररूपधारी भगवान् शंकर प्रसन्नचित्त होकर चरा रहे थे। हे पार्थ! धीरे-धीरे वे उस आश्रममें गये और कुलपति भृगुके पास जाकर उन्होंने उस गायको न्यासरूपमें दो दिनतक उसकी सुरक्षा करनेके लिये उन्हें दे दिया और कहा—'मुने! मैं यहाँ स्नानकर जम्बूक्षेत्रमें जाऊँगा और दो दिन बाद लौटूँगा, तबतक आप इस गायकी रक्षा करें।' मुनियोंने भी उस गौकी सभी प्रकारसे रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा की। भगवान् शिव वहीं अन्तर्हित हो गये और फिर थोड़ी देर बाद वे एक व्याघ्र-रूपमें प्रकट हो गये तथा बछड़ेसहित गौको डराने लगे। ऋषिगण भी व्याघ्रके भयसे आक्रान्त हो आर्तनाद करने लगे और यथासम्भव व्याघ्रको हटानेके उपाय करने लगे। व्याघ्रके भयसे सवत्सा वह गौ भी कूद-कूदकर रँभाने लगी। युधिष्ठिर! व्याघ्रके भयसे डरी हुई गौके भागनेपर चारों खुरोंका चिह्न शिला-मध्यमें पड़ गया। आकाशमें देवताओं एवं किन्नरोंने व्याघ्र (भगवान् शंकर) और सवत्सा गौ (माता पार्वती)-की वन्दना की। शिलाका वह चिह्न आज भी सुस्पष्ट दीखता है। वह नर्मदाजीका उत्तम तीर्थ है। यहाँ शम्भुतीर्थके शिवलिङ्गका जो स्पर्श करता है, वह गोहत्यासे मुक्त हो जाता है। राजन्! जम्बूमार्गमें स्थित उस महातीर्थमें स्नान कर ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्ति मिल जाती है।

---

* शृङ्गमूले गवां नित्यं ब्रह्मा विष्णुश्च संस्थितौ। शृङ्गाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च॥
शिवो मध्ये महादेवः सर्वकारणकारणम्। ललाटे संस्थिता गौरी नासावंशे च षण्मुखः॥
कम्बलाश्वतरो नागौ नासापुटसमाश्रितौ। कर्णयोरश्विनौ देवौ चक्षुर्भ्यां शशिभास्करौ॥
दन्तेषु वसवः सर्वे जिह्वायां वरुणः स्थितः। सरस्वती च कुहरे यमयक्षौ च गण्डयोः॥
संध्याद्वयं तथोष्ठाभ्यां ग्रीवायां च पुरन्दरः। रक्षांसि ककुदे द्यौश्च पार्ष्णिकाये व्यवस्थिता॥
चतुष्पात्सकलो धर्मो नित्यं जङ्घासु तिष्ठति। खुरमध्येषु गन्धर्वाः खुराग्रेषु च पन्नगाः॥
खुराणां पश्चिमे भागे राक्षसाः सम्प्रतिष्ठिताः। रुद्रा एकादश पृष्ठे वरुणः सर्वसन्धिषु॥
श्रोणीतटस्थाः पितरः कपोलेषु च मानवाः। श्रीरपाने गवां नित्यं स्वाहालंकारमाश्रिताः॥
आदित्या रश्मयो बालाः पिण्डीभूता व्यवस्थिताः। साक्षाद्गङ्गा च गोमूत्रे गोमये यमुना स्थिता॥
त्रयस्त्रिंशद् देवकोट्यो रोमकूपे व्यवस्थिताः। उदरे पृथिवी सर्वा सशैलवनकानना॥
चत्वारः सागराः प्रोक्ता गवां ये तु पयोधराः। पर्जन्यः क्षीरधारासु मेघा विन्दुव्यवस्थिताः॥
जठरे गार्हपत्योऽग्निर्दक्षिणाग्निर्हृदि स्थितः। कण्ठे आहवनीयोऽग्निः सभ्योऽग्निस्तालुनि स्थितः॥
अस्थिव्यवस्थिताः शैला मज्जासु ऋतवः स्थिताः। ऋग्वेदोऽथर्ववेदश्च सामवेदो यजुस्तथा॥ (उत्तरपर्व ६९। २५—३७)

जब व्याघ्रसे सवत्सा गौ भयभीत हो रही थी, तब मुनियोंने क्रुद्ध होकर ब्रह्मासे प्राप्त भयंकर शब्द करनेवाले घंटेको बजाना प्रारम्भ किया। उस शब्दसे व्याघ्र भी सवत्सा गौको छोड़कर चला गया। ब्राह्मणोंने उसका नाम रखा ढुण्ढागिरि। हे पार्थ! जो मानव उसका दर्शन करते हैं, वे रुद्रस्वरूप ही हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं है। कुछ ही क्षणोंमें भगवान् शंकर व्याघ्ररूपको छोड़कर वहाँ साक्षात् प्रकट हो गये। वे वृषभपर आरूढ़ थे, भगवती उमा उनके वाम भागमें विराजमान थीं तथा विनायक कीर्तिकेयके साथ नन्दी, महाकाल, शृङ्गी, वीरभद्रा, चामुण्डा, घण्टाकर्णा आदिसे परिवृत और मातृका, भूतसमूह, यक्ष, राक्षस, गुह्यक, देव, दानव, गन्धर्व, मुनि, विद्याधर एवं नाग तथा उनकी पत्नियोंसे वे पूजित थे। सनकादि भी उनकी पूजा कर रहे थे।

राजन्! कार्तिक मासके शुक्ल पक्ष (मतान्तरसे कृष्ण पक्ष)-की द्वादशी तिथिमें ब्रह्मवादी ऋषियोंने सवत्सा गोरूपधारिणी उमादेवीकी नन्दिनी नामसे भक्तिपूर्वक पूजा की थी। इसीलिये इस दिन गोवत्सद्वादशी-व्रत किया जाता है। तभीसे उस व्रतका पृथ्वीतलपर प्रचार हुआ। राजा उत्तानपादने जिस प्रकार इस व्रतको पृथ्वीपर प्रचारित किया उसे आप सुनें—

उत्तानपाद नामक एक क्षत्रिय राजा थे। जिनकी सुरुचि और शुन्नी (सुनीति) नामकी दो रानियाँ थीं। सुनीतिसे ध्रुव नामका पुत्र हुआ। सुनीतिने अपने उस पुत्रको सुरुचिको सौंप दिया और कहा—'हे सखि! तुम इसकी रक्षा करो। मैं सदा स्वयं सेवामें तत्पर रहूँगी।' सुरुचि सदा गृहकार्य सँभालती और पतिव्रता सुनीति सदा पतिकी सेवा करती थी। सपत्नी-द्वेषके कारण किसी समय क्रोध और मात्सर्यसे सुरुचिने सुनीतिके शिशुको मार डाला, किंतु वह तत्क्षण ही जीवित होकर हँसता हुआ माँकी गोदमें स्थित हो गया। इसी प्रकार सुरुचिने कई बार यह कुकृत्य किया, किंतु वह बालक बार-बार जीवित हो उठता। उसको जीवित देखकर आश्चर्यचकित हो सुरुचिने सुनीतिसे पूछा—'देवि! यह कैसी विचित्र घटना है और यह किस व्रतका फल है, तुमने किस हवन या व्रतका अनुष्ठान किया है? जिससे तुम्हारा पुत्र बार-बार जीवित हो जाता है। क्या तुम्हें मृतसंजीवनी विद्या सिद्ध है? रत्न, महारत्न या कौन-सी विशिष्ट विद्या तुम्हारे पास है—यह सत्य-सत्य बताओ।'

सुनीतिने कहा—बहन! मैंने कार्तिक मासकी द्वादशीके दिन गोवत्सव्रत किया है, उसीके प्रभावसे मेरा पुत्र पुनः-पुनः जीवित हो जाता है। जब-जब मैं उसका स्मरण करती हूँ, वह मेरे पास ही आ जाता है। प्रवासमें रहनेपर भी इस व्रतके प्रभावसे पुत्र प्राप्त हो जाता है। इस गोवत्सद्वादशी-व्रतके करनेसे हे सुरुचि! तुम्हें भी सब कुछ प्राप्त हो जायगा और तुम्हारा कल्याण होगा। सुनीतिके कहनेपर सुरुचिने भी इस व्रतका पालन किया, जिससे उसे पुत्र, धन तथा सुख प्राप्त हुआ। सृष्टिकर्ता ब्रह्माने सुरुचिको उसके पति उत्तानपादके साथ प्रतिष्ठित कर दिया और आज भी वह आनन्दित हो रही है। दस नक्षत्रोंसे युक्त ध्रुव आज भी आकाशमें दिखायी देते हैं। ध्रुव नक्षत्रको देखनेसे सभी पापोंसे विमुक्ति हो जाती है।

युधिष्ठिरने कहा—हे भगवन्! इस व्रतकी विधि भी बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे कुरुश्रेष्ठ! कार्तिक मासमें शुक्ल पक्षकी द्वादशीको संकल्पपूर्वक श्रेष्ठ जलाशयमें स्नान कर पुरुष या स्त्री एक समय ही भोजन करे। अनन्तर मध्याह्नके समय वत्ससमन्वित गौकी गन्ध, पुष्प, अक्षत, कुंकुम, अलक्तक, दीप,

उड़दके बड़े, पुष्पों तथा पुष्पमालाओंद्वारा इस मन्त्रसे पूजा करे—

ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः। प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट नमो नमः स्वाहा॥ (ऋ० ८।१०१।१५)

इस प्रकार पूजाकर गौको ग्रास प्रदान करे और निम्नलिखित मन्त्रसे गौका स्पर्श करते हुए प्रार्थना एवं क्षमा-याचना करे—

ॐ सर्वदेवमये देवि लोकानां शुभनन्दिनि।
मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनि॥

(उत्तरपर्व ६९।८५)

इस प्रकार गौकी पूजाकर जलसे उसका पर्युक्षण करके भक्तिपूर्वक गौको प्रणाम करे। उस दिन तवापर पकाया हुआ भोजन न करे और ब्रह्मचर्यपूर्वक पृथ्वीपर शयन करे। इस व्रतके प्रभावसे व्रती सभी सुखोंको भोगते हुए अन्तमें गौके जितने रोयें हैं, उतने वर्षोंतक गोलोकमें वास करता है, इसमें संदेह नहीं है।

(अध्याय ६९)

देवशयनी एवं देवोत्थानी द्वादशीव्रतोंका विधान

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! अब मैं गोविन्द-शयन नामक व्रतका वर्णन कर रहा हूँ और कटिदान, समुत्थान एवं चातुर्मास्यव्रतका भी वर्णन करता हूँ, उसे आप सुनें।

युधिष्ठिरने पूछा—महाराज! यह देव-शयन क्या है? जब देवता भी सो जाते हैं, तब संसार कैसे चलता है? देव क्यों सोते हैं? और इस व्रतका क्या विधान है—इसे कहें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—भगवान् सूर्यके मिथुन राशिमें आनेपर भगवान् मधुसूदनकी मूर्तिको शयन करा दे और तुलाराशिमें सूर्यके जानेपर पुनः भगवान् जनार्दनको शयनसे उठाये। अधिमास आनेपर भी यही विधि है। अन्य प्रकारसे न तो हरिको शयन कराये और न उन्हें निद्रासे उठाये। आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षकी देवशयनी एकादशीको उपवास करे। भक्तिमान् पुरुष शुक्ल वस्त्रसे आच्छादित तकियेसे युक्त उत्तम शय्यापर पीताम्बरधारी, सौम्य, शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णुको शयन कराये। इतिहास और पुराणवेत्ता विष्णुभक्त पुरुष दही, दूध, शहद, घी और जलसे भगवान्‌की प्रतिमाको स्नान कराकर गन्ध, धूप, कुंकुम तथा वस्त्रोंसे अलंकृत कर निम्नलिखित मन्त्रसे प्रार्थना करे—

सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत् सुप्तं भवेदिदम्।
विबुद्धे त्वयि बुध्येत जगत् सर्वं चराचरम्॥

(उत्तरपर्व ७०।१०)

'हे जगन्नाथ! आपके सो जानेपर यह सारा जगत् सुप्त हो जाता है और आपके जग जानेपर सम्पूर्ण चराचर जगत् प्रबुद्ध हो जाता है।'

महाराज! इस प्रकार भगवान् विष्णुकी प्रतिमाको शय्यापर स्थापित कर उसीके सम्मुख वाणीपर नियन्त्रण रखनेका और अन्य नियमोंका व्रत ग्रहण करे। वर्षके चार मासतक देवाधिदेवके शयन और उसके बाद उत्थापनकी विधि कही गयी है।

राजन्! इस व्रतके त्यागने एवं ग्रहण करने योग्य पदार्थोंके अलग-अलग नियमोंको आप सुनें। गुड़का परित्याग करनेसे व्रती अगले जन्ममें मधुर वाणीवाला राजा होता है। इसी प्रकार चार मासतक तेलका परित्याग करनेवाला सुन्दर शरीरवाला होता है। कटु तैलका त्याग करनेसे उसके शत्रुओंका नाश होता है। महुएके तेलका त्याग करनेसे अतुल सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। पुष्प आदिके भोगका

परित्याग करनेसे स्वर्गमें विद्याधर होता है। इन चार मासोंमें जो योगका अभ्यास करता है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त करता है। कड़ुवा, खट्टा, तीता, मधुर, क्षार, कषाय आदि रसोंका जो त्याग करता है, वह वैरूप्य और दुर्गतिको कभी भी प्राप्त नहीं होता। ताम्बूलके त्यागसे श्रेष्ठ भोगोंको प्राप्त करता है और मधुर कण्ठवाला होता है। घृतके त्यागसे रमणीय लावण्य और सभी प्रकारकी सिद्धिको प्राप्त करता है। फलका त्याग करनेसे बुद्धिमान् होता है और अनेक पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। पत्तोंका साग खानेसे रोगी, अपक्व अन्न खानेसे निर्मल शरीरसे युक्त होता है। तैल-मर्दनके परित्यागसे व्रती दीप्तिमान्, दीप्तकरण, राजाधिराज धनाध्यक्ष कुबेरके सायुज्यको प्राप्त करता है। दही, दूध, तक्र (मट्ठा)-के त्यागका नियम* लेनेसे मनुष्य गोलोकको प्राप्त करता है। स्थालीपाकका परित्याग करनेपर इन्द्रका अतिथि होता है। तापपक्व वस्तुके भक्षणका नियम लेनेपर दीर्घायु संतानकी प्राप्ति होती है। पृथ्वीपर शयनका नियम लेनेसे विष्णुका भक्त होता है।

हे धर्मनन्दन! इन वस्तुओंके परित्यागसे धर्म होता है। नख और केशोंके धारण करनेपर, प्रतिदिन गङ्गा-स्नान करनेपर एवं मौनव्रती रहनेपर उसकी आज्ञाका कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता। जो सदा पृथ्वीपर भोजन करता है, वह पृथ्वीपति होता है। '**ॐ नमो नारायणाय**' इस अष्टाक्षर-मन्त्रका निराहार रहकर जप करने एवं भगवान् विष्णुके चरणोंकी वन्दना करनेसे गोदानजन्य फल प्राप्त होता है। भगवान् विष्णुके चरणोदकके संस्पर्शसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। चातुर्मास्यमें भगवान् विष्णुके मन्दिरमें उपलेपन और अर्चना करनेसे मनुष्य कल्पपर्यन्त स्थायी राजा होता है, इसमें संशय नहीं है। स्तुतिपाठ करता हुआ जो सौ बार भगवान् विष्णुकी प्रदक्षिणा करता है एवं पुष्प, माला आदिसे पूजा करता है, वह हंसयुक्त विमानके द्वारा विष्णुलोकको जाता है। विष्णु-सम्बन्धी गान और वाद्य करनेवाला गन्धर्वलोकको प्राप्त होता है। प्रतिदिन शास्त्र-चर्चासे जो लोगोंको ज्ञान प्रदान करता है, वह व्यासरूपी भगवान्के रूपमें मान्य होता है और अन्तमें विष्णुलोकको जाता है। नित्य स्नान करनेवाला मनुष्य कभी नरकोंमें नहीं जाता। भोजनका संयम करनेवाला मनुष्य पुष्करक्षेत्रमें स्नान करनेका फल प्राप्त करता है। भगवत्सम्बन्धी लीला-नाटक आदिका आयोजन करनेवाला अप्सराओंका राज्य प्राप्त करता है। अयाचित भोजन करनेवाला श्रेष्ठ बावली और कुँआ बनानेका फल प्राप्त करता है। दिनके छठे (अन्तिम) भागमें अन्नके भक्षण करनेसे मनुष्य स्थायीरूपसे स्वर्ग प्राप्त करता है। पत्तलमें भोजन करनेवाला मनुष्य कुरुक्षेत्रमें वास करनेका फल प्राप्त करता है। शिलापर नित्य भोजन करनेसे प्रयागमें स्नान करनेका फल प्राप्त करता है। दो प्रहरतक जलका त्याग करनेसे कभी रोगी नहीं होता।

हे पार्थ! चातुर्मास्यमें इस प्रकारके व्रत एवं नियमोंके पालनसे साधक पूर्ण संतोषको प्राप्त करता है अर्थात् सभी प्रकार सुखी एवं संतुष्ट हो जाता है। गरुडध्वज जगन्नाथके शयन करनेपर चारों वर्णोंकी विवाह, यज्ञ आदि सभी क्रियाएँ सम्पादित नहीं होतीं। विवाह, यज्ञोपवीतादि संस्कार, दीक्षा-ग्रहण, यज्ञ, गृहप्रवेशादि, गोदान, प्रतिष्ठा एवं जितने भी शुभ कर्म हैं, वे सभी चातुर्मास्यमें त्याज्य हैं। संक्रान्तिरहित मासमें अर्थात् मलमासमें देवता एवं पितरोंसे सम्बन्धित कोई भी क्रिया सम्पादित नहीं की जानी चाहिये। भाद्रपद मासके

* सावनमें मट्ठा, भाद्रपदमें दही और आश्विनमें दूधका परित्याग करना चाहिये।

शुक्ल पक्षकी एकादशीको भगवान् विष्णुका कटिदान होता है अर्थात् करवट बदलनेकी क्रिया सम्पन्न करनी चाहिये। इस दिन महापूजा करनी चाहिये।

राजन्! अब इस विष्णु-शयनका कारण सुनिये। किसी समय तपस्याके प्रभावसे हरिको संतुष्टकर योगनिद्राने प्रार्थना की कि भगवन्! आप मुझे भी अपने अङ्गोंमें स्थान दीजिये। तब मैंने देखा कि मेरा सम्पूर्ण शरीर तो लक्ष्मी आदिके द्वारा अधिष्ठित है। लक्ष्मीके द्वारा उर:स्थल, शङ्ख, चक्र, शार्ङ्गधनुष तथा असिके द्वारा बाहु, वैनतेयके द्वारा नाभिके नीचेके अङ्ग, मुकुटसे सिर, कुण्डलोंसे कान अवरुद्ध हैं। इसलिये मैंने संतुष्ट होकर नेत्रोंमें आदरसे योगनिद्राको स्थान दिया और कहा कि तुम वर्षमें चार मास मेरे आश्रित रहोगी। यह सुनकर प्रसन्न होकर योगनिद्राने मेरे नेत्रोंमें वास किया। मैं उस मनस्विनीको आदर देता हूँ। योगनिद्रामें जब मैं क्षीरसागरमें इस महानिद्रारूपी शेषशय्यापर शयन करता हूँ, उस समय ब्रह्माके सांनिध्यमें भगवती लक्ष्मी अपने करकमलोंसे मेरे दोनों चरणोंका मर्दन करती हैं और क्षीरसागरकी लहरें मेरे चरणोंको धोती हैं। हे पाण्डवश्रेष्ठ! जो मनुष्य इस चातुर्मास्यके समय अनेक व्रत-नियमपूर्वक रहता है, वह कल्पपर्यन्त विष्णुलोकमें निवास करता है। इसमें संशय नहीं। शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णु कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीमें जागते हैं, उसकी व्रत-विधि आप सुनिये। भगवान्को इस मन्त्रसे जगाना चाहिये— **'इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पाँ सुरे स्वाहा॥** (यजु० ५। १५) अपने आसनपर विष्णुके जागनेपर संसारकी सभी धार्मिक क्रियाएँ प्रवृत्त हो जाती हैं। शङ्ख, मृदंग आदि वाद्योंकी ध्वनि एवं जयघोषके साथ भगवान्को रात्रिमें रथपर बैठाकर घुमाना चाहिये। देवदेवेशके उठनेपर नगरको दीपादिसे देदीप्यमान कर नृत्य-गीत-वाद्य आदिसे मङ्गलोत्सव करना चाहिये। धरणीधर दामोदर भगवान् विष्णु उठकर जिस-जिसको देखते हैं, उस समय उन्हें प्रदत्त सभी वस्तुएँ मानवको स्वर्गमें प्राप्त होती हैं। एकादशीके दिन रात्रिमें मन्दिरमें जागरण करे। द्वादशीमें प्रात:काल स्वच्छ जलसे स्नानकर विष्णुकी पूजा करे। अग्निमें घृत आदि हव्य द्रव्योंसे हवन करे, अनन्तर स्नानकर ब्राह्मणको विशिष्ट अन्नोंका भोजन कराये। घी, दही, मधु, गुड आदिके द्वारा निर्मित मोदकको भोजनके लिये समर्पित करे। यजमान भी प्रसन्नतापूर्वक संयमित होकर ग्यारह, दस, आठ, पाँच या दो विप्रोंकी पुष्प, गन्ध आदिसे विधिवत् पूजा करे। श्रेष्ठ संन्यासियोंको भी भोजन कराये और संकल्पमें त्यक्त पदार्थ तथा अभीष्ट पत्र-पुष्प आदि दक्षिणाके साथ देकर उन्हें बिदा करे। अनन्तर स्वयं भोजन करना चाहिये। जिस वस्तुको चार मासतक छोड़ा है, उसे भी खाना चाहिये। ऐसा करनेसे धर्मकी प्राप्ति होती है। अन्तमें व्रती विष्णुपुरी (वैकुण्ठ)-को प्राप्त करता है। जिस व्यक्तिका चातुर्मास्यव्रत निर्विघ्न सम्पन्न होता है, वह कृतकृत्य हो जाता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। हे पार्थ! जो देवशयन-व्रतको विधिपूर्वक सम्पन्न करता हुआ अन्तमें भगवान् विष्णुको जगाता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। इस माहात्म्यको जो मनुष्य ध्यानसे सुनता है, स्तुति करता एवं कहता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। क्षीरसागरमें भगवान् अनन्त जिस दिन सोते हैं और जागते हैं, उस दिन अनन्यचित्तसे उपवास करनेवाला पुरुष सद्गतिको प्राप्त करता है।' (अध्याय ७०)

नीराजनद्वादशीव्रत-कथा एवं व्रत-विधान

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! प्राचीन कालमें अजपाल नामके एक राजर्षि थे। एक बार प्रजाने अपने दु:खोंको दूर करनेकी उनसे प्रार्थना की, तब उन्होंने इसपर गम्भीरतापूर्वक विचार किया और फिर नीराजन-शान्तिका अनुष्ठान किया। राजन्! आपको उस व्रतकी विधि बतलाता हूँ। हे पाण्डवश्रेष्ठ! राजाको पुरोहितके द्वारा इसे सविधि सम्पन्न कराना चाहिये।

जब अजपाल राजा था, उस समय राक्षसोंका स्वामी रावण लङ्काका राजा था। देवताओंको उसने अपनी सेवामें नियुक्त कर लिया था। रावणने चन्द्रमाको छत्र, इन्द्रको सेनापति, वायुको धूल साफ करनेवाला, वरुणको जलसेवक, कुबेरको धनरक्षक, यमको शत्रुको संयत करनेवाला तथा राजेन्द्र मनुको मन्त्रणाके लिये नियुक्त किया। मेघ उसके इच्छानुसार शीतल मन्द वृष्टि करते थे। ब्रह्माके साथ सप्तर्षिगण नित्य उसकी शान्तिकी कामना करते रहते थे। रावणने गन्धर्वोंको गानके लिये, अप्सराओंको नृत्य-गीतके लिये, विद्याधरोंको वाद्य-कार्यके लिये, गङ्गादि नदियोंको जलपान करानेके लिये, अग्निको गार्हपत्य-कार्यके लिये, विश्वकर्माको अन्न-संस्कारके लिये तथा यमको शिल्प आदि कार्योंके लिये नियुक्त किया और दूसरे राजागण नगरकी सेवाके विधानमें तत्पर रहते थे। रावणने ऐसा अपना प्रभाव देखकर अपने प्रसस्ति नामक प्रतिहारसे कहा—'यहाँ मेरी सेवाके लिये कौन आया है?' प्रणाम कर निशाचरने कहा—'प्रभो! ककुत्स्थ, मान्धाता, धुन्धुमार, नल, अर्जुन, ययाति, नहुष, भीम, राघव, विदूरथ—ये सभी तथा अन्य बहुत-से राजा आपकी सेवाके लिये यहाँ आये हैं, किंतु राजा अजपाल आपकी सेवामें नहीं आया है।' रावणने क्रुद्ध होकर शीघ्र ही धूम्राक्ष नामक राक्षससे कहा—'धूम्राक्ष! जाओ और अजपालको मेरी आज्ञाके अनुसार यह सूचना दो कि तुम आकर मेरी सेवा करो, अन्यथा तलवारसे तुमको मैं मार डालूँगा।' रावणके द्वारा ऐसा कहनेपर धूम्राक्ष गरुड़के समान तेज गतिसे उसकी रमणीय नगरीमें गया और राजकुलमें पहुँचा। धूम्राक्षने रावणके द्वारा कही गयी बातें उसे सुनायीं, किंतु अजपालने धूम्राक्षके आक्षेपपूर्वक अन्य कारणोंको कहते हुए लौटा दिया। तदनन्तर ज्वरको बुलाकर राजाने कहा—'तुम लङ्केश्वर रावणके पास जाओ और वहाँ यथोचित कार्य सम्पन्न करो।' अजपालके द्वारा नियुक्त मूर्तिमान् ज्वर वहाँ गया और उसने सभी गणोंके साथ बैठे हुए राक्षसपतिको प्रकम्पित कर दिया। रावणने उस परम भयंकर ज्वरको आया जानकर कहा कि अजपाल राजा वहीं रहे, मुझे उसकी जरूरत नहीं है। उसी बुद्धिमान् राजर्षि अजपालके द्वारा यह शान्ति प्रवर्तित हुई है, यह शान्ति सभी उपद्रवोंको दूर करनेवाली है। सभी रोगोंको नष्ट करनेवाली है।

कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिमें सायंकाल भगवान् विष्णुके जग जानेके बाद ब्राह्मणोंके द्वारा विष्णुका हवन करे। वर्धमान (एरण्ड) वृक्षोंसे प्राप्त तेलयुक्त दीपिकाओंसे भगवान् विष्णुका धीरे-धीरे नीराजन करे। पुष्प, चन्दन, अलंकार, वस्त्र एवं रत्न आदिसे उनकी पूजा करे। साथ ही लक्ष्मी, चण्डिका, ब्रह्मा, आदित्य, शंकर, गौरी, यक्ष, गणपति, ग्रह, माता-पिता तथा नाग सभीका नीराजन (आरती) करे। गौ, महिष आदिका भी नीराजन करे। घंटा आदि वाद्योंको बजाये। गौओंका सिन्दूर आदिसे तथा चित्र-विचित्र वस्त्रोंसे शृङ्गार करे और बछड़ोंके साथ उनको ले चले एवं उनके पीछे

गोपाल भी ध्वनि करते चलें। मङ्गलध्वनिसे युक्त गौओंके नीराजन-उत्सवमें घोड़ों आदिको भी ले चले। अपने घरके आँगनको राजचिह्नोंसे सुशोभित कर पुरोहितोंके साथ मन्त्री, नौकर आदिको लेकर राजा शङ्ख, तुरही आदिके द्वारा एवं गन्ध, पुष्प, वस्त्र, दीप आदिसे पूजा करे। पुरोहित **'शान्तिरस्तु', 'समृद्धिरस्तु'** ऐसा कहते रहें। यह महाशान्ति नामसे प्रसिद्ध नीराजन जिस राष्ट्र, नगर और गाँवमें सम्पन्न होता है, वहाँके सभी रोग एवं दुःख नष्ट हो जाते हैं तथा सुभिक्ष हो जाता है। राजा अजपालने इसी नीराजन-शान्तिसे अपने राष्ट्रकी वृद्धि की थी और सम्पूर्ण प्राणियोंको रोगसे मुक्त बना दिया था। इसलिये रोगादिकी निवृत्ति और अपना हित चाहनेवाले व्यक्तिको नीराजन-व्रतका अनुष्ठान प्रतिवर्ष करना चाहिये। भगवान् विष्णुका जो नीराजन करता है, वह गौ, ब्राह्मण, रथ, घोड़े आदिसे युक्त एवं नीरोग हो सुखसे जीवन-यापन करता है। (अध्याय ७१)

भीष्मपञ्चक-व्रतकी विधि एवं महिमा

युधिष्ठिरने कहा—हे यदुश्रेष्ठ कृष्ण! कार्तिक मासमें भीष्मपञ्चक नामका जो श्रेष्ठ व्रत होता है, अब कृपया उसका विधान बताइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! मैं आपसे व्रतोंमें सर्वोत्तम भीष्मपञ्चक-व्रतका वर्णन कर रहा हूँ। मैंने पहले इस व्रतका उपदेश भृगुजीको किया था, फिर भृगुने शुक्राचार्यको और शुक्राचार्यने प्रह्लाद आदि दैत्यों एवं अपने शिष्य ब्राह्मणोंको बताया। जैसे तेजस्वियोंमें अग्नि, शीघ्रगामियोंमें पवन, पूजनीयोंमें ब्राह्मण एवं दानोंमें सुवर्ण-दान श्रेष्ठ है, वैसे ही व्रतोंमें भीष्मपञ्चक-व्रत श्रेष्ठ है। लोकोंमें भूर्लोक, तीर्थोंमें गङ्गा, यज्ञोंमें अश्वमेध, शास्त्रोंमें वेद तथा देवताओंमें अच्युतका जैसा स्थान है, ठीक उसी प्रकारसे व्रतोंमें भीष्मपञ्चक सर्वोत्तम है। जो इस दुष्कर भीष्मपञ्चक-व्रतका अनुष्ठान कर लेता है, उसके द्वारा सभी धर्म सम्पादित हो जाते हैं। पहले सत्ययुगमें वसिष्ठ, भृगु, गर्ग आदि मुनियोंने, फिर त्रेतामें नाभाग, अम्बरीष आदि राजाओंने और द्वापरमें सीरभद्र आदि वैश्योंने तथा कलियुगमें उत्तम आचरणवाले शूद्रोंने भी इस व्रतका अनुष्ठान किया। ब्राह्मणोंने ब्रह्मचर्य-पालन, जप तथा हवन-कर्मके द्वारा और क्षत्रियों एवं वैश्योंने सत्य-शौच आदिके पालनपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान किया है। सत्यहीन मूढ मनुष्योंके लिये इस व्रतका अनुष्ठान असम्भव है। यह भीष्मपञ्चक-व्रत पाँच दिनतक होता है। इस भीष्मपञ्चक-व्रतमें असत्यभाषण, शिकार खेलने आदि अनुचित कर्मोंका त्याग करना चाहिये। पाँच दिन विष्णुभगवान्‌का पूजन करते हुए शाकमात्रका ही आहार करना चाहिये। पतिकी आज्ञासे स्त्री भी सुख-प्राप्तिहेतु इस व्रतका आचरण कर सकती है। विधवा नारी भी पुत्र-पौत्रोंकी समृद्धि अथवा मोक्षार्थ इस व्रतको कर सकती है। इसमें कार्तिक मासपर्यन्त नित्य प्रातः-स्नान, दान, मध्याह्न-स्नान और भगवान् विष्णुके पूजनका विधान है। नदी, झरना, देवखात या किसी पवित्र जलाशयमें शरीरमें गोमय लगाकर स्नान कर जौ, चावल तथा तिलोंसे देवता, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। भगवान् विष्णुको भी मधु, दुग्ध, घी तथा चन्दनमिश्रित जलसे भक्तिपूर्वक स्नान कराना चाहिये। कर्पूर, पञ्चगव्य, कुंकुम (केसर), चन्दन तथा सुगन्धित पदार्थोंके द्वारा भगवान् गरुडध्वज विष्णुका उपलेपन करना चाहिये। उनके सामने एक दीपक पाँच दिनोंतक अनवरत दिन-रात प्रज्वलित रखना चाहिये।

भगवान्‌को नैवेद्य निवेदित कर '**ॐ नमो वासुदेवाय**'-का अष्टोत्तरशत-जप, तदनन्तर षडक्षर-मन्त्रसे हवन करना चाहिये तथा विधिपूर्वक सायंकालीन संध्या करनी चाहिये। जमीनपर सोना चाहिये। ये सभी कार्य पाँच दिनोंतक किये जाने चाहिये। इस व्रतमें पहले दिन भगवान् विष्णुके चरणोंकी कमल-पुष्पोंके द्वारा पूजा करनी चाहिये। दूसरे दिन बिल्वपत्रके द्वारा उनके घुटनोंकी, तीसरे दिन नाभि-स्थलपर केवड़ेके पुष्पद्वारा पूजा करनी चाहिये। चौथे दिन बिल्व एवं जपा-पुष्पोंसे भगवान्‌के स्कन्ध-प्रदेशकी पूजा करनी चाहिये और पाँचवें दिन मालती-पुष्पोंसे भगवान्‌के शिरोभागकी पूजा करनी चाहिये।

इस प्रकार हृषीकेशका पूजन करते हुए व्रतीको एकादशीके दिन व्रत कर अभिमन्त्रित गोमय तथा द्वादशीको गोमूत्रका प्राशन करना चाहिये। त्रयोदशीको दूध तथा चतुर्दशीको दधिका प्राशन करना चाहिये। कायशुद्धिके लिये चारों दिन इनका प्राशन करना चाहिये। पाँचवें दिन स्नानकर केशवकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। इसी प्रकार पुराण-वाचकोंको भी वस्त्राभूषण प्रदान करना चाहिये। रात्रिमें पहले पञ्चगव्य-पान करके पीछे अन्न भोजन करे। इस प्रकारसे भीष्मपञ्चक-व्रतका समापन करना चाहिये। यह भीष्मपञ्चक-व्रत परम पवित्र और सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है। राजन्! इसी भीष्मपञ्चक-व्रतका वर्णन शरशय्यापर पड़े हुए महात्मा भीष्मने स्वयं किया था। इसे मैंने आपको बता दिया। जो मानव भक्तिपूर्वक इस व्रतका पालन करता है, उसे भगवान् अच्युत मुक्ति प्रदान करते हैं। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यासी जो कोई भी इस व्रतको करते हैं, उन्हें वैष्णव-स्थान प्राप्त होता है। कार्तिक शुक्ल एकादशीसे व्रत प्रारम्भ करके पौर्णमासीको व्रत पूर्ण करना चाहिये। जो इस व्रतको सम्पन्न करता है, वह ब्रह्महत्या, गोहत्या आदि बड़े-बड़े पापोंसे भी मुक्त हो जाता है और शुद्ध सद्गतिको प्राप्त होता है। ऐसा भीष्मका वचन है। (अध्याय ७२)

मल्लद्वादशी एवं भीमद्वादशी-व्रतका विधान

युधिष्ठिरके द्वारा मल्लद्वादशीके विषयमें पूछे जानेपर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा—महाराज! जब मेरी अवस्था आठ वर्षकी थी, उस समय यमुना-तटपर भाण्डीर-वनमें वट-वृक्षके नीचे एक सिंहासनपर मुझे बैठाकर सुरभद्र, मण्डलीक, योगवर्धन तथा यक्षेन्द्रभद्र आदि बड़े-बड़े मल्लों और गोपाली, धन्या, विशाखा, ध्याननिष्ठिका, अनुगन्धा, सुभगा आदि गोपियोंने दही, दूध और फल-फूल आदिसे मेरा पूजन किया। तत्पश्चात् तीन सौ साठ मल्लोंने भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करते हुए मल्लयुद्धको सम्पन्न किया तथा हमारी प्रसन्नताके लिये बड़ा भारी उत्सव मनाया। उस महोत्सवमें भाँति-भाँतिके भक्ष्य-भोज्य, गोदान, गोष्ठी तथा पूजन आदि कार्य सम्पन्न किये गये थे। श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंका पूजन भी हुआ था। उसी दिनसे वह मल्लद्वादशी प्रचलित हुई। इस व्रतको मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीसे आरम्भ कर कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीतक करना चाहिये और प्रतिमास क्रमसे केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ तथा दामोदर—इन नामोंसे गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, गीत-वाद्य, नृत्यसहित पूजन करे और '**कृष्णो मे प्रीयताम्**' इस प्रकार उच्चारण करे। यह द्वादशीव्रत मुझे

बहुत प्रिय है। चूँकि मल्लोंने इस बातको प्रारम्भ किया था, अतः इसका नाम मल्लद्वादशी है। जिन गोपोंके द्वारा इस व्रतको सम्पन्न किया गया, उन्हें गाय, महिषी, कृषि आदि प्रचुर मात्रामें प्राप्त हुआ। जो कोई पुरुष इस व्रतको सम्पन्न करेगा, मेरे अनुग्रहसे वह आरोग्य, बल, ऐश्वर्य और शाश्वत विष्णुलोकको प्राप्त करेगा।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—महाराज! प्राचीन कालमें विदर्भ देशमें भीम नामक एक प्रतापी राजा थे। वे दमयन्तीके पिता एवं राजा नलके ससुर थे। राजा भीम बड़े पराक्रमी, सत्यवक्ता और प्रजापालक थे। वे शास्त्रोक्त-विधिसे राज्य-कार्य करते थे। एक दिन तीर्थयात्रा करते हुए ब्रह्माजीके पुत्र पुलस्त्यमुनि उनके यहाँ पधारे। राजाने अर्घ्य-पाद्यादिद्वारा उनका बड़ा आदर-सत्कार किया, पुलस्त्यमुनिने प्रसन्न होकर राजासे कुशल-क्षेम पूछा, तब राजाने अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—'महाराज! जहाँ आप-जैसे महानुभावका आगमन हो, वहाँ सब कुशल ही होता है। आपके यहाँ पधारनेसे मैं पवित्र हो गया।' इस तरहसे अनेक प्रकारकी स्नेहकी बातें राजा तथा पुलस्त्यमुनिके बीच होती रहीं। कुछ समयके पश्चात् विदर्भाधिपति भीमने पुलस्त्यमुनिसे पूछा—प्रभो! संसारके जीव अनेक प्रकारके दुखोंसे सदा पीड़ित रहते हैं और उसमें गर्भवास सबसे बड़ा दुःख है, प्राणी अनेक प्रकारके रोगसे ग्रस्त हैं। जीवोंकी ऐसी दशाको देखकर मुझे अत्यन्त कष्ट होता है। अतः ऐसा कौन-सा उपाय है, जिसके द्वारा थोड़ा परिश्रम करके ही जीव संसारके दुःखोंसे छुटकारा पानेमें समर्थ हो जाय। यदि कोई व्रत-दानादि हो तो आप मुझे बतलायें।

पुलस्त्यमुनिने कहा—राजन्! यदि मानव माघ मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवास करे तो उसे कोई कष्ट नहीं हो सकता। यह तिथि परम पवित्र करनेवाली है। यह व्रत अति गुप्त है, किंतु आपके स्नेहने मुझे कहनेके लिये विवश कर दिया है। अदीक्षितसे इस व्रतको कभी नहीं कहना चाहिये, जितेन्द्रिय, धर्मनिष्ठ और विष्णुभक्त पुरुष ही इस व्रतके अधिकारी हैं। ब्रह्मघाती, गुरुघाती, स्त्रीघाती, कृतघ्न, मित्रद्रोही आदि बड़े-बड़े पातकी भी इस व्रतके करनेसे पापमुक्त हो जाते हैं। इसके लिये शुद्ध तिथिमें और अच्छे मुहूर्तमें दस हाथ लम्बा-चौड़ा मण्डप तैयार करना चाहिये तथा उसके मध्यमें पाँच हाथकी एक वेदी बनानी चाहिये। वेदीके ऊपर एक मण्डल बनाये, जो पाँच रंगोंसे युक्त हो। मण्डपमें आठ अथवा चार कुण्ड बनाये। कुण्डोंमें ब्राह्मणोंको उपस्थापित करे। मण्डलके मध्यमें कर्णिकाके ऊपर पश्चिमाभिमुख चतुर्भुज भगवान् जनार्दनकी प्रतिमा स्थापित कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, आदि भाँति-भाँतिके उपचारों तथा नैवेद्योंसे शास्त्रोक्त-विधिसे ब्राह्मणोंद्वारा उनकी पूजा करानी चाहिये। नारायणके सम्मुख दो स्तम्भ गाड़कर उनके ऊपर एक आड़ा काष्ठ रख उसमें एक दृढ़ छींका बाँधना चाहिये। उसपर सुवर्ण, चाँदी, ताम्र अथवा मृत्तिकाका सहस्र, शत या एक छिद्रसमन्वित उत्तम कलश जल, दूध अथवा घीसे पूर्ण कर रखना चाहिये। पलाशकी समिधा, तिल, घृत, खीर और शमी-पत्रोंसे ग्रहोंके लिये आहुति देनी चाहिये। ईशान-कोणमें ग्रहोंका पीठ-स्थापन कर ग्रह-यज्ञविधानसे ग्रहोंकी पूजा करनी चाहिये। पूर्व आदि दिशाओंमें इन्द्र, यम, वरुण और कुबेरका पूजन कर शुक्ल वस्त्र तथा चन्दनसे भूषित, हाथमें कुश लेकर यजमानको एक पीढ़ेके ऊपर भगवान्‌के सामने बैठना चाहिये। यजमानको एकाग्रचित्त हो कलशसे गिरती जलधारा (वसोर्धारा)-

को निम्नमन्त्रका पाठ करते हुए भगवान्‌को प्रणामपूर्वक अपने सिरपर धारण करना चाहिये—

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते भुवनेश्वर।
व्रतेनानेन मां पाहि परमात्मन् नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व ७४। ४२)

उस समय ब्राह्मणोंको चारों दिशाओंके कुण्डोंमें हवन करना चाहिये। साथ ही शान्तिकाध्याय और विष्णुसूक्तका पाठ किया जाना चाहिये। शङ्ख-ध्वनि करनी चाहिये। भाँति-भाँतिके वाद्योंको बजाना चाहिये। पुण्य-जयघोष करना चाहिये। माङ्गलिक स्तुति-पाठ करना चाहिये। इस तरहके माङ्गलिक कार्य करते हुए यजमानको हरिवंश, सौपर्णिक (सुपर्णसूक्त) आख्यान और महाभारत आदिका श्रवण करते हुए जागरणपूर्वक रात्रि व्यतीत करनी चाहिये। भगवान्‌के ऊपर गिरती हुई वसोर्धारा समस्त सिद्धियोंको प्रदान करनेवाली है। दूसरे दिन प्रातः यजमान ब्राह्मणोंके साथ किसी पुण्य जलाशय अथवा नदी आदिमें स्नानकर शुक्ल वस्त्र पहनकर प्रसन्नचित्तसे भगवान् भास्करको अर्घ्य दे। पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजा करे। हवन करके भक्तिपूर्वक पूर्णाहुति दे। यज्ञमें उपस्थित सभी ब्राह्मणोंका शय्या, भोजन, गोदान, वस्त्र, आभूषण आदिद्वारा पूजन करे और आचार्यकी विशेषरूपसे पूजा करे। जैसे ब्राह्मण एवं आचार्य संतुष्ट हों वैसा यत्न करे, क्योंकि आचार्य साक्षात् देवतुल्य गुरु है। दीनों, अनाथों तथा अभ्यागतोंको भी संतुष्ट करे। अनन्तर स्वयं भी हविष्यका भोजन करे।

राजन्! इस प्रकार मैंने इस भीमद्वादशी-व्रतका विधान बतलाया, इससे पापिष्ठ व्यक्ति भी पापमुक्त हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं। यह विष्णुयाग सैकड़ों वाजपेय एवं अतिरात्र यागोंसे विशेष फलदायी है। इस भीमद्वादशीका व्रत करनेवाले स्त्री-पुरुष सात जन्मोंतक अखण्ड सौभाग्य, आयु, आरोग्य तथा सभी सम्पदाओंको प्राप्त करते हैं। अनन्तर मृत्युके बाद क्रमशः विष्णुपुर, रुद्रलोक तथा ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। इस पृथ्वीलोकमें आकर पुनः वह सम्पूर्ण पृथ्वीका अधिपति एवं चक्रवर्ती धार्मिक राजा होता है।

इस व्रतको प्राचीन कालमें महात्मा सगर, अज, धुंधुमार, दिलीप, ययाति तथा अन्य महान् श्रेष्ठ राजाओंने किया था और स्त्री, वैश्य एवं शूद्रोंने भी धर्मकी कामनासे इस व्रतको किया था। भृगु आदि मुनियों और सभी वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा भी इसका अनुष्ठान हुआ था। हे राजन्! आपके पूछनेपर मैंने इसे बतलाया है, अतः आजसे यह द्वादशी आपके (भीमद्वादशी) नामसे पृथ्वीपर ख्याति प्राप्त करेगी। (अध्याय ७३-७४)

श्रवणद्वादशी-व्रतके प्रसंगमें एक वणिक्‌की कथा

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! जो व्यक्ति दीर्घ उपवास करनेमें असमर्थ हो उसके लिये कौन-सा व्रत है? इसे आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथि यदि श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो तो इसमें व्रत करनेसे सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यह परम पवित्र एवं महान् फल देनेवाली द्वादशी है। इस व्रतमें प्रातःकाल नदी-संगममें जाकर स्नान करके द्वादशीमें उपवास करना चाहिये। एकमात्र इस श्रवणद्वादशीके व्रत कर लेनेसे द्वादश द्वादशी-व्रतोंका फल प्राप्त हो जाता है। यदि इस तिथिमें बुधवारका भी योग हो जाय तो इसमें किये गये समस्त कर्म अक्षय हो जाते हैं। इस व्रतसे गङ्गास्नानका लाभ होता

है। इस व्रतमें एक सुन्दर कलशकी विधिवत् स्थापना कर उसमें भगवान् विष्णुकी प्रतिमा यथाविधि स्थापित करनी चाहिये। अनन्तर भगवान्‌की अङ्गपूजा करनी चाहिये। रात्रिमें जागरण करे। प्रभातकालमें स्नानकर गरुडध्वजकी पूजा करे और पुष्पाञ्जलि देकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक।
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव॥

(उत्तरपर्व ७५। १५)

अनन्तर वेदज्ञ एवं पुराणज्ञ ब्राह्मणोंकी पूजा करे और प्रतिमा आदि सब पदार्थ '**प्रीयतां मे जनार्दनः**' कहकर ब्राह्मणको निवेदित कर दे।

श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज! इस व्रतके प्रसंगमें एक प्राचीन आख्यान है, उसे आप सुनें—दशार्ण देशके पश्चिम भागमें सम्पूर्ण प्राणियोंको भय देनेवाला एक मरुदेश है। वहाँके भूमिकी बालू निरन्तर तपती रहती है, यत्र-तत्र भयंकर साँप घूमते रहते हैं। वहाँ छाया बहुत कम है। वृक्षोंमें पत्ते कम रहते हैं। प्राणी प्रायः मरे-जैसे ही रहते हैं। शमी, खैर, पलाश, करील, पीलु आदि कँटीले वृक्ष वहाँ हैं। वहाँ अन्न और जल बहुत कम मिलता है। वृक्षोंके कोटरोंमें छोटे-छोटे पक्षी प्यासे ही मर जाते हैं। वहाँके प्यासे हरिण मरुभूमिमें जलकी इच्छासे दौड़ लगाते रहते हैं और जल न मिलनेसे मर जाते हैं।

उस मरुस्थलमें दैववश एक वणिक् पहुँच गया। वह अपने साथियोंसे बिछुड़ गया था। उसने इधर-उधर घूमते हुए भयंकर पिशाचोंको वहाँ देखा। वह वणिक् भूख-प्याससे व्याकुल होकर इधर-उधर घूमने लगा। कहने लगा—क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कहाँसे मुझे अन्न-जल प्राप्त हो। तदनन्तर उसने एक प्रेतके स्कन्धप्रदेशपर बैठे एक प्रेतको देखा। जिसे चारों ओरसे अन्य प्रेत घेरे हुए थे। कन्धेपर चढ़ा हुआ वह प्रेत वणिक्‌को देखकर उसके पास आया और कहने लगा—'तुम इस निर्जल प्रदेशमें कैसे आ गये?' उसने बताया—'मेरे साथी छूट गये हैं, मैं अपने किसी पूर्व-कुकृत्यके फलसे या संयोगसे यहाँ पहुँच गया हूँ। भूख और प्याससे मेरे प्राण निकल रहे हैं। मैं अपने जीनेका कोई उपाय नहीं देख रहा हूँ।' इसपर वह प्रेत बोला—'तुम इस पुन्नाग-वृक्षके पास क्षणमात्र प्रतीक्षा करो। यहाँ तुम्हें अभीष्ट लाभ होगा, इसके बाद तुम यथेच्छ चले जाना।' वणिक् वहीं ठहर गया। दोपहरके समय कोई व्यक्ति पुन्नाग-वृक्षसे एक कसोरेमें जल तथा दूसरे कसोरेमें दही और भात लेकर प्रकट हुआ और उसने वह वणिक्‌को प्रदान किया। वणिक् उसे ग्रहणकर संतुष्ट हुआ। उसी व्यक्तिने प्रेत-समुदायको भी जल और दही-भात दिया, इससे वे सभी संतृप्त हो गये। शेष भागको उस व्यक्तिने स्वयं भी ग्रहण किया। इसपर आश्चर्यचकित होकर वणिक्‌ने उस प्रेताधिपसे पूछा—'ऐसे दुर्गम स्थानमें अन्न-जलकी प्राप्ति आपको कहाँसे होती है? थोड़ेसे ही अन्न-जलसे बहुतसे लोग कैसे तृप्त हो जाते हैं। मुझे सहारा देनेवाले इस स्थानमें आप कैसे मिल गये? हे शुभव्रत! आप यह बतलायें कि ग्रासमात्रसे ही आपको संतुष्टि कैसे हो गयी? इस घोर अटवीमें आपने अपना स्थान कहाँ बनाया है? मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है, मेरा संशय आप दूर करें।'

प्रेताधिपने कहा—हे भद्र! मैंने पहले बहुत दुष्कृत किया था। दुष्ट बुद्धिवाला मैं पहले रमणीय शाकल नगरमें रहता था। व्यापारमें ही मैंने अपना अधिकांश जीवन बिता दिया। प्रमादवश मैंने धनके लोभसे कभी भी भूखेको न अन्न दिया और न प्यासेकी प्यास ही बुझायी। मेरे ही घरके पास एक गुणवान् ब्राह्मण रहता था। वह भाद्रपद

मासकी श्रवण नक्षत्रसे युक्त द्वादशीके योगमें कभी मेरे साथ तोषा नामकी नदीमें गया। तोषा नदीका संगम चन्द्रभागासे हुआ है। चन्द्रभागा चन्द्रमाकी तथा तोषा सूर्यकी कन्या हैं। उन दोनोंका शीतोष्ण जल बड़ा मनोहर है। उस तीर्थमें जाकर हमलोगोंने स्नान किया और उपवास किया। हमने वहाँ दध्योदन, छत्र, वस्त्र आदि उपचारोंसे भगवान् विष्णुकी प्रतिमाकी पूजा की। इसके अनन्तर हमलोग घर आ गये। मरनेके अनन्तर नास्तिक होनेसे मैं प्रेतत्वको प्राप्त हुआ। इस घोर अटवीमें जो हो रहा है, वह तो आप देख ही रहे हैं। ये जो अन्य प्रेतगण आप देख रहे हैं, इनमें कुछ ब्राह्मणोंके धनका अपहरण करनेवाले, कोई परदारारत हैं, कोई अपने स्वामीसे द्रोह करनेवाले तथा कोई मित्रद्रोही हैं। मेरा अन्न-पान करनेसे ये सब मेरे सेवक बन गये हैं। भगवान् श्रीकृष्ण अक्षय, सनातन परमात्मा हैं। उनके उद्देश्यसे जो कुछ भी दान किया जाता है वह अक्षय होता है। हे महाभाग! आप हिमालयमें जाकर धन प्राप्त करेंगे, अनन्तर मुझपर कृपाकर आप इन प्रेतोंकी मुक्तिके लिये गयामें जाकर श्राद्ध करें। इतना कहकर वह प्रेताधिप मुक्त होकर विमानमें बैठकर स्वर्गलोक चला गया।

प्रेताधिपके चले जानेपर वह वणिक् हिमालयमें गया और वहाँ धन प्राप्त कर अपने घर आ गया और उस धनसे उसने गया तीर्थमें अक्षयवटके समीप उन प्रेतोंके उद्देश्यसे श्राद्ध किया। वह वणिक् जिस-जिस प्रेतकी मुक्तिके निमित्त श्राद्ध करता था, वह प्रेत वणिक्को स्वप्नमें दर्शन देकर कहता था कि 'हे महाभाग! आपकी कृपासे मैं प्रेतत्वसे मुक्त हो गया और मुझे परमगति प्राप्त हुई।' इस प्रकार वे सभी प्रेत मुक्त हो गये। राजन् वह वणिक् पुनः घर लौट आया और उसने भाद्रपद मासके श्रवण द्वादशीके योगमें भगवान् जनार्दनकी पूजा की, ब्राह्मणोंको गो-दान किया। जितेन्द्रिय होकर प्रतिवर्ष नदीके संगमोंपर यह सब कार्य किया और अन्तमें उसने मानवोंके लिये दुर्लभ स्थानको प्राप्त किया। (अध्याय ७५)

विजय-श्रवण-द्वादशीव्रतमें वामनावतारकी कथा तथा व्रत-विधि

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—युधिष्ठिर! भाद्रपद मासकी एकादशी तिथि यदि श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो तो उसे विजया तिथि कहते हैं, वह भक्तोंको विजय प्रदान करनेवाली है। एक बार दैत्यराज बलिसे पराजित होकर सभी देवता भगवान् विष्णुकी शरणमें पहुँचे और कहने लगे—'प्रभो! सभी देवताओंके एकमात्र आश्रय आप ही हैं। आप महान् कष्टसे हमारा उद्धार कीजिये। इस दैत्य बलिका आप विनाश कीजिये।' इसपर भगवान्ने कहा—'देवगणो! मैं यह जानता हूँ कि विरोचन-पुत्र बलि तीनों लोकोंका कण्टक बना हुआ है, पर उसने तपस्याद्वारा अपनी आत्माकी अपनेमें भावना कर ली है, वह शान्त है, जितेन्द्रिय है और मेरा भक्त है, उसके प्राण मुझमें ही लगे हैं। वह सत्यप्रतिज्ञ है। बहुत दिनोंके बाद उसकी तपस्याका अन्त होगा। जब मैं इसे अविनयसम्पन्न समझूँगा, तब उसका अभीष्ट हरण कर लूँगा और आपको दे दूँगा। पुत्रकी इच्छासे देवमाता अदिति भी मेरे पास आयी थीं। देवताओ! मैं उनका भी कल्याण करूँगा, अवतार लेकर देवताओंका संरक्षण और असुरोंका विनाश करूँगा। इसलिये आपलोग निश्चिन्त होकर जायँ और समयकी प्रतीक्षा करें। देवगण भगवान् विष्णुको स्मरण करते हुए वापस आ गये। इधर अदिति भी भगवान् विष्णुका

ध्यान करती थीं। कुछ कालमें उन्होंने गर्भमें भगवान्‌को धारण किया। नवें मासमें वामनभगवान् अदितिके गर्भसे प्रादुर्भूत हुए। उनके पैर छोटे, शरीर छोटा, सिर बड़ा और छोटे बच्चेके समान हाथ-पैर, उदर आदि थे। वामनरूपमें जब अदितिने पुत्रको देखा और जब वह कुछ कहनेको उद्यत हुईं तो देवमायासे उनकी वाणी अवरुद्ध हो गयी।

हे नरोत्तम! भाद्रपद मासके श्रवण नक्षत्रसे युक्त एकादशी तिथिमें जब त्रिविक्रम वामन-भगवान्‌का पृथ्वीपर अवतार हुआ तब पृथ्वी डगमगाने लगी। दैत्योंमें भय छा गया और देवगण प्रसन्न हो गये। महामुनि कश्यपने शिशुके जातकर्मादि संस्कार स्वयं ही किये। वामनभगवान् दण्ड, मेखला, यज्ञोपवीत, कमण्डलु तथा छत्र धारणकर राजा बलिके यज्ञस्थलमें गये। उन्होंने बलिसे कहा—'यज्ञपते! मुझे तीन पग भूमि प्रदान करो।' बलिने कहा—'मैंने दे दिया।' उसी समय भगवान् वामनने अपना शरीर बढ़ाना प्रारम्भ किया। भगवान्‌ने अपना शरीर इतना विशाल बना लिया कि एक पगसे सम्पूर्ण पृथ्वीलोकको नाप लिया तथा द्वितीय पगसे ब्रह्मलोक नाप लिया। तीसरा पग रखनेके लिये जब कोई स्थान न मिला तो देवगण, सिद्ध, ऋषि-मुनि इस कृत्यको देखकर साधु-साधु कहने लगे और भगवान्‌की स्तुति करने लगे। तदनन्तर सभी दैत्यगणोंको जीतकर उन्होंने दैत्यराज बलिसे कहा—'तुम अपने परिजनोंके साथ सुतललोकमें चले जाओ। मेरे द्वारा सुरक्षित रहकर तुम वहाँ अभीप्सित भोगोंका उपभोग करोगे। वर्तमानमें जो इन्द्र हैं, उनके बाद तुम इन्द्रत्वको प्राप्त करोगे।' बलि भगवान्‌को प्रणामकर प्रसन्न हो सुतललोकको चला गया। भगवान्‌ने देवताओंसे कहा—'आपलोग अपने-अपने स्थानपर निश्चिन्त होकर रहें।' भगवान् भी संसारका कल्याण करके वहीं अन्तर्धान हो गये।

राजन्! ये सभी कर्म एकादशी तिथिको हुए थे। अतः यह तिथि देवताओंकी विजयतिथि मानी गयी है। यही एकादशी तिथि फाल्गुन मासमें पुष्य नक्षत्रसे युक्त होनेपर विजया तिथि कही गयी है। एकादशीके दिन उपवासकर रात्रिमें भगवान् वामनकी प्रतिमा बनाकर पूजा करनी चाहिये। प्रतिमाके समीप ही कुण्डिका, छत्र, चरणपादुका, यष्टि, यज्ञोपवीत, कमण्डलु तथा मृगचर्म आदि स्थापित करना चाहिये। अनन्तर विधिवत् उनकी पूजा करनी चाहिये। निम्न मन्त्रोंसे उन्हें नमस्कार करे और प्रार्थना करे—

अनेककर्मनिर्बन्धध्वंसिनं जलशायिनम्।
नतोऽस्मि मधुरावासं माधवं मधुसूदनम्॥
नमो वामनरूपाय नमस्तेऽस्तु त्रिविक्रम।
नमस्ते मणिबन्धाय वासुदेव नमोऽस्तु ते॥
नमो नमस्ते गोविन्द वामनेश त्रिविक्रम॥
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वकामप्रदो भव॥

(उत्तरपर्व ७६। ४८—५१)

इसके अनन्तर भगवान्‌को शयन कराये। गीत-वाद्य, स्तुति आदिके द्वारा जागरण करे। प्रातःकाल उस प्रतिमाकी पूजाकर मन्त्रपूर्वक उसे ब्राह्मणको निवेदित कर दे। ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। इस व्रतके करनेसे व्रतीका एक मन्वन्तरपर्यन्त विष्णुलोकमें वास होता है, तदनन्तर वह इस लोकमें आकर चक्रवर्ती दानी राजा होता है। वह नीरोग, दीर्घायु एवं पुत्रवान् होता है। (अध्याय ७६)

सम्प्राप्ति-द्वादशी एवं गोविन्द-द्वादशीव्रत

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पौष मासके कृष्ण पक्षकी द्वादशीसे ज्येष्ठ मासकी द्वादशीतक प्रत्येक मासकी कृष्ण द्वादशीको षाण्मासिक सम्प्राप्ति-द्वादशीव्रत किया जाता है। प्रत्येक मासमें क्रमशः पुण्डरीकाक्ष, माधव, विश्वरूप, पुरुषोत्तम, अच्युत तथा जय—इन नामोंसे उपवासपूर्वक भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। पुनः आषाढ़ कृष्ण द्वादशीसे व्रत ग्रहणकर मार्गशीर्षतक व्रतका नियम लेना चाहिये। पूर्वविधानसे उपवासपूर्वक उन्हीं नामोंसे क्रमशः भगवान्‌का पूजन करना चाहिये। प्रतिमास ब्राह्मणको भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। तेल एवं क्षार पदार्थ नहीं ग्रहण करने चाहिये। इस प्रकार एक वर्षतक इस व्रतके करनेसे सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और अन्तमें वह भगवान्‌के अनुग्रहसे उनके लोकको प्राप्त कर लेता है।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज! इसी प्रकार गोविन्द-द्वादशी नामका एक अन्य व्रत है, जिसके करनेसे सभी अभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं। पौष मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवास कर पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे कमलनयन भगवान् गोविन्दका पूजनकर अन्तर्मनमें भी इसी नामका उच्चारण करते रहना चाहिये। इस दिन पाखण्डियोंसे बात नहीं करनी चाहिये। ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये। व्रतीको गोमूत्र, गोमय, दधि अथवा गोदुग्धका प्राशन करना चाहिये। दूसरे दिन स्नानकर उसी विधिसे गोविन्दका पूजन कर ब्राह्मणको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करना चाहिये। इसके साथ ही इस दिन गौको तृप्तिपूर्वक भोजन कराना चाहिये। इसी प्रकार प्रतिमास व्रत करते हुए वर्ष समाप्त होनेपर भगवती लक्ष्मीके साथ सुवर्णकी भगवान् गोविन्दकी प्रतिमा बनवाकर पुष्प, धूप, दीप, माला, नैवेद्य आदिसे उसका पूजनकर सवत्सा गौसहित ब्राह्मणोंको देना चाहिये। प्रतिमास गौओंकी पूजा तथा उन्हें ग्रासादिसे तृप्त करना चाहिये। पारणाके दिन विशेषरूपसे उनकी सेवा-भक्ति करनी चाहिये। इस व्रतको करनेसे वही फल प्राप्त होता है जो सुवर्णशृङ्गी सौ गोओंके साथ एक उत्तम वृषका दान देनेसे होता है। इस व्रतको सम्यक्-रूपसे करनेवाला सब सुख भोगकर अन्तमें गोलोकको प्राप्त होता है। (अध्याय ७७-७८)

अखण्ड-द्वादशी, मनोरथ-द्वादशी एवं तिल-द्वादशी-व्रतोंका विधान

राजा युधिष्ठिरने पूछा—श्रीकृष्ण! व्रतोपवास, दान, धर्म आदिमें जो कुछ वैकल्य अर्थात् किसी बातकी न्यूनता रह जाय तो क्या फल होता है? इसे आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! राज्य पाकर भी जो निर्धन, उत्तम रूप पाकर भी काने, अंधे, लँगड़े हो जाते हैं, वे सब धर्म-वैकल्यके प्रभावसे ही होते हैं। धर्म-वैकल्यसे ही स्त्री-पुरुषोंमें वियोग एवं दुर्भगत्व होता है, उत्तम कुलमें जन्म पाकर भी लोग दुःशील हो जाते हैं, धनाढ्य होकर भी धनका भोग तथा दान नहीं कर सकते तथा वस्त्र-आभूषणोंसे हीन रहते हैं। वे सुख प्राप्त नहीं कर पाते। अतः यज्ञमें, व्रतमें और भी अन्य धर्म-कृत्योंमें कभी कोई त्रुटि नहीं होने देनी चाहिये।

युधिष्ठिरने पुनः कहा—भगवन्! यदि कदाचित् उपवास आदिमें कोई त्रुटि हो ही जाय तो उसके निवारणार्थ क्या करना चाहिये?

श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अखण्ड-द्वादशी-व्रत करनेसे सभी प्रकारकी धार्मिक त्रुटियाँ दूर हो जाती हैं। अब आप उसका भी विधान सुनें। मार्गशीर्ष

मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको स्नानकर जनार्दन भगवान्‌का भक्तिपूर्वक पूजन कर उपवास रखना चाहिये और नारायणका सतत स्मरण करते रहना चाहिये। जितेन्द्रिय पुरुष पञ्चगव्यमिश्रित जलसे स्नान करके जौ और व्रीहि (धान)-से भरा पात्र ब्राह्मणको दान करे और फिर भगवान्‌से यह प्रार्थना करे —

सप्तजन्मनि यत्किंचिन्मया खण्डव्रतं कृतम्।
भगवन् त्वत्प्रसादेन तदखण्डमिहास्तु मे॥
यथाखण्डं जगत् सर्वं त्वयैव पुरुषोत्तम।
तथाखिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्तु वै॥

(उत्तरपर्व ७९। १४-१५)

'भगवन्! मुझसे सात जन्मोंमें जो भी व्रत करनेमें न्यूनता हुई हो, वह सब आपके अनुग्रहसे परिपूर्ण हो जाय। पुरुषोत्तम! जिस प्रकार आपसे यह सारा जगत् परिपूर्ण है, उसी प्रकार मेरे खण्डित सभी व्रत पूर्ण हो जायँ।'

इस व्रतमें चार महीनेमें व्रतकी पारणा करनी चाहिये। चैत्रादि चार मासके अनन्तर दूसरी पारणा कर सत्तू-पात्र ब्राह्मणको देनेका विधान है। श्रावणादि चार मासके अनन्तर तीसरा पारण कर नारायणका पूजन करते हुए अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्ण, चाँदी, मृत्तिका अथवा पलाश-पत्रके पात्रमें घृत-दान करना चाहिये। संवत्सर पूर्ण होनेपर जितेन्द्रिय बारह ब्राह्मणोंको खीरका भोजन कराकर वस्त्राभूषण देकर त्रुटियोंके लिये क्षमा माँगनी चाहिये। इसमें आचार्यका विधिपूर्वक पूजन करनेका भी विधान है। इस तरहसे जो अखण्ड-द्वादशीका व्रत करता है, उसके सात जन्मतक किये हुए व्रत सम्पूर्ण फलदायक हो जाते हैं। अतः स्त्री-पुरुषोंको व्रतोंका वैकल्य दूर करनेके लिये अवश्य ही इस व्रतको सम्पादित करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज! स्त्री अथवा पुरुष दोनोंको फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीको उपवास कर जगत्पति भगवान्‌का पूजन-भजन और उठते-बैठते नित्य हरिका स्मरण करते रहना चाहिये। द्वादशीके दिन प्रभातमें ही स्नान-पूजन तथा घृतसे हवनके बाद ब्राह्मणको दक्षिणा देनेका विधान है। तदनन्तर भगवान्‌से अपने अभीष्ट मनोरथोंकी संसिद्धिके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। तत्पश्चात् हविष्य-भोजन ग्रहण करना चाहिये। इस व्रतमें फाल्गुनसे ज्येष्ठतक प्रथम चार महीनोंमें रक्त पुष्प, गुग्गुल-धूप और हविष्यान्न-नैवेद्यसे भगवान्‌की पूजा-अर्चनाके बाद गोशृङ्गछालित जल तथा हविष्यान्न ग्रहण करनेका विधान है। फिर आषाढ़से आश्विनतक चार महीनोंमें चमेलीके पुष्प, धूप और शाल्यन्न (साठी धान) आदिके नैवेद्योंद्वारा भगवान्‌की पूजा-स्तुति करनेके वाद कुशोदकका प्राशन तथा निवेदित नैवेद्य भक्षण करना चाहिये। कार्तिकसे माघ मासतक तीसरी पारणामें जपापुष्प (अड़हुल), उत्तम धूप और कसारके नैवेद्यसे नारायणके पूजनोपरान्त गोमूत्र-प्राशन तथा कसार-भक्षण करनेका विधान है। प्रतिमास ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये। वर्षके अन्तमें एक कर्ष (माशा) सुवर्णकी भगवान् नारायणकी प्रतिमाका पूजन कर, दो वस्त्र और दक्षिणासहित ब्राह्मणको निवेदित करना चाहिये। इसीके साथ बारह ब्राह्मणोंको भी भोजन कराकर प्रत्येकको अन्न, जलका घट, छतरी, जूता, वस्त्र और दक्षिणा देनी चाहिये। इस द्वादशी-व्रतके करनेसे सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। इसीसे इसका नाम मनोरथ-द्वादशी है। इन्द्रको त्रैलोक्यका राज्य भी इसी व्रतके परिणामस्वरूप प्राप्त हुआ है। शुक्राचार्यने धन तथा महर्षि धौम्यने निर्विघ्न विद्या प्राप्त की है। अन्य श्रेष्ठ पुरुषोंने तथा स्त्रियोंने भी इस व्रतके प्रभावसे अपने अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त किया है। जो कोई भी जिस-किसी अभिलाषासे इस व्रतको करता है, वह अवश्य पूर्ण होती है। जो पुरुष भगवान् पुरुषोत्तमका पूजन नहीं करते, गौ, ब्राह्मण आदिकी सेवा नहीं करते और मनोरथ-द्वादशीका

व्रत नहीं रखते, वे किसी भी प्रकारसे अपना अभीष्ट-फल प्राप्त नहीं कर सकते।

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! थोड़े-से परिश्रमसे अथवा स्वल्पदानसे सभी पाप कट जायँ ऐसा कोई उपाय आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! तिल-द्वादशी नामक एक व्रत है, जो परम पवित्र है और सभी पापोंका नाश करनेवाला है। माघ मासके कृष्ण पक्षकी द्वादशीको जब मूल अथवा पूर्वाषाढ़ नक्षत्र प्राप्त हो, तब उसके एक दिन पूर्व अर्थात् एकादशीको उपवास रखकर व्रत ग्रहण करना चाहिये। द्वादशीको भगवान् श्रीकृष्णका पूजन कर ब्राह्मणको कृष्ण तिलोंका दान करना चाहिये। व्रतीको भी स्नानकर काले तिलका ही भोजन करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्षतक प्रत्येक कृष्ण द्वादशीमें व्रतकर अन्तमें तिलोंसे पूर्ण कृष्णवर्णके कुम्भ, पकवान, छत्र, जूता, वस्त्र और दक्षिणा बारह ब्राह्मणोंको देना चाहिये। उन तिलोंके बोनेसे जितने तिल उत्पन्न होते हैं, उतने वर्षपर्यन्त इस व्रतको करनेवाला स्वर्गमें पूजित होता है और किसी जन्ममें अंध, बधिर, कुष्ठी आदि नहीं होता, सदा नीरोग रहता है। इस तिल-दानसे बड़े-बड़े पाप कट जाते हैं। इस व्रतमें न बहुत परिश्रम है और न ही बहुत अधिक व्यय। इसमें तिलोंसे ही स्नान, तिल-दान और तिल ही भोजन करनेपर अवश्य सद्गति मिलती है*। (अध्याय ७९—८१)

सुकृत-द्वादशीके प्रसंगमें सीरभद्र वैश्यकी कथा

राजा युधिष्ठिरने पूछा—श्रीकृष्णचन्द्र! ऐसा कौन-सा कर्म है, जिसके करनेसे सभी कष्ट दूर हो जायँ तथा कोई संताप भी न हो।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! आपने जो पूछा है, उस विषयमें एक आख्यानका वर्णन करता हूँ। पूर्वकालमें विदिशा (भेलसा) नगरीमें सीरभद्र नामक एक वैश्य रहता था। वह पुत्र-पौत्र, कन्या, स्त्री आदिके भरण-पोषणमें ही लगा रहता था, फलस्वरूप स्वप्नमें भी उसे परलोककी चिन्ता नहीं होती थी। वह न्याय-अन्याय हर तरहसे धनका ही उपार्जन करता, कभी दान, हवन, देवपूजन आदि कर्मका नाम भी नहीं लेता था। नित्य-नैमित्तिक कर्मोंका लोप उसने स्वयं कर लिया था। कुछ कालके अनन्तर वह वैश्य मृत्युको प्राप्त हुआ और विन्ध्यारण्यमें यातना-देहमें प्रेतरूपसे रहने लगा। एक दिन ग्रीष्म-ऋतुमें विपीत नामके वेदवेत्ता ब्राह्मणने उस प्रेतको देखा कि वह सूर्य-किरणोंसे संतप्त नदीके बालूमें लोट रहा है, उसके सब अङ्गोंमें छाले पड़ गये हैं। प्याससे कण्ठ सूख रहा है और जिह्वा लटक गयी है। वह लम्बी-लम्बी साँस ले रहा है। उसकी यह दशा देखकर ब्राह्मणको बड़ी दया आयी और उसने उसका वृत्तान्त पूछा।

प्रेत कहने लगा—ब्रह्मन्! मैं पूर्व-जन्ममें परलोकके लिये किसी प्रकारके कर्म न करनेके कारण ही दग्ध हो रहा हूँ। मैं निरन्तर धन, घर, खेत, पुत्र, स्त्री आदिकी चिन्तामें ही आसक्त रहता था और मैंने अपने वास्तविक हितका चिन्तन कभी नहीं किया। इसीसे यह कष्ट भोग रहा हूँ। 'यह काम कर लिया और यह काम करना है'—इसी उधेड़बुनमें सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करनेका ही यह फल है। लोभवश मैं शीत-उष्ण सभी प्रकारके कष्टोंको झेल रहा हूँ। मैंने धर्मके लिये किंचित् भी कष्ट नहीं झेला, उससे अब पछताता हूँ। देवता, पितर, अतिथि आदिका मैंने कभी पूजन नहीं किया और यही कारण है कि अब

* यह कथा ब्रह्मपुराणमें भी आयी है।

मुझे अन्न-जलतक नहीं मिल रहा है। अन्यायके द्वारा एकत्र किये गये धनका उपभोग दूसरे लोग कर रहे होंगे, यह सोच-सोचकर मुझे चैन नहीं मिलता। मैंने कभी ब्राह्मणोंका पूजन नहीं किया और न ही कभी देवार्चन ही किया। फलस्वरूप मेरी ऐसी दशा हुई है। चूँकि मैंने पापोंका ही संचय किया, अतः मैं उसके फलको अकेले ही भोग रहा हूँ। मैं अपने किये दुष्कर्मोंका ही फल भोग रहा हूँ। अतः हे मुनीश्वर! यदि ऐसा कोई उपाय हो तो आप उसे बतायें, जिससे इस दुर्गतिसे मेरा उद्धार हो।

विपीतमुनि बोले—सीरभद्र! दस जन्म पहले तुमने भगवान् अच्युतकी आराधनाकी इच्छासे सुकृत-द्वादशीका उपवास किया था, उसके प्रभावसे इस पापके बहुत बड़े भागका क्षय हो गया है, अब तुम्हें अल्पकालमें ही उत्तम गति प्राप्त होगी। यह द्वादशी-व्रत पापोंका क्षय तथा पुण्यका संचार करनेवाला है, इसी कारण इसका नाम सुकृत-द्वादशी है। इस तरह सीरभद्रको आश्वस्त कर विपीतमुनि अपने आश्रमको चले गये और सीरभद्र भी द्वादशीव्रतके फलस्वरूप थोड़े कालके अनन्तर मोक्षको प्राप्त हो गया।

इतना कहकर श्रीकृष्णभगवान् बोले—हे महाराज! यह उपवासका प्रभाव है कि इतना पाप थोड़े ही कालमें क्षय हुआ, इसलिये मनुष्यको पुण्यके लिये सदा यत्न करना चाहिये और अपने कल्याणके लिये उपवासादि करते रहना चाहिये।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—श्रीकृष्णचन्द्र! पापोंसे अति दारुण नरककी यातना भोगनी पड़ती है। ऐसा कौन-सा व्रत है, जिससे सब पाप नष्ट हो जायँ और मोक्ष प्राप्त हो।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीको उपवास कर काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ आदिका त्यागकर संसारकी असारताकी भावना करता हुआ '**ॐ नमो नारायणाय**'इस अष्टाक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये और इसी भाँति द्वादशीको भी भगवान् मधुसूदनकी पूजा आदि करनी चाहिये। प्रथम चार (फाल्गुनसे ज्येष्ठ) मासके पारणमें चाँदी, ताँबे अथवा मृत्तिकाके पात्रोंमें यव भरकर ब्राह्मणोंको देना चाहिये। आषाढ़ादि द्वितीय पारणमें घृतपात्र देना चाहिये और कार्तिकादि चार मासमें तिलपात्र ब्राह्मणोंको अर्पण करना चाहिये। भगवान्की पूजाके अनन्तर उनके अनुग्रहकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। तदनन्तर भोजन करना चाहिये। वर्ष पूरा होनेपर सुवर्णकी विष्णु-प्रतिमा बनवाकर उसे पूजित कर वस्त्र, सुवर्ण, दक्षिणासहित सवत्साधेनु ब्राह्मणोंको देना चाहिये। इस विधिसे जो पुरुष अथवा स्त्री इस सुकृत-द्वादशीका व्रत करता है, वह कभी नरकको नहीं प्राप्त होता। नारायणके भक्तको कभी नरककी बाधा नहीं होती। विष्णुका नाम उच्चारण करते ही समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, फिर नरकके भयका तो प्रश्न ही नहीं उठता। इसी प्रकार वासुदेव नारायणके नामोंका उच्चारण करनेवाला कभी भी यमका मुख नहीं देखता। अतः भगवान्के पवित्र नामोंका उच्चारण करना चाहिये। (अध्याय ८२)

धरणी-व्रत (अर्चावतार-व्रत)

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! वेदोंमें यह कहा गया है कि विधिपूर्वक यज्ञ करने, बड़े-बड़े दान देने और कठिन परिश्रम करनेसे परमेश्वरकी प्राप्ति होती है, किंतु कलियुगके प्राणी, जो न दान दे सकते हैं और न ही यज्ञ करनेमें समर्थ हैं, उनकी मुक्ति किस प्रकार हो सकती है, यदि कोई उपाय हो तो आप उसे बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! मैं आपको

एक रहस्यपूर्ण बात बतलाता हूँ। प्रलयके समय जब धरणी (पृथ्वी) जलमें निमग्न होकर रसातल चली गयी, तब उस समय धरणीदेवीने अपने उद्धारके लिये व्रत किया था। व्रतके प्रभावसे प्रसन्न होकर भगवान् नारायणने वाराहरूप धारणकर उसे पुनः अपने स्थानपर लाकर स्थापित कर दिया। उस व्रतका विधान इस प्रकार है—

व्रतीको मार्गशीर्ष मासके कृष्ण पक्षकी दशमीको प्रातःकाल नित्य-स्नानादि क्रियाओंको सम्पन्न कर देवार्चन एवं हवनादि कर्म विधिपूर्वक करने चाहिये। उस दिन पवित्र, अत्यल्प हविष्यान्न-भोजन करना चाहिये। अनन्तर पुनः पाँच पग चलकर हाथ-पाँव धोकर पवित्र हो क्षीर-वृक्षके आठ अंगुलके दातूनसे दन्तधावन कर आचमन करना चाहिये। जलसे अङ्गोंका स्पर्शकर भगवान् जनार्दनका ध्यान करते हुए वह दिन व्यतीत करना चाहिये। एकादशीको निराहार रहकर भगवान्‌के नामोंका जप करना चाहिये। द्वादशीको प्रातः नदी आदिके पवित्र जलमें स्नान करना चाहिये। स्नानसे पूर्व नदी, तालाब अथवा शुद्ध एवं पवित्र स्थानकी मृत्तिका ग्रहण करनी चाहिये, मृत्तिका ग्रहण करते समय इस मन्त्रका उच्चारण करे—

धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि सर्वदा।
तेन सत्त्वेन मां पाहि पापान्मोचय सुव्रते॥

(उत्तरपर्व ८३। १७)

'देवि सुव्रते! जिस शक्तिके द्वारा आप समस्त स्थावर-जंगमात्मक प्राणियोंका धारण-पोषण करती हैं, उसी शक्तिके द्वारा मुझे पापोंसे मुक्त कीजिये तथा सदा मेरा पालन कीजिये।'

पुनः उस मिट्टीको सूर्यको दिखाकर, शरीरमें लगाकर स्नान करे। तदनन्तर आचमनकर देवमन्दिरमें जाकर भगवान् नारायणके अङ्गोंकी पूजा करे। नारायणके आगे चार जलपूर्ण घटोंमें चार समुद्रोंकी परिकल्पनाकर स्थापना करे। उन घटोंपर तिलपूर्ण पूर्णपात्र स्थापित करे। घटोंके मध्य एक पीठके ऊपर जलपात्रमें सुवर्ण, चाँदी अथवा काष्ठकी मत्स्यभगवान्‌की प्रतिमा बनाकर स्थापित करे। यथाविधि उपचारोंसे उनका पूजनकर प्रार्थना करे। रात्रिमें वहीं जागरण करे। प्रभातमें चारों घटोंको ऋग्वेदी, यजुर्वेदी, सामवेदी तथा अथर्ववेदी चार ब्राह्मणोंकी पूजाकर उन्हें निवेदित करे। जलपात्रमें स्थापित भगवान् मत्स्यकी प्रतिमा ब्राह्मण-दम्पतिको प्रदान करे। ब्राह्मणोंको पायसान्नसे संतृप्त कर पश्चात् स्वयं भी भोजन करे। राजन्! इस विधिसे जो मार्गशीर्ष कृष्ण द्वादशीका व्रत करता है, उसे दीर्घ आयुकी प्राप्ति होती है। जन्मान्तरमें किये गये ब्रह्महत्या आदि महापातकोंसे उसकी मुक्ति हो जाती है। यदि निष्कामभावसे व्रत करता है तो उसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं।

इसी प्रकार स्नानादि कर पौष मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवास कर भगवान् जनार्दनकी कूर्मरूपमें पूजा करनी चाहिये। माघ मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवासपूर्वक भगवान् वराहकी प्रतिमाका पूजनकर ब्राह्मणको दान करना चाहिये। इसी प्रकार फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवासपूर्वक भगवान् नरसिंहकी प्रतिमाका, चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको भगवान् वामनकी प्रतिमाका, वैशाख शुक्ल द्वादशीको परशुरामजीकी प्रतिमाका, ज्येष्ठ मासकी शुक्ल द्वादशीको भगवान् राम-लक्ष्मणकी प्रतिमाका, आषाढ़ शुक्ल द्वादशीको भगवान् वासुदेव (कृष्ण)-की प्रतिमाका, श्रावण मासकी शुक्ल द्वादशीको बुद्धभगवान्‌की तथा भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवासपूर्वक भगवान् कल्किकी प्रतिमाका यथाविधि अङ्ग-पूजन आदि कर घटोंकी स्थापना करके पूजित प्रतिमा आदि ब्राह्मणोंको निवेदित कर देनी चाहिये।

इस प्रकार दस मासोंमें भगवान्‌के दशावतारोंका पूजनकर पूर्व-विधानसे आश्विन शुक्ल द्वादशीको

उपवासपूर्वक भगवान् पद्मनाभकी तथा कार्तिक द्वादशीको वासुदेवकी पूजा करनी चाहिये। अन्तमें प्रतिमा तथा घटोंको ब्राह्मणको निवेदित कर दे। उन्हें भोजन कराकर, दक्षिणा प्रदान करे तथा दीनों, अनाथोंको भी भोजन-वस्त्र आदिसे संतुष्ट करना चाहिये और फिर स्वयं भी भोजन करना चाहिये।

राजन्! इस प्रकार द्वादश मासोंमें जो इस व्रतको करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णु-सायुज्यको प्राप्त करता है। धरणीदेवीने इस व्रतको किया था। इसीलिये यह धरणी-व्रतके नामसे प्रसिद्ध हुआ। प्राचीन कालमें दक्षप्रजापतिने इस व्रतका अनुष्ठानकर प्रजाओंका अधिपतित्व प्राप्त किया था। राजा युवनाश्वने इस व्रतके अनुष्ठानसे मान्धाता नामक श्रेष्ठ पुत्रको प्राप्तकर अन्तमें शाश्वत ब्रह्मपद प्राप्त किया था। इसी प्रकार हैहयाधिपति कृतवीर्यने इस व्रतके प्रभावसे महान् पराक्रमी चक्रवर्ती राजा सहस्रार्जुनको पुत्ररूपमें प्राप्त किया था। शकुन्तलाने भी इस व्रतके प्रभावसे राजर्षि दुष्यन्तको पतिरूपमें तथा श्रेष्ठ भरतको पुत्ररूपमें प्राप्त किया था। इसी प्रकार अन्य कई श्रेष्ठ चक्रवर्ती राजाओं तथा श्रेष्ठ पुरुषोंने इस व्रतके प्रभावसे उत्तम फल प्राप्त किया था। जो भी इसे करता है, भगवान् नारायण उसका उद्धार कर देते हैं[1]। (अध्याय ८३)

विशोकद्वादशी-व्रत और गुड-धेनु[2] आदि दस धेनुओंके दानकी विधि तथा उसकी महिमा

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! इस भूतलपर कौन ऐसा उपवास या व्रत है, जो मनुष्यके अभीष्ट वस्तुओंके वियोगसे उत्पन्न शोकसमूहसे उद्धार करनेमें समर्थ, धन-सम्पत्तिकी वृद्धि करनेवाला और संसार-भयका नाशक है।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! आपने जिस व्रतके विषयमें प्रश्न किया है, वह समस्त जगत्को प्रिय तथा इतना महत्त्वशाली है कि देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। यद्यपि इन्द्र, असुर और मानव भी उसे नहीं जानते तथापि आप-जैसे भक्तिमान्के प्रति मैं अवश्य उसका वर्णन करूँगा। उस पुण्यप्रद व्रतका नाम विशोकद्वादशी-व्रत है। विद्वान् व्रतीको आश्विन मासमें दशमी तिथिके दिन अल्प आहार करके नियमपूर्वक इस व्रतका आरम्भ करना चाहिये। पुनः एकादशीके दिन व्रती उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख बैठकर दातून करे, फिर (स्नान आदिसे निवृत्त होकर) निराहार रहकर भगवान् केशव और लक्ष्मीकी विधिपूर्वक भलीभाँति पूजा करे और 'दूसरे दिन भोजन करूँगा'—ऐसा नियम लेकर रात्रिमें शयन करे। प्रातःकाल उठकर सर्वौषधि और पञ्चगव्य मिले जलसे स्नान करे तथा श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण करके भगवान् विष्णुकी कमल-पुष्पोंद्वारा पूजा करे। पूजन करनेके पश्चात् एक मण्डल बनाकर मिट्टीसे वेदीका निर्माण कराये। वह वेदी बीस अंगुल लम्बी-चौड़ी, चारों ओरसे चौकोर, उत्तरकी ओर ढालू, चिकनी और सुन्दर हो। तत्पश्चात् बुद्धिमान् व्रती सूपमें नदीकी बालुकासे लक्ष्मीकी मूर्ति अङ्कित करे और उस सूपको वेदीपर रखकर '**देव्यै नमः**', '**शान्त्यै नमः**', '**लक्ष्म्यै नमः**', '**श्रियै नमः**', '**पुष्ट्यै नमः**', '**तुष्ट्यै नमः**', '**दृष्ट्यै नमः**', '**हृष्ट्यै नमः**'के उच्चारणपूर्वक लक्ष्मीकी अर्चना करे और यों प्रार्थना करे—'विशोका (लक्ष्मीदेवी) मेरे दुःखोंका नाश करें, विशोका मेरे लिये वरदायिनी हों, विशोका मुझे संतति दें

१-वाराहपुराणके ३९वें अध्यायसे ५०वें तक ठीक इसी प्रकार इन द्वादश द्वादशी-व्रतोंकी कथा एवं व्रत-विधिका विस्तारसे वर्णन हुआ है।

२-यह विषय मत्स्यपुराण ८२, पद्मपु० १। २१, वराहपुराण १०२, कृत्यकल्पतरु ५, दानकाण्ड पृ० १४१ तथा दानमयूख, दानसागरादिमें विशेष शुद्धरूपसे उद्धृत हैं। तदनुसार इसे भी शुद्ध किया गया है।

और विशोका मुझे सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करें[१]।' तदनन्तर श्वेत वस्त्रोंसे सूपको परिवेष्टित कर नाना प्रकारके फलों, वस्त्रों और स्वर्णमय कमलोंसे लक्ष्मीकी पूजा करे। चतुर व्रती सभी रात्रियोंमें कुशोदक-पान करे और सारी रात नृत्य-गीत आदिका आयोजन कराये। तीन पहर रात व्यतीत होनेपर व्रती मनुष्य स्वयं नींद त्यागकर जग जाय और अपनी शक्तिके अनुसार शय्यापर सोते हुए तीन या एक द्विज-दम्पत्तिके पास जाकर वस्त्र, पुष्पमाला और चन्दन आदिसे '**जलशायिने नमोऽस्तु**'जलशायी भगवान्‌को नमस्कार है—यों कहकर उनकी पूजा करे। इस प्रकार रातमें गीत-वाद्य आदि कराकर जागरण करे तथा प्रातःकाल स्नान कर पुनः द्विज-दम्पतिका पूजन करे और कृपणता छोड़कर अपनी सामर्थ्यके अनुकूल उन्हें भोजन कराये। फिर स्वयं भोजन करके पुराणोंकी कथाएँ सुनते हुए वह दिन व्यतीत करे। प्रत्येक मासमें इसी विधिसे सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये।

इस प्रकार व्रतकी समाप्तिके अवसरपर गद्दा, चादर, तकिया आदि उपकरणोंसे युक्त एक सुन्दर शय्या गुड-धेनुके साथ दान करके इस प्रकार प्रार्थना करे—'देवेश! जिस प्रकार लक्ष्मी आपका परित्याग करके अन्यत्र नहीं जातीं, उसी प्रकार सौन्दर्य, नीरोगता और निःशोकता सदा मुझे निरवच्छिन्नरूपसे प्राप्त हों—मेरा परित्याग न करें और भगवान् केशवके प्रति उत्तम भक्ति प्राप्त हो।' वैभवकी अभिलाषा रखनेवाले व्रतीको समन्त्र गुड-धेनुसहित शय्या और लक्ष्मीसहित सूप-दान करना चाहिये। इस व्रतमें कमल, करवीर (कनेर), बाण (नीलकुसुम या अगस्त्य-वृक्षका पुष्प), ताजा (बिना कुम्हलाया हुआ) कुंकुम, केसर, सिंदुवार, मल्लिका, गन्धपाटला, कदम्ब, कुब्जक और जाती—ये पुष्प सदा प्रशस्त माने गये हैं।

युधिष्ठिरने पुनः पूछा—जगत्पते! अब आप मुझे (विशोकद्वादशीके प्रसङ्गमें निर्दिष्ट) गुड-धेनुका विधान बतलाइये। साथ ही यह भी बतलानेकी कृपा कीजिये कि गुड-धेनुका रूप कैसा होता है और उसे किस मन्त्रका पाठ करके दान करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! इस लोकमें गुड-धेनुके विधानका जो रूप है और उसका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसे मैं बतला रहा हूँ। गुड-धेनुका दान समस्त पापोंका विनाशक है। गुड-धेनुका दान करनेके दिन गोबरसे भूमिको लीप-पोतकर सब ओरसे कुश बिछाकर उसपर चार हाथ लम्बा काला मृगचर्म स्थापित कर दे, जिसका अग्रभाग पूर्व दिशाकी ओर हो। तदनन्तर एक छोटे मृगचर्ममें बछड़ेकी कल्पना करके उसीके निकट रख दे। फिर उसमें पूर्वमुख और उत्तर पैरवाली सवत्सा गौकी कल्पना करे। चार भार[२] गुडसे बनी हुई गुड-धेनु सदा उत्तम मानी गयी है। उसका बछड़ा एक भार गुडका बनाना चाहिये। अपने गृहकी सम्पत्तिके अनुसार इस (गौ)-का निर्माण कराना चाहिये। इस प्रकार गौ और बछड़ेकी कल्पना करके उन्हें श्वेत एवं महीन वस्त्रसे आच्छादित कर दे। फिर घीसे उनके मुखकी, सीपसे कानोंकी, गन्नेसे पैरोंकी, श्वेत मोतीसे नेत्रोंकी, श्वेत सूतसे नाड़ियोंकी, श्वेत कम्बलसे गल-कम्बलकी, लाल रंगके चिह्नसे पीठकी, श्वेत रंगके मृगपुच्छके बालोंसे रोएँकी, मूँगेसे दोनों भौंहोंकी, मक्खनसे दोनों स्तनोंकी, रेशमके धागेसे पूँछकी, काँसासे दोहनीकी, इन्द्रनीलमणिसे आँखोंकी तारिकाओंकी, सुवर्णसे सींगके आभूषणोंकी, चाँदीसे खुरोंकी और नाना प्रकारके फलोंसे नासापुटोंकी रचना कर धूप, दीप, आदिद्वारा उनकी अर्चना करनेके पश्चात् यों प्रार्थना करे—

१-विशोका दुःखनाशाय विशोका वरदास्तु मे। विशोका चास्तु संतत्यै विशोका सर्वसिद्धये॥ (उत्तरपर्व ८४। १६)

२- दो हजार पल अर्थात् तीन मनके वजनको 'भार' कहते हैं।

'जो समस्त प्राणियों तथा देवताओंमें निवास करनेवाली लक्ष्मी हैं, धेनुरूपसे वही देवी मेरे पापोंका विनाश करें। जो लक्ष्मी विष्णुके वक्षःस्थलपर विराजमान हैं, जो स्वाहारूपसे अग्निकी पत्नी हैं तथा जो चन्द्र, सूर्य और इन्द्रकी शक्तिरूपा हैं, वे ही धेनुरूपसे मेरे लिये सम्पत्तिदायिनी हों। जो ब्रह्माकी, कुबेरकी तथा लोकपालोंकी लक्ष्मी हैं, वे धेनुरूपसे मेरे लिये वरदायिनी हों। जो लक्ष्मी प्रधान पितरोंके लिये स्वधारूपा, यज्ञभोजी अग्नियोंके लिये स्वाहारूपा तथा समस्त पापोंको हरनेवाली धेनुरूपा हैं, वे मुझे ऐश्वर्य प्रदान करें।' इस प्रकार उस गुड-धेनुको आमन्त्रित कर उसे ब्राह्मणको निवेदित कर दे। यही विधान घृत-तिल आदि सम्पूर्ण धेनुओंके दानके लिये कहा गया है।

नरेश्वर! अब जो दस पापविनाशिनी गौएँ बतलायी गयी हैं, उनका नाम और स्वरूप बतला रहा हूँ। पहली गुड-धेनु, दूसरी घृत-धेनु, तीसरी तिल-धेनु, चौथी मधु-धेनु, पाँचवीं जल-धेनु, छठी क्षीर-धेनु, सातवीं शर्करा-धेनु, आठवीं दधि-धेनु, नवीं रस-धेनु और दसवीं स्वरूपतः प्रत्यक्ष धेनु है। सदा पर्व-पर्वपर अपनी श्रद्धाके अनुसार मन्त्रोच्चारणपूर्वक आवाहनसहित इन गौओंका दान करना चाहिये, क्योंकि ये सभी भोग और मोक्षरूप फलको प्रदान करनेवाली हैं। ये सभी सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाली, कल्याणकारिणी और पापहारिणी हैं. चूँकि इस लोकमें विशोकद्वादशी-व्रत सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ माना गया है, इसलिये उसका अङ्ग होनेके कारण गुड-धेनु भी प्रशस्त मानी गयी है। उत्तरायण और दक्षिणायनके दिन, पुण्यप्रद विषुवयोग, व्यतीपातयोग अथवा सूर्य-चन्द्रके ग्रहण आदि पर्वोंपर इन गुड-धेनु आदि गौओंका दान करना चाहिये। यह विशोकद्वादशी पुण्यदायिनी, पापहारिणी और मङ्गलकारिणी है। इसका व्रत करके मनुष्य विष्णुके परमपदको प्राप्त हो जाता है तथा इस लोकमें सौभाग्य, नीरोगता और दीर्घायु प्राप्तकर अन्तमें श्रीहरिका स्मरण करता हुआ विष्णुलोक प्राप्त करता है।

(अध्याय ८४)

विभूतिद्वादशी*-व्रतमें राजा पुष्यवाहनकी कथा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! अब मैं भगवान् विष्णुके विभूतिद्वादशी नामक सर्वोत्तम व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जो सम्पूर्ण देवगणोंद्वारा अभिवन्दित है। बुद्धिमान् मनुष्य कार्तिक, वैशाख, मार्गशीर्ष, फाल्गुन अथवा आषाढ़ मासमें शुक्ल पक्षकी दशमी तिथिको स्वल्पाहार कर सायंकालिक संध्योपासनासे निवृत्त हो इस प्रकारका नियम ग्रहण करे—'प्रभो! मैं एकादशीको निराहार रहकर भगवान् जनार्दनकी भलीभाँति अर्चना करूँगा और द्वादशीके दिन ब्राह्मणके साथ बैठकर भोजन करूँगा। केशव! मेरा यह नियम निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण हो जाय और फलदायक हो।' फिर रातमें '**ॐ नमो नारायणाय**' मन्त्रका जप करते हुए सो जाय। प्रातःकाल उठकर स्नान-जप आदि करके पवित्र हो श्वेत पुष्पोंकी माला एवं चन्दन आदिसे भगवान् पुण्डरीकाक्षका पूजन करे।

एक वर्षतक प्रतिमास क्रमशः भगवान्के दस अवतारों तथा दत्तात्रेय और व्यासकी स्वर्णमयी प्रतिमाका स्वर्णनिर्मित कमलके साथ दान करना चाहिये। उस समय छल, कपट, पाखण्ड आदिसे दूर रहना चाहिये। राजन्! इस प्रकार यथाशक्ति बारहों द्वादशी-व्रतोंको

* इस व्रतका वर्णन मत्स्यपु० ९९-१००, पद्मपु० सृष्टि खं० २०। १—४२, विष्णुधर्मो०, व्रतराज, व्रतकल्पद्रुम आदिमें भी यों ही प्राप्त होता है। पाद्मीय कथामें तीर्थगुरु पुष्करक्षेत्रका भी सम्बन्ध प्रदृष्ट है।

समाप्त कर वर्षके अन्तमें गुरुको लवणपर्वतके साथ-साथ गौसहित शय्या-दान करना चाहिये। व्रती यदि सम्पत्तिशाली हो तो उसे वस्त्र, शृङ्गार-सामग्री और आभूषण आदिसे गुरुकी विधिपूर्वक पूजा कर ग्राम अथवा गृहके साथ-साथ भूमिका दान करना चाहिये। साथ ही अपनी शक्तिके अनुसार अन्यान्य ब्राह्मणोंको भी भोजन कराकर उन्हें वस्त्र, गोदान, रत्नसमूह और धनराशियोंद्वारा संतुष्ट करना चाहिये। स्वल्प धनवाला व्रती अपनी सामर्थ्यके अनुसार दान करे तथा जो व्रती परम निर्धन हो, किंतु भगवान् माधवके प्रति उसकी प्रगाढ़ निष्ठा हो तो उसे तीन वर्षतक पुष्पार्चनकी विधिसे इस व्रतका पालन करना चाहिये। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे विभूतिद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह स्वयं पापसे मुक्त होकर अपने सौ पीढ़ियोंतकके पितरोंको तार देता है। उसे एक लाख जन्मोंतक न तो शोकरूप फलका भागी होना पड़ता है, न व्याधि और दरिद्रता ही घेरती है तथा न बन्धनमें ही पड़ना पड़ता है। वह प्रत्येक जन्ममें विष्णु अथवा शिवका भक्त होता है। राजन्! जबतक एक सौ आठ सहस्र युग नहीं बीत जाते, तबतक वह स्वर्गलोकमें निवास करता है और पुण्य-क्षीण होनेपर पुनः भूतलपर राजा होता है।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज! बहुत पहले रथन्तरकल्पमें पुष्पवाहन नामका एक राजा हुआ था, जो सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात तथा तेजमें सूर्यके समान था। उसकी तपस्यासे संतुष्ट होकर ब्रह्माने उसे एक सोनेका कमल (-रूप विमान) प्रदान किया था, जिससे वह इच्छानुसार जहाँ-कहीं भी आ-जा सकता था। उसे पाकर उस समय राजा पुष्पवाहन अपने नगर एवं जनपदवासियोंके साथ उसपर आरूढ़ होकर स्वेच्छानुसार देवलोकमें तथा सातों द्वीपोंमें विचरण किया करता था, कल्पके आदिमें पुष्करनिवासी उस पुष्पवाहनका सातवें द्वीपपर अधिकार था, इसीलिये लोकमें उसकी प्रतिष्ठा थी और आगे चलकर वह द्वीप पुष्करद्वीपके नामसे कहा जाने लगा। चूँकि देवेश्वर ब्रह्माने इसे कमलरूप विमान प्रदान किया था, इसलिये देवता एवं दानव उसे पुष्पवाहन कहा करते थे। तपस्याके प्रभावसे ब्रह्माद्वारा प्रदत्त कमलरूप विमानपर आरूढ़ होनेपर उसके लिये त्रिलोकीमें कोई भी स्थान अगम्य न था। नरेन्द्र! उसकी पत्नीका नाम लावण्यवती था। वह अनुपम सुन्दरी थी तथा हजारों नारियोंद्वारा चारों ओरसे समादृत होती रहती थी। वह राजाको उसी प्रकार अत्यन्त प्यारी थी, जैसे शंकरजीको पार्वतीजी परम प्रिय हैं। उसके दस हजार पुत्र थे, जो परम धार्मिक और धनुर्धारियोंमें अग्रगण्य थे। अपनी इन सारी विभूतियोंपर बारम्बार विचारकर राजा पुष्पवाहन विस्मय-विमुग्ध हो जाता था। एक बार (प्रचेताके पुत्र) मुनिवर वाल्मीकि* राजाके यहाँ पधारे। उन्हें आया देखकर राजाने उनसे इस प्रकार प्रश्न किया—

राजा पुष्पवाहनने पूछा—मुनीन्द्र! किस कारणसे मुझे यह देवों तथा मानवोंद्वारा पूजनीय निर्मल विभूति तथा अपने सौन्दर्यसे समस्त देवाङ्गनाओंको पराजित कर देनेवाली सुन्दरी भार्या प्राप्त हुई है। मेरे थोड़े-से तपसे संतुष्ट होकर ब्रह्माने मुझे ऐसा कमल-गृह क्यों प्रदान किया, जिसमें अमात्य, हाथी, रथसमूह और जनपदवासियोंसहित यदि सौ करोड़ राजा बैठ जायँ तो भी वे जान नहीं पड़ते कि कहाँ चले गये। वह विमान तारागणों, लोकपालों तथा देवताओंके लिये भी अलक्षित-सा रहता है। प्रचेतः! मैंने, मेरी पुत्रीने अथवा मेरी भार्याने पूर्वजन्मोंमें कौन-सा ऐसा कर्म किया है, जिसका प्रभाव आज दिखलायी पड़ रहा है, इसे आप बतलायें।

तदनन्तर महर्षि वाल्मीकि राजाके इस आकस्मिक

* वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड ९३। १७, ९६। १०, १११। ११ तथा अध्यात्मरामायण ७। ७। ३१, बालरामायण, उत्तररामचरित आदिके अनुसार 'प्राचेतस' शब्द महर्षि वाल्मीकिका ही वाचक है।

एवं अद्भुत प्रभावपूर्ण वृत्तान्तको जन्मान्तरसे सम्बन्धित जानकर इस प्रकार कहने लगे—'राजन्! तुम्हारा पूर्वजन्म अत्यन्त भीषण व्याधके कुलमें हुआ था। एक तो तुम उस कुलमें पैदा हुए, फिर दिन-रात पापकर्ममें भी निरत रहते थे। तुम्हारा शरीर भी कठोर अङ्ग संधियुक्त तथा बेडौल था। तुम्हारी त्वचा दुर्गन्धयुक्त थी और नख बहुत बढ़े हुए थे। उससे दुर्गन्ध निकलती थी और तुम बड़े कुरूप थे। उस जन्ममें न तो तुम्हारा कोई हितैषी मित्र था, न पुत्र और न भाई-बन्धु ही थे, न पिता-माता और बहिन ही थी। भूपाल! केवल तुम्हारी यह परम प्रियतमा पत्नी ही तुम्हारी अभीष्ट परमानुकूल संगिनी थी। एक बार कभी भयंकर अनावृष्टि हुई, जिसके कारण अकाल पड़ गया। उस समय भूखसे पीड़ित होकर तुम आहारकी खोजमें निकले, परंतु तुम्हें कुछ भी जंगली (कन्द-मूल) फल आदि कोई खाद्य वस्तु प्राप्त न हुई। इतनेमें ही तुम्हारी दृष्टि एक सरोवरपर पड़ी, जो कमलसमूहसे मण्डित था। उसमें बड़े-बड़े कमल खिले हुए थे। तब तुम उसमें प्रविष्ट होकर बहुसंख्यक कमल-पुष्पोंको लेकर वैदिश* नामक नगर (विदिशा नगरी) में चले गये। वहाँ तुमने उन कमल-पुष्पोंको बेचकर मूल्य-प्राप्तिके हेतु पूरे नगरमें चक्कर लगाया। सारा दिन बीत गया, पर उन कमल-पुष्पोंका कोई खरीददार न मिला। उस समय तुम भूखसे अत्यन्त व्याकुल और थकावटसे अतिशय क्लान्त होकर पत्नीसहित एक महलके प्राङ्गणमें बैठ गये। वहाँ रात्रिमें तुम्हें महान् मङ्गल शब्द सुनायी पड़ा। उसे सुनकर तुम पत्नीसहित उस स्थानपर गये, जहाँ वह मङ्गल शब्द हो रहा था। वहाँ मण्डपके मध्यभागमें भगवान् विष्णुकी पूजा हो रही थी। तुमने उसका अवलोकन किया। वहाँ अनङ्गवती नामकी वेश्या माघ मासकी विभूतिद्वादशी-व्रतकी समाप्ति कर अपने गुरुको भगवान् हृषीकेशका विधिवत् शृङ्गार कर स्वर्णमय कल्पवृक्ष, श्रेष्ठ लवणाचल और समस्त उपकरणोंसहित शय्याका दान कर रही थी। इस प्रकार पूजा करती हुई अनङ्गवतीको देखकर तुम दोनोंके मनमें यह विचार जाग्रत् हुआ कि इन कमलपुष्पोंसे क्या लेना है। अच्छा तो यह होता कि इनसे भगवान् विष्णुका शृङ्गार किया जाता। नरेश्वर! उस समय तुम दोनों पति-पत्नीके मनमें ऐसी भक्ति उत्पन्न हुई और इसी अर्चाके प्रसङ्गमें तुम्हारे उन पुष्पोंसे भगवान् केशव और लवणाचलकी अर्चना सम्पन्न हुई तथा शेष पुष्प-समूहोंसे तुम दोनोंने शय्याको भी सब ओरसे सुसज्जित किया।

तुम्हारी इस क्रियासे अनङ्गवती बहुत प्रसन्न हुई। उस समय उसने तुम दोनोंको इसके बदले तीन सौ अशर्फियाँ देनेका आदेश दिया, पर तुम दोनोंने बड़ी दृढ़तासे उस धन-राशिको अस्वीकार कर दिया। भूपते! तब अनङ्गवतीने तुम्हें (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य) चार प्रकारका अन्न लाकर दिया और कहा—'भोजन कीजिये', किंतु तुम दोनोंने उसका भी परित्याग कर दिया और कहा—'वरानने! हमलोग कल भोजन कर लेंगे। दृढ़व्रते! हम दोनों जन्मसे ही पापपरायण और कुकर्म करनेवाले हैं, पर इस समय तुम्हारे उपवासके प्रसङ्गसे हमें विशेष आनन्द प्राप्त हो रहा है।' उसी प्रसङ्गमें तुम दोनोंको धर्मका लेशांश प्राप्त हुआ और तुम दोनोंने रातभर जागरण भी किया था। (दूसरे दिन) प्रातःकाल अनङ्गवतीने भक्तिपूर्वक अपने गुरुको लवणाचलसहित शय्या और अनेकों गाँव प्रदान किये। उसी प्रकार उसने अन्य बारह ब्राह्मणोंको भी सुवर्ण, वस्त्र, अलंकारादिसहित बारह गौएँ प्रदान कीं। तदनन्तर सुहृद्, मित्र, दीन, अंधे और दरिद्रोंके साथ तुम लुब्धक-दम्पतिको भोजन कराया और विशेष आदर-सत्कारके साथ तुम्हें बिदा किया।

राजेन्द्र! वह सपत्नीक लुब्धक तुम्हीं थे, जो

* यह इतिहास-पुराणादिमें अति प्रसिद्ध विदिशा नामकी नदीके तटपर बसा मध्यप्रदेशके मध्यकालीन इतिहासका बेसनगर, आजकलका भेलसा नगर है। इसपर कनिंघमका 'भेलसा टौप्स' ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

इस समय राजराजेश्वरके रूपमें उत्पन्न हुए हो। उस कमल-समूहसे भगवान् केशवका पूजन होनेके कारण तुम्हारे सारे पाप नष्ट हो गये तथा दृढ़ त्याग, तप एवं निर्लोभिताके कारण तुम्हें इस कमलमन्दिरकी भी प्राप्ति हुई है। राजन्! तुम्हारी उसी सात्त्विक भावनाके माहात्म्यसे, तुम्हारे थोड़े-से ही तपसे ब्रह्मरूपी भगवान् जनार्दन तथा लोकेश्वर ब्रह्मा भी संतुष्ट हुए हैं। इसीसे तुम्हारा पुष्कर-मन्दिर स्वेच्छानुसार जहाँ-कहीं भी जानेकी शक्तिसे युक्त है। वह अनङ्गवती वेश्या भी इस समय कामदेवकी पत्नी रतिके* सौतरूपमें उत्पन्न हुई है। यह इस समय प्रीति नामसे विख्यात है और समस्त लोकोंमें सबको आनन्द प्रदान करती तथा सम्पूर्ण देवताओंद्वारा सत्कृत है। इसलिये राजराजेश्वर! तुम उस पुष्कर-गृहको भूतलपर छोड़ दो और गङ्गातटका आश्रय लेकर विभूतिद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करो। उससे तुम्हें निश्चय ही मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी।

श्रीकृष्णने कहा—महाराज! ऐसा कहकर प्रचेतामुनि वहीं अन्तर्हित हो गये। तब राजा पुष्पवाहनने मुनिके कथनानुसार सारा कार्य सम्पन्न किया। राजन्! इस विभूतिद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करते समय अखण्ड-व्रतका पालन करना आवश्यक है। जिस किसी भी प्रकारसे हो सके, बारहों द्वादशियोंका व्रत कमल-पुष्पोंद्वारा सम्पन्न करना चाहिये। अनघ! अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको दक्षिणा भी देनेका विधान है। इसमें कृपणता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि भक्तिसे ही भगवान् केशव प्रसन्न होते हैं। जो मनुष्य पापोंको विदीर्ण करनेवाले इस व्रतको पढ़ता या श्रवण करता है अथवा इसे करनेके लिये सम्मति प्रदान करता है, वह भी सौ करोड़ वर्षोंतक देवलोकमें निवास करता है।

(अध्याय ८५)

मदनद्वादशी-व्रतमें मरुद्गणोंका आख्यान

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! दिति (दैत्योंकी जननी)-ने जिस व्रतके करनेसे उनचास मरुद्गणोंको पुत्ररूपमें प्राप्त किया था, अब मैं आपसे उस मदनद्वादशी-व्रतके विषयमें सुनना चाहता हूँ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! पूर्वकालमें वसिष्ठ आदि महर्षियोंने दितिसे जिस उत्तम मदनद्वादशी-व्रतका वर्णन किया था, उसीको आप मुझसे विस्तारपूर्वक सुनिये। व्रतधारीको चाहिये कि वह चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिको श्वेत चावलोंसे परिपूर्ण एवं छिद्ररहित एक घट स्थापित करे। उसपर श्वेत चन्दनका अनुलेप लगा हो तथा वह श्वेत वस्त्रके दो टुकड़ोंसे आच्छादित हो। उसके निकट विभिन्न प्रकारके ऋतुफल और गन्नेके टुकड़े रखे जायँ। वह विविध प्रकारकी खाद्य-सामग्रीसे युक्त हो तथा उसमें यथाशक्ति सुवर्ण-खण्ड भी डाला जाय। तत्पश्चात् उसके ऊपर गुड़से भरा हुआ ताँबेका पात्र स्थापित करे। उसके ऊपर केलेके पत्तेपर काम तथा उसके वामभागमें शक्करसमन्वित रतिकी स्थापना करे। फिर गन्ध, धूप आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करे और गीत, वाद्य तथा भगवान् विष्णुकी कथाका आयोजन करे। प्रातःकाल वह घट ब्राह्मणको दान कर दे। पुनः भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी नमकरहित भोजन करे और ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर इस प्रकार उच्चारण करे—'जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित रहकर

* हरिवंश एवं अन्य पुराणों तथा कथासरित्सागरादिमें भी रति और प्रीति—ये दो कामदेवकी पत्नियाँ कही गयी हैं। किंतु उसकी दूसरी पत्नी प्रीतिकी उत्पत्तिकी पूरी कथा यही है।

आनन्द नामसे कहे जाते हैं, वे कामरूपी भगवान् जनार्दन मेरे इस अनुष्ठानसे प्रसन्न हों।'

इसी विधिसे प्रत्येक मासमें मदनद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि वह द्वादशीके दिन आमलक-फल खाकर भूतलपर शयन करे और त्रयोदशीके दिन अविनाशी भगवान् विष्णुका पूजन करे। तेरहवाँ महीना आनेपर घृतधेनु-सहित एवं समस्त सामग्रियोंसे सम्पन्न शय्या, कामदेवकी स्वर्णनिर्मित प्रतिमा और श्वेत रंगकी दुधारू गौ ब्राह्मणको समर्पित करे। उस समय शक्तिके अनुसार वस्त्र एवं आभूषण आदिद्वारा सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करके उन्हें शय्या और सुगन्ध आदि प्रदान करते हुए ऐसा कहना चाहिये—'आप प्रसन्न हों।' तत्पश्चात् उस धर्मज्ञ व्रतीको कामदेवके नामोंका कीर्तन करते हुए गोदुग्धसे बनी हुई हवि और श्वेत तिलोंसे हवन करना चाहिये। पुनः कृपणता छोड़कर ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये और उन्हें यथाशक्ति गन्ना तथा पुष्पमाला प्रदानकर संतुष्ट करना चाहिये। जो इस विधिके अनुसार इस मदनद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुकी समताको प्राप्त हो जाता है तथा इस लोकमें श्रेष्ठ पुत्रोंको प्राप्तकर सौभाग्य-फलका उपभोग करता है।

दितिके इस व्रतानुष्ठानके प्रभावसे प्रभावित होकर महर्षि कश्यप उसके निकट पधारे और परम प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने उसे पुनः रूप-यौवनसे सम्पन्न तरुण बना दिया तथा वर माँगनेके लिये कहा। दितिने कहा—'पतिदेव! मैं आपसे एक ऐसे पुत्रका वरदान चाहती हूँ, जो इन्द्रका वध करनेमें समर्थ, अमित पराक्रमी और महान् आत्मबलसे सम्पन्न हो।' यह सुनकर महर्षि कश्यपने उससे कहा 'ऐसा ही होगा।'

कश्यपने पुनः उससे कहा—'वरानने! एक सौ वर्षोंतक तुम्हें इसी तपोवनमें रहना है और अपने गर्भकी रक्षाके लिये प्रयत्न करना है। वरवर्णिनि! गर्भिणी स्त्रीको संध्या-कालमें भोजन नहीं करना चाहिये। उसे न तो कभी वृक्षके मूलपर बैठना चाहिये, न उसके निकट ही जाना चाहिये। वह घरकी सामग्री—मूसल, ओखली आदिपर न बैठे, जलमें घुसकर स्नान न करे, सुनसान घरमें न जाय, लोगोंके साथ वाद-विवाद न करे और शरीरको तोड़े-मरोड़े नहीं। वह बाल खोलकर न बैठे, कभी अपवित्र न रहे, उत्तर दिशामें सिरहाना करके एवं कहीं भी नीचे सिर करके न सोये, न नंगी होकर रहे, न उद्विग्नचित्त रहे, न कभी भीगे चरणोंसे शयन करे, अमङ्गलसूचक वाणी न बोले, अधिक जोरसे हँसे नहीं, नित्य माङ्गलिक कार्योंमें तत्पर रहकर गुरुजनोंकी सेवा करे और (आयुर्वेदद्वारा गर्भिणीके स्वास्थ्यके लिये उपयुक्त बतलायी गयी) सम्पूर्ण ओषधियोंसे युक्त गुनगुने गरम जलसे स्नान करे। बुरी स्त्रियोंसे बातचीत न करे, कपड़ेसे हवा न ले। मृतवत्सा स्त्रीके साथ न बैठे, दूसरेके घरमें न जाय, जल्दी-जल्दी न चले, महानदियोंको पार न करे। भयंकर और बीभत्स दृश्य न देखे। अजीर्ण भोजन न करे। कठिन व्यायामादि न करे। ओषधियोंद्वारा गर्भकी रक्षा करती रहे, हृदयमें मात्सर्यभाव न रखे। जो गर्भिणी स्त्री विशेषरूपसे इन नियमोंका पालन करती है, उसका उस गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह शीलवान् एवं दीर्घायु होता है। इन नियमोंका पालन न करनेपर निस्संदेह गर्भपातकी आशङ्का बनी रहती है। प्रिये! इसलिये तुम इन नियमोंका पालन करके अपने गर्भकी रक्षाका प्रयत्न करो। तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जा रहा हूँ।' दितिके द्वारा पतिकी आज्ञा स्वीकार कर लेनेपर महर्षि कश्यप वहीं अन्तर्धान हो गये।

तब दिति नियमोंका पालन करती हुई समय व्यतीत करने लगी। कालान्तरमें दितिको उनचास पुत्र (मरुद्गण) प्राप्त हुए।

राजन्! इस प्रकारसे जो भी नारी इस मदनद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करेगी, वह पुत्र प्राप्त कर पतिके सुखको प्राप्त करेगी। (अध्याय ८६)

अबाधक-व्रत एवं दौर्भाग्य-दौर्गन्ध्यनाशक-व्रतका माहात्म्य

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! जनशून्य घोर वनमें, समुद्रतरणमें, संग्राममें, चोर आदिके भयमें व्याकुल मनुष्य किस देवताका स्मरण करे, जिससे उस संकटके समय उसकी रक्षा हो सके, यह आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! सर्वमङ्गला भगवती श्रीदुर्गादेवीका स्मरण करनेपर पुरुष कभी भी दुःख और भयको प्राप्त नहीं होता। भारत! जब मैं और बलदेवजी अपने गुरु संदीपनिमुनिके यहाँ सब विद्या पढ़ चुके तो उस समय हमने गुरुदक्षिणाके लिये गुरुजीसे प्रार्थना की। तब गुरुजीने हमारा दिव्य प्रभाव जानकर यही कहा—'प्रभो! मेरा पुत्र प्रभासक्षेत्रमें गया था, वहाँ उसे समुद्रमें किसी प्राणीने मार दिया, उसी पुत्रको गुरुदक्षिणाके रूपमें मुझे प्राप्त कराओ।' तब हम यमलोकमें गये और वहाँसे गुरुपुत्रको लेकर गुरुजीके समीप आये तथा गुरुदक्षिणाके रूपमें उनका पुत्र उन्हें समर्पित कर दिया। तदनन्तर गुरुको प्रणामकर जब हम चलने लगे, तब गुरुजीने कहा—'पुत्रो! इस स्थानमें तुम अपने चरणोंका चिह्न बना दो', हमने गुरुकी आज्ञाके अनुसार वैसा ही किया, फिर हम वापस घर आ गये। उसी दिनसे बलरामजीके दक्षिण पादका, मध्यमें सर्वमङ्गलाका और मेरे वाम चरणचिह्नका पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे अथवा अपनी इच्छाओंकी पूर्तिके लिये सभी वहाँ पूजन करते हैं। प्रत्येक मासको शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको एकभुक्त, नक्तव्रत अथवा उपवास रहकर मृत्तिका या सुवर्णकी इनकी प्रतिमा बना करके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, मधु आदिसे जो स्त्री अथवा पुरुष पूजन करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो स्वर्गमें निवास करता है।

राजा युधिष्ठिरने पुनः पूछा—यदुशार्दूल! ऐसा कौन व्रत है, जिसके आचरणसे शरीरका दुर्गन्ध नष्ट हो जाय और दौर्भाग्य भी दूर हो जाय।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! इसी प्रश्नको रानी विष्णुभक्तिने जातूकर्ण्यमुनिसे पूछा था, तब उन्होंने उनसे कहा—'देवि! ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीमें पवित्र जलाशयमें स्नान करे और शुद्ध स्थानमें उत्पन्न श्वेत आक, रक्त करवीर तथा निम्ब-वृक्षकी पूजा करे। ये तीनों वृक्ष भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय हैं। प्रातःकाल सूर्योदय हो जानेपर भगवान् सूर्यका दर्शनकर उनका अपने हृदयमें ध्यान करे। अनन्तर पुष्प, नैवेद्य, धूप आदि उपचारोंसे उन वृक्षोंकी पूजा करे और पूजनके अनन्तर उन्हें नमस्कार करे।

राजन्! इस विधिसे जो स्त्री-पुरुष इस व्रतको करते हैं, उनके शरीरकी दुर्गन्धि तथा उनका दौर्भाग्य दोनों दूर हो जाते हैं और वे सौभाग्यशाली हो जाते हैं।

(अध्याय ८७-८८)

धर्मराजका समाराधन-व्रत*

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! ऐसा कौन-सा व्रत है, जिसके करनेसे यमराज प्रसन्न हो जायँ और नरकका दर्शन न हो।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! एक बार जब मैं द्वारका-स्थित समुद्रमें स्नान करके बाहर निकला, तब देखा कि मुद्गलमुनि चले आ रहे हैं। उनका तेज सूर्यके समान था और उनके मुखके तपस्तेजसे दिशाएँ उद्भासित हो रही थीं। तब मैंने उनका अर्घ्य, पाद्य आदिसे सत्कार कर आदरपूर्वक उनसे पूछा—'महाराज! प्राणियोंके लिये अत्यन्त भयदायक नरक तथा यमदूतों आदिका जिससे दर्शन न हो ऐसा कोई व्रत आप मुझसे बतलायें।' यह सुनकर मुद्गलमुनि भी कुछ विस्मित-से हुए। किंतु बादमें शान्त-मन होकर वे बोले—'प्रभो! एक बार ऐसा हुआ कि मुझे अकस्मात् मूर्च्छा आ गयी और मैं पृथ्वीपर गिर पड़ा, उस स्थितिमें मैंने देखा कि हाथमें लाठी लिये कुछ लोग आगसे जलते हुए-से मेरे शरीरसे निकलकर बाहर खड़े हुए थे और मेरे हृदयसे एक अँगूठेके बराबर व्यक्तिको बलपूर्वक खींचकर तथा रस्सियोंसे बाँधकर यमपुरीकी ओर ले जा रहे हैं। फिर मैं तत्काल क्या देखता हूँ कि यमराजकी सभा लगी है और लाल-पीले नेत्रोंवाले यमराज सभामें विराजमान हैं तथा कफ, वात, पित्त, ज्वर, मांस, शोथ, फोड़े, फुंसी, भगंदर, अक्षिरोग, विषूचिका, गलग्रह आदि अनेकों प्रकारके रोग और मृत्यु उन्हें घेरे हुए हैं और वे सभी मूर्तिमान् होकर यमदेवकी उपासना कर रहे हैं। यमदूत भयंकर शस्त्र धारण किये हैं। कुछ राक्षस, दानव आदि भी वहाँ बैठे हैं। सिंह, व्याघ्र, बिच्छू, दंश, सियार, साँप, उल्लू, कीड़े-मकोड़े आदि भयंकर जीव-जन्तु वहाँ उपस्थित हैं।' यमराजने अपने किंकरोंसे पूछा—'दूतो! तुमलोग यहाँ इन मुद्गलमुनिको क्यों ले आये? मैंने तो मुद्गल क्षत्रियको लानेके लिये कहा था, वह कौंडिन्यनगरका निवासी भीष्मकका पुत्र है, उसकी आयु समाप्त हो चुकी है, इन मुनिको तत्काल छोड़ दो और उसे ही ले आओ।' यह सुनकर वे दूत कौंडिन्यनगर गये, किंतु वहाँ राजा मुद्गलमें मृत्युके कोई लक्षण न देखकर भ्रान्त होकर पुनः यमलोकमें वापस आये और उन्होंने सारा वृत्तान्त यमराजको बता दिया। इसपर यमराजने उनसे कहा—'दूतो! जिन पुरुषोंने नरकार्ति-विनाशिनी त्रयोदशीका व्रत किया है, उन्हें यमकिंकर नहीं देख पाते, इसीलिये तुमलोगोंने राजा मुद्गलको पहचाना नहीं।' पुनः यमदूतोंद्वारा व्रतके विधानको पूछे जानेपर यमराजने उनसे कहा—'मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको जब रविवार एवं मंगलवार न हो, तब उस दिन तेरह विद्वान् और पवित्र ब्राह्मणों तथा एक पुराणवाचकका वरण करके पूर्वाह्णकालमें उन ब्राह्मणोंको उत्तराभिमुख पवित्र आसनपर बैठाये। तिल-तैलसे उनका अभ्यंग करके गन्धकाषाय तथा हलके गरम जलसे उन्हें पृथक्-पृथक् स्नान कराये और उनकी सेवा-शुश्रूषा करे। अनन्तर पूर्वाभिमुख बैठाकर उन्हें शाल्यन्न, मुद्गान्न, गुड़के अपूप तथा सुपक्व व्यञ्जन आदरपूर्वक खिलाये।

पुनः व्रती पवित्र होकर आचमन करे और उन ब्राह्मणोंकी अर्चना करे। ताम्रपात्रमें प्रस्थमात्र (एक पसर या एक सेर) तिल-तण्डुल, दक्षिणा, छत्र, जलपूर्ण कलश आदि उन्हें अलग-अलग प्रदान कर विसर्जित करे।

* यह कथा स्कन्दपुराणके नामसे अनेक व्रत-निबन्धोंमें संग्रहीत है।

इसी प्रकार वर्षभरतक व्रत करे। कोई मानव यदि आदरपूर्वक एक बार भी इस व्रतको कर ले तो वह मेरे यमलोकका दर्शन नहीं करता। वह मेरी मायासे अदृष्ट रहता है, अन्तमें विमानद्वारा अर्कमण्डलमें प्रवेश कर वह विष्णुपुर और शिवपुरको प्राप्त करता है। यमदूतो! उस राजा मुद्गलने इस त्रयोदशी-व्रतको पहले किया था, इसीलिये तुम सब उस क्षत्रिय-श्रेष्ठका दर्शन नहीं कर पाये।

श्रीकृष्ण! उसी क्षण मेरी मूर्च्छा दूर हो गयी और मैं स्वस्थ हो गया। भगवन्! मैं आपके दर्शनकी इच्छासे यहाँ आया था, जैसा पहले वृत्तान्त हुआ, वह सब मैंने आपको बतलाया।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—राजन्! वे मुनि मुझसे इतना कहकर अपने स्थानको चले गये। कौन्तेय! आप भी इस व्रतको करें। इससे आपको यमलोक नहीं जाना पड़ेगा। इसी प्रकार जो कोई स्त्री-पुरुष इस त्रयोदशी-व्रतका श्रद्धापूर्वक आचरण करेंगे, वे सभी पापोंसे मुक्त होकर अपने पुण्य-कर्मके प्रभावसे स्वर्गमें पूजित होंगे और उन्हें कभी यमयातना नहीं सहनी पड़ेगी। (अध्याय ८९)

अनङ्ग-त्रयोदशी-व्रत

युधिष्ठिरने पूछा—संसारसे उद्धार करनेवाले स्वामिन्! आप रूप एवं सौभाग्य प्रदान करनेवाला कोई व्रत बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! शरीरको क्लेश देनेवाले बहुत-से व्रतोंके करनेसे क्या लाभ? अकेले अनङ्ग-त्रयोदशी ही सब दोषोंका शमन एवं समस्त मङ्गलोंकी वृद्धि करनेवाली है। आप इसकी विधि सुनें।

पहले जब भगवान् शंकरने कामदेवको दग्ध कर दिया, तब वह बिना अङ्गके ही सबके शरीरमें निवास करने लगा। कामदेवने इस व्रतको किया था, इसीसे इसका नाम अनङ्ग-त्रयोदशी पड़ा। इस व्रतमें मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको नदी, तडाग आदिमें स्नान कर, जितेन्द्रिय हो, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और कालोद्भूत फलोंसे भगवान् शंकरका 'शशिशेखर' नामसे पूजन करे तथा तिलसहित अक्षतोंसे हवन करे। रात्रिको मधु-प्राशन कर सो जाय। इससे व्रती कामदेवके समान ही सुन्दर हो जाता है और दस अश्वमेध-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। इसी प्रकार पौष मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीमें भगवान् शंकरका 'योगेश्वर' नामसे पूजन कर चन्दनका प्राशन करे तो शरीरमें चन्दनके समान गन्ध हो जाती है और व्रती राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त करता है। माघ मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको भगवान् शंकरका 'महेश्वर' नामसे पूजन कर मोतीका चूर्ण भक्षण करे तो उत्तम सौभाग्य प्राप्त करता है। इसी प्रकार फाल्गुनमें 'हरेश्वर' नामसे पूजन कर कंकोलका प्राशन करनेसे अतुल सौन्दर्य प्राप्त होता है। चैत्रमें 'सुरूपक' नामसे पूजन करने और कर्पूर-प्राशन करनेसे व्रती चन्द्रके तुल्य मनोहर हो जाता है एवं महान् सौभाग्य प्राप्त करता है। वैशाखमें 'महारूप' नामसे पूजन कर जातीफल (जायफल)- का प्राशन करे, इससे उत्तम कुलकी प्राप्ति होती है और उसके सब काम सफल हो जाते हैं तथा वह सहस्र गोदानका फल प्राप्त कर ब्रह्मलोकमें निवास करता है। ज्येष्ठमें 'प्रद्युम्न' नामसे पूजन करे और लवंगका प्राशन करे, इससे उत्तम स्थान, श्रेष्ठ लक्ष्मी और सभी सुख-सम्पदाएँ प्राप्त होती हैं तथा वह एक सौ आठ वाजपेय-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। आषाढ़में 'उमाभर्ता' नामसे पूजन कर तिलोदकका प्राशन करे। इससे उत्तम रूप

प्राप्त होता है तथा वह सौ वर्षतक सुखी जीवन व्यतीत करता है। श्रावणमें 'उमापति' नामसे पूजन कर तिलोंका प्राशन करे, इससे पौण्डरीक-यज्ञका फल प्राप्त होता है। भाद्रपद मासमें 'सद्योजात' नामसे पूजन कर अगरुका प्राशन करे, इससे वह भूमिपर सबका गुरु बनता है और पुत्र-पौत्र, धन आदि प्राप्त कर बहुत दिन संसारमें सुख भोगकर अन्तमें विष्णुलोकमें पूजित होता है। आश्विन मासमें 'त्रिदशाधिपति' नामसे पूजन कर स्वर्णोदकका प्राशन करे तो व्रती उत्तम रूप, सौभाग्य, प्रगल्भता और करोड़ों निष्कदानका फल प्राप्त करता है। कार्तिकमें 'विश्वेश्वर' नामसे पूजन कर दमन (दौना) फलका प्राशन करे तो व्रती अपने बाहुबलसे समस्त संसारका स्वामी होता है और अन्तमें शिवलोकमें निवास करता है।

इस प्रकार वर्षभर इस उत्तम व्रतका पालन कर पारणा करनी चाहिये। फिर कलश स्थापित कर उसके ऊपर ताम्रपात्र और उसके ऊपर शिवकी प्रतिमा स्थापित कर श्वेत वस्त्रसे आच्छादित करे। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उसका पूजन कर उसे शिवभक्त ब्राह्मणको प्रदान कर दे। साथ ही पयस्विनी सवत्सा गौ, छाता और यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये। इस प्रकार जो इस अनङ्ग-त्रयोदशी-व्रतको करता है और व्रत-पारणाके समय महान् उत्सव करता है वह निष्कण्टक राज्य, आयुष्य, बल, यश तथा सौभाग्य प्राप्त करता है और अन्तमें शिवलोकमें निवास करता है।

(अध्याय ९०)

पाली-व्रत[1] एवं रम्भा (कदली)-व्रत

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! श्रेष्ठ स्त्रियाँ जलपूर्ण तडागों और सरोवरोंमें किस निमित्त स्नान-दान आदि कर्म करती हैं? इसे आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको बावली, कुएँ, पुष्करिणी तथा बड़े-बड़े जलाशयों आदिके पास पवित्र होकर भगवान् वरुणदेवको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि तडागके तटपर जाकर फल, पुष्प, वस्त्र, दीप, चन्दन, महावर, सप्तधान्य, बिना अग्निके स्पर्शसे पका हुआ अन्न, तिल, चावल, खजूर, नारिकेल, बिजौरा नीबू, नारंगी, अंगूर, दाड़िम, सुपारी आदि उपचारोंसे वारुणीसहित वरुणदेवकी एवं जलाशयकी विधिपूर्वक पूजा करे और उन्हें अर्घ्य प्रदान कर इस प्रकार उनकी प्रार्थना करे—

वरुणाय नमस्तुभ्यं नमस्ते यादसाम्पते।
अपाम्पते नमस्तेऽस्तु रसानाम्पतये नमः॥
मा क्लेदं मा च दौर्गन्ध्यं विरस्यं मा मुखेऽस्तु मे।
वरुणो वारुणीभर्ता वरदोऽस्तु सदा मम॥

(उत्तरपर्व ११।७-८)

'जलचर जीवोंके स्वामी वरुणदेव! आपको नमस्कार है। सभी जल एवं जलसे उत्पन्न रस-द्रव्योंके स्वामी वरुणदेव! आपको नमस्कार है। मेरे शरीरमें पसीना, दुर्गन्ध या विरसता[2] आदि मेरे मुखमें न हों। वारुणीदेवीके स्वामी वरुणदेव! आप मेरे लिये सदा प्रसन्न एवं वरदायक बने रहें।'

व्रतीको चाहिये कि इस दिन बिना अग्निके पके हुए भोजन अर्थात् फल आदिका भोजन करे।

१-'पाली' शब्द जटिल है, यह कोशोंमें प्रायः नहीं मिलता। इसका अर्थ कूप, तडाग आदि जलाशयोंकी रक्षाके लिये बने घेरेसे है। उसीपर बैठकर स्त्रियाँ इस व्रतको सम्पन्न करती हैं। वरुणदेव चूँकि सभी जलोंमें रहते हैं, अतः इसे वहीं बैठकर करना चाहिये।

२-ज्वर आदिसे मुखका स्वाद बिगड़ जाता है, उसे विरसता कहते हैं।

इस विधिसे जो पाली-व्रतको करता है, वह तत्क्षण सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। आयु, यश और सौभाग्य प्राप्त करता है तथा समुद्रके जलकी भाँति उसके धनका कभी अन्त नहीं होता।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—राजन्! अब मैं ब्रह्माजीकी सभामें देवर्षियोंके द्वारा पूछे जानेपर देवलमुनिप्रोक्त रम्भा-व्रतका वर्णन कर रहा हूँ। यह भी भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशीको ही होता है। सभी देवताओं, गन्धर्वों तथा अप्सराओंने भी इस व्रतका अनुष्ठान कर कदली-वृक्षको सादर अर्घ्य प्रदान किया था। व्रतीको चाहिये कि इस चतुर्दशीको नाना प्रकारके फल, अंकुरित अन्नों, सप्तधान्य, दीप, चन्दन, दही, दूर्वा, अक्षत, वस्त्र, पक्वान्न, जायफल, इलायची तथा लवंग आदि उपचारोंसे कदली-वृक्षका पूजनकर उसे निम्नलिखित मन्त्रसे अर्घ्य प्रदान करे—

चित्या त्वं कन्दलदलैः कदली कामदायिनि।
शरीरारोग्यलावण्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व ९२।७)

'कदली देवि! आप अपने पत्तोंसे वायुके व्याजसे ज्ञान एवं चेतनाका संचार करती हुई सभी कामनाओंको देती हैं। आप मेरे शरीरमें रूप, लावण्य, आरोग्य प्रदान करनेकी कृपा करें। आपको नमस्कार है*।'

इसके अनन्तर स्वयं पके हुए फल आदिका भोजन ग्रहण करे। जो भी पुरुष अथवा स्त्री भक्तिसे इस व्रतको करती है, उसके वंशमें दुर्भगा, दरिद्रा, वन्ध्या, पापिनी, व्यभिचारिणी, कुलटा, पुनर्भू, दुष्टा और पतिकी विरोधिनी कोई कन्या नहीं उत्पन्न होती। इस व्रतको करनेपर नारी सौभाग्य, पुत्र-पौत्र, धन, आयुष्य तथा कीर्ति आदि प्राप्त कर सौ वर्षपर्यन्त अपने पतिके साथ आनन्दपूर्वक रहती है। इस रम्भा-व्रतको गायत्रीने स्वर्गमें किया था। इसी प्रकार गौरीने कैलासमें, इन्द्राणीने नन्दनवनमें, लक्ष्मीने श्वेतद्वीपमें, राज्ञीने रविमण्डलमें, अरुन्धतीने दारुवनमें, स्वाहाने मेरुपर्वतपर, सीतादेवीने अयोध्यामें, वेदवतीने हिमाचलपर और भानुमतीने नागपुरमें इस व्रतको किया था। (अध्याय ९१-९२)

आग्नेयी शिवचतुर्दशी-व्रतके प्रसंगमें महर्षि अङ्गिराका आख्यान

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! प्राचीन कालमें जब अग्निदेव अदृश्य हो गये, उस समय अग्निका कार्य किसने किया और कैसे अग्निने पुनः अपना स्वरूप प्राप्त किया? इसे आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! एक बार उतथ्यमुनि और अङ्गिरामुनिका विद्यामें और तपमें परस्पर श्रेष्ठताके विषयमें बहुत विवाद हुआ। इसका निश्चय करनेके लिये दोनों ब्रह्मलोक गये और उन्होंने ब्रह्माजीको सारा वृत्तान्त बतलाया। ब्रह्माजीने उनसे कहा कि 'तुम दोनों जाकर सभी देवताओं और लोकपालोंको यहाँ बुला लाओ, तब सभीके समक्ष इसका निर्णय किया जायगा।' ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर दोनों जाकर सभी देवता, ऋषि, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, राक्षस, दैत्य, दानव आदिको बुला लाये। किंतु भगवान् सूर्य नहीं आये। ब्रह्माजीके पुनः कहनेपर उतथ्यमुनि

* कदलीके व्याजसे सर्वशक्तिमयी दुर्गाकी 'चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्। नमस्तस्यै०' को ही स्मरण करते हुए प्रार्थना की गयी है।

सूर्यनारायणके समीप जाकर बोले—'भगवन्! आप शीघ्र ही हमारे साथ ब्रह्मलोक चलें।' भगवान् सूर्यने कहा—'मुने! हमारे चले जानेपर जगत्में अन्धकार छा जायगा, इसलिये हमारा चलना किस प्रकार हो सकता है, हम नहीं चल सकेंगे।' यह सुनकर उतथ्यमुनि वहाँसे चले आये और ब्रह्माजीको सब वृत्तान्त सुना दिया। तब ब्रह्माजीने अङ्गिरामुनिसे सूर्यभगवान्को बुलानेके लिये कहा। अङ्गिरामुनि ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर सूर्यनारायणके समीप गये और उनसे ब्रह्मलोक चलनेको कहा। सूर्यनारायणने वही उत्तर इनको भी दिया। तब अङ्गिराने कहा—'प्रभो! आप ब्रह्मलोक जायँ, मैं आपके स्थानपर यहाँ रहकर प्रकाश करूँगा।' यह सुनकर सूर्यनारायण तो ब्रह्माजीके पास चले गये और अङ्गिरा प्रचण्ड तेजसे तपने लगे। इधर भगवान् सूर्यने ब्रह्माजीसे पूछा—'ब्रह्मन्! आपने किस निमित्तसे मुझे यहाँ बुलाया है?' ब्रह्माजीने कहा—'देव! आप शीघ्र ही अपने स्थानपर जायँ, नहीं तो अङ्गिरामुनि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको दग्ध कर डालेंगे। देखिये उनके तापसे सभी लोग दग्ध हो रहे हैं। जबतक वे सब कुछ भस्म न कर डालें उससे पूर्व ही आप प्रतिष्ठित हो जायँ।' यह सुनते ही सूर्यभगवान् पुनः अपने स्थानपर लौट आये और उन्होंने अङ्गिरामुनिकी स्तुति कर उन्हें बिदा किया। अङ्गिरा पुनः देवताओंके समीप आये। देवताओंने अङ्गिरामुनिकी स्तुति की और कहा—'भगवन्! जबतक हम अग्निको ढूँढ़ें तबतक आप अग्निके सभी कर्म कीजिये।' देवताओंका ऐसा वचन सुनकर महर्षि अङ्गिरा अग्निरूपमें देवकार्यादिको सम्पन्न करने लगे। जब अग्निदेव आये तो उन्होंने देखा कि अङ्गिरामुनि अग्नि बनकर स्थित हैं। इसपर वे बोले—'मुने! आप मेरा स्थान छोड़ दें। मैं आपकी शुभा नामकी स्त्रीसे ज्येष्ठ एवं प्रिय पुत्रके रूपमें उत्पन्न होऊँगा और तब मेरा नाम होगा बृहस्पति। आपके और भी बहुत-से पुत्र-पौत्र होंगे।' यह वर पाकर प्रसन्न हो महर्षि अङ्गिराने अग्निका स्थान छोड़ दिया।

राजन्! अग्निदेवको चतुर्दशी तिथिको ही अपना स्थान प्राप्त हुआ था, इसलिये यह तिथि अग्निको अति प्रिय है और आग्नेयी चतुर्दशी तथा रौद्री चतुर्दशीके नामसे प्रसिद्ध है। स्वर्गमें देवता और भूमिपर मान्धाता, मनु, नहुष आदि बड़े-बड़े राजाओंने इस तिथिको माना है। जो पुरुष युद्धमें मारे जायँ, सर्प आदिके काटनेसे मरे हों और जिसने आत्मघात किया हो, उनका इस चतुर्दशी तिथिमें श्राद्ध करना चाहिये, जिससे वे सद्गतिको प्राप्त हो जायँ। इस तिथिके व्रतका विधान इस प्रकार है—चतुर्दशीको उपवास करे और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे त्रिलोचन श्रीसदाशिवका पूजन करे, रात्रिमें जागरण करे। रात्रिमें पञ्चगव्यका प्राशन कर भूमिपर ही शयन करे। तैल-क्षारसे रहित श्यामाक (साँवा)-का भोजन करे। अग्निके नाम-मन्त्रोंद्वारा काले तिलोंसे १०८ आहुतियाँ प्रदान करे। दूसरे दिन प्रातः स्नान कर पञ्चामृतसे शिवजीको स्नान कराकर भक्तिपूर्वक उनका पूजन करे और पूर्वोक्त रीतिसे हवनकर उनकी प्रार्थना करे। पीछे आरती कर ब्राह्मणको भोजन कराये। उनको दक्षिणा दे और मौन हो स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकार एक वर्ष व्रत कर सुवर्णकी त्रिलोचन भगवान् शंकरकी प्रतिमा बनाये। प्रतिमाको चाँदीके वृषभपर स्थितकर दो श्वेत वस्त्रोंसे आच्छादित कर ताम्रपात्रमें स्थापित करे। तदनन्तर गन्ध, श्वेत पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उसका पूजन कर ब्राह्मणको दे दे। जो एक वर्षतक इस व्रतको करता है, वह लम्बी आयु प्राप्त कर अन्तमें तीर्थमें प्राण परित्याग कर

शिवलोकमें देवताओंके साथ विहार करता है। वहाँ बहुत कालतक रहकर वह पृथ्वीमें आकर ऐश्वर्यसम्पन्न धार्मिक राजा होता है। पुत्र-पौत्रोंसे समन्वित होता है और चिरकालतक आनन्दित रहता है तथा अपने अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त करता है*। (अध्याय ९३)

अनन्तचतुर्दशी-व्रत-विधान

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! सम्पूर्ण पापोंका नाशक, कल्याणकारक तथा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला अनन्तचतुर्दशी नामक एक व्रत है, जिसे भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको सम्पन्न किया जाता है।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आपने जो अनन्त नाम लिया है, क्या ये अनन्त शेषनाग हैं या कोई अन्य नाग हैं अथवा परमात्मा हैं या ब्रह्म हैं? अनन्त संज्ञा किसकी है? इसे आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! अनन्त मेरा ही नाम है। कला, काष्ठा, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग तथा कल्प आदि काल-विभागोंके रूपमें मैं ही अवस्थित हूँ। संसारका भार उतारने तथा दानवोंका विनाश करनेके लिये वसुदेवके कुलमें मैं ही उत्पन्न हुआ हूँ। पार्थ! आप मुझे ही विष्णु, जिष्णु, हर, शिव, ब्रह्मा, भास्कर, शेष, सर्वव्यापी ईश्वर समझिये और अनन्त भी मैं ही हूँ। मैंने आपको विश्वास उत्पन्न करनेके लिये ऐसा कहा है।

युधिष्ठिरने पुनः पूछा—भगवन्! मुझे आप अनन्त-व्रतके माहात्म्य और विधिको तथा इसे किसने पहले किया था एवं इस व्रतका क्या पुण्य है, इसे बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—युधिष्ठिर! इस सम्बन्धमें एक प्राचीन आख्यान है, उसे आप सुनें। कृतयुगमें वसिष्ठगोत्री सुमन्तु नामके एक ब्राह्मण थे। उनका महर्षि भृगुकी कन्या दीक्षासे वेदोक्त-विधिसे विवाह हुआ था। उन्हें सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम शीला रखा गया। कुछ समय बाद उसकी माता दीक्षाका ज्वरसे देहान्त हो गया और उस पतिव्रताको स्वर्गलोक प्राप्त हुआ। सुमन्तुने पुनः एक कर्कशा नामकी कन्यासे विवाह कर लिया। वह अपने कर्कशा नामके समान ही दुःशील, कर्कश तथा नित्य कलहकारिणी एवं चण्डीरूपा थी। शीला अपने पिताके घरमें रहती हुई दीवाल, देहली तथा स्तम्भ आदिमें माङ्गलिक स्वस्तिक, पद्म, शङ्ख आदि विष्णुचिह्नोंको अङ्कित कर उनकी अर्चना करती रहती। सुमन्तुको शीलाके विवाहकी चिन्ता होने लगी। उन्होंने शीलाका विवाह कौंडिन्यमुनिके साथ कर दिया। विवाहके अनन्तर सुमन्तुने अपनी पत्नीसे कहा—'देवि! दामादके लिये पारितोषिक रूपमें कुछ दहेज द्रव्य देना चाहिये।' यह सुनकर कर्कशा क्रुद्ध हो उठी और उसने घरमें बने मण्डपको उखाड़ डाला तथा भोजनसे बचे हुए कुछ पदार्थोंको पाथेयके रूपमें प्रदान कर कहा—चले जाओ, फिर उसने कपाट बंद कर लिया।

कौंडिन्य भी शीलाको साथ लेकर बैलगाड़ीसे धीरे-धीरे वहाँसे चल पड़े। दोपहरका समय हो

* प्रायः अन्य ज्यौतिष ग्रन्थों तथा पुराणोंके अनुसार अग्निदेवकी तिथि प्रतिपदा ही है। चतुर्दशी शिवजीकी तिथि है। यहाँ भी शिवजीकी ही पूजा है, अतः कल्पान्तर-व्यवस्था मान लेनी चाहिये।

गया। वे एक नदीके किनारे पहुँचे। शीलाने देखा कि शुभ वस्त्रोंको पहने हुए कुछ स्त्रियाँ चतुर्दशीके दिन भक्तिपूर्वक जनार्दनकी अलग-अलग पूजा कर रही हैं। शीलाने उन स्त्रियोंके पास जाकर पूछा—'देवियो! आपलोग यहाँ किसकी पूजा कर रही हैं, इस व्रतका क्या नाम है।' इसपर वे स्त्रियाँ बोलीं—'यह व्रत अनन्तचतुर्दशी नामसे प्रसिद्ध है।' शीला बोली—'मैं भी इस व्रतको करूँगी, इस व्रतका क्या विधान है, किस देवताकी इसमें पूजा की जाती है और दानमें क्या दिया जाता है, इसे आपलोग बतायें।' इसपर स्त्रियोंने कहा-'शीले! प्रस्थभर पक्वान्नका नैवेद्य बनाकर नदीतटपर जाय, वहाँ स्नान कर एक मण्डलमें अनन्तस्वरूप भगवान् विष्णुकी गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे पूजा करे और कथा सुने। उन्हें नैवेद्य अर्पित करे। नैवेद्यका आधा भाग ब्राह्मणको निवेदित कर आधा भाग प्रसादरूपमें ग्रहण करनेके लिये रखे। भगवान् अनन्तके सामने चौदह ग्रन्थियुक्त एक दोरक (डोरा) स्थापित कर उसे कुंकुमादिसे चर्चित करे। भगवान्को वह दोरक निवेदित करके पुरुष दाहिने हाथमें और स्त्री बायें हाथमें बाँध ले। दोरक-बन्धनका मन्त्र इस प्रकार है—

अनन्तसंसारमहासमुद्रे मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव।
अनन्तरूपे विनियोजितात्मा ह्यनन्तरूपाय नमो नमस्ते॥

(उत्तरपर्व ९४। ३३)

'हे वासुदेव! अनन्त संसाररूपी महासमुद्रमें मैं डूब रही हूँ, आप मेरा उद्धार करें, साथ ही अपने अनन्तस्वरूपमें मुझे भी आप विनियुक्त कर लें। हे अनन्तस्वरूप! आपको मेरा बार-बार प्रणाम है।'

दोरक बाँधनेके अनन्तर नैवेद्य ग्रहण करना चाहिये। अन्तमें विश्वरूपी अनन्तदेव भगवान् नारायणका ध्यान कर अपने घर जाय। शीले! हमने इस अनन्तव्रतका वर्णन किया। तदनन्तर शीलाने भी विधिसे इस व्रतका अनुष्ठान किया। पाथेय निवेदित कर उसका आधा भाग ब्राह्मणको प्रदान कर आधा स्वयं ग्रहण किया और दोरक भी बाँधा। उसी समय शीलाके पति कौंडिन्य भी वहाँ आये। फिर वे दोनों बैलगाड़ीसे अपने घरकी ओर चल पड़े। घर पहुँचते ही व्रतके प्रभावसे उनका घर प्रचुर धन-धान्य एवं गोधनसे सम्पन्न हो गया। वह शीला भी मणि-मुक्ता तथा स्वर्णादिके हारों और वस्त्रोंसे सुशोभित हो गयी। वह साक्षात् सावित्रीके समान दिखलायी देने लगी। कुछ समय बाद एक दिन शीलाके हाथमें बँधे अनन्त-दोरकको उसके पतिने क्रुद्ध हो तोड़ दिया। उस विपरीत कर्मविपाकसे उनकी सारी लक्ष्मी नष्ट हो गयी, गोधन आदि चोरोंने चुरा लिया। सभी कुछ नष्ट हो गया। आपसमें कलह होने लगा। मित्रोंने सम्बन्ध तोड़ लिया। अनन्तभगवान्के तिरस्कार करनेसे उनके घरमें दरिद्रताका साम्राज्य छा गया। दुःखी होकर कौंडिन्य एक गहन वनमें चले गये और विचार करने लगे कि मुझे कब अनन्तभगवान्के दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होगा। उन्होंने पुनः निराहार रहकर तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक भगवान् अनन्तका व्रत एवं उनके नामोंका जप किया और उनके दर्शनोंकी लालसासे विह्वल होकर वे पुनः दूसरे निर्जन वनमें गये। वहाँ उन्होंने एक फले-फूले आम्र-वृक्षको देखा और उससे पूछा कि क्या तुमने अनन्तभगवान्को देखा है? तब उसने कहा—'ब्राह्मण देवता! मैं अनन्तको नहीं जानता।' इस प्रकार वृक्षों आदिसे अनन्तभगवान्के विषयमें पूछते-पूछते घास चरती हुई एक सवत्सा गौको देखा। कौंडिन्यने गौसे पूछा—'धेनुके! क्या तुमने अनन्तको देखा है?' गौने कहा—'विभो! मैं अनन्तको नहीं जानती।'

इसके पश्चात् कौंडिन्य फिर आगे बढ़े। वहाँ उन्होंने देखा कि एक वृषभ घासपर बैठा है। पूछनेपर वृषभने भी बताया कि मैंने अनन्तको नहीं देखा है। फिर आगे जानेपर कौंडिन्यको दो रमणीय तालाब दिखलायी पड़े। कौंडिन्यने उनसे भी अनन्तभगवान्‌के विषयमें पूछा, किंतु उन्होंने भी अनभिज्ञता प्रकट की। इसी प्रकार कौंडिन्यने अनन्तके विषयमें गर्दभ तथा हाथीसे पूछा, उन्होंने भी नकारात्मक उत्तर दिया। इसपर वे कौंडिन्य अत्यन्त निराश हो पृथ्वीपर गिर पड़े। उसी समय कौंडिन्यमुनिके सामने कृपा करके भगवान् अनन्त वृद्ध ब्राह्मणके रूपमें प्रकट हो गये और पुनः उन्हें अपने दिव्य चतुर्भुज विश्वरूपका दर्शन कराया। भगवान्‌का दर्शनकर कौंडिन्य अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उनकी प्रार्थना करने लगे तथा अपने अपराधोंके लिये क्षमा माँगने लगे—

पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः।
पाहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो भव॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्।

(उत्तरपर्व ९४। ६०-६१)

कौंडिन्यने भगवान्‌से पुनः पूछा—भगवन्! घोर वनमें मुझे जो आम्रवृक्ष, वृषभ, गौ, पुष्करिणी, गर्दभ तथा हाथी मिले, वे कौन थे? आप तत्त्वतः इसे बतलायें।

भगवान् बोले—'द्विजदेव! वह आम्रवृक्ष पूर्वजन्ममें एक वेदज्ञ विद्वान् ब्राह्मण था, किंतु उसे अपनी विद्याका बड़ा गर्व था। उसने शिष्योंको विद्या-दान नहीं किया, इसलिये वह वृक्ष-योनिको प्राप्त हुआ। जिस गौको तुमने देखा, वह उपजाऊ शक्तिरहित वसुन्धरा थी, वह भूमि सर्वथा निष्फल थी, अतः वह गौ बनी। वृषभ सत्य धर्मका आश्रय ग्रहणकर धर्मस्वरूप ही था। वे पुष्करिणियाँ धर्म और अधर्मकी व्यवस्था करनेवाली दो ब्राह्मणियाँ थीं। वे परस्पर बहिनें थीं, किंतु धर्म-अधर्मके विषयमें उनमें परस्पर अनुचित विवाद होता रहता था। उन्होंने किसी ब्राह्मण, अतिथि अथवा भूखेको दान भी नहीं किया। इसी कारण वे दोनों बहिनें पुष्करिणी हो गयीं, यहाँ भी लहरोंके रूपमें आपसमें उनमें संघर्ष होता रहता है। जिस गर्दभको तुमने देखा, वह पूर्वजन्ममें महान् क्रोधी व्यक्ति था और हाथी पूर्वजन्ममें धर्मदूषक था। हे विप्र! मैंने तुम्हें सारी बातें बतला दीं। अब तुम अपने घर जाकर अनन्त-व्रत करो, तब मैं तुम्हें उत्तम नक्षत्रका पद प्रदान करूँगा। तुम स्वयं संसारमें पुत्र-पौत्रों एवं सुखको प्राप्तकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करोगे। ऐसा वर देकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

कौंडिन्यने भी घर आकर भक्तिपूर्वक अनन्तव्रतका पालन किया और अपनी पत्नी शीलाके साथ वे धर्मात्मा उत्तम सुख प्राप्तकर अन्तमें स्वर्गमें पुनर्वसु नामक नक्षत्रके रूपमें प्रतिष्ठित हुए। जो व्यक्ति इस व्रतको करता है या इस कथाको सुनता है, वह भी भगवान्‌के स्वरूपमें मिल जाता है।

(अध्याय ९४)

श्रवणिकाव्रत-कथा एवं व्रत-विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! संसारमें श्रावणी नामकी जिन देवियोंका नाम सुना जाता है, वे कौन हैं और उनका क्या धर्म है तथा वे क्या करती हैं? इसे आप बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पाण्डवश्रेष्ठ! ब्रह्माने इन श्रावणी देवियोंकी रचना की है। संसारमें मानव जो कुछ भी शुभ अथवा अशुभ कर्म करता है, वे श्रावणी देवियाँ उस विषयकी सूचना शीघ्र

ही ब्रह्माको श्रवण कराती हैं, इसीलिये ये श्रावणी कही गयी हैं*। संसारके प्राणियोंका नियमन करनेके कारण वे पूज्य हैं। वे दूरसे ही जान-सुन-देख लेती हैं। कोई भी ऐसा कर्म नहीं है जो इनसे अदृश्य हो। इनमें ऐसी विलक्षण शक्ति है जो तर्क, हेतु आदिसे अगम्य है। जिस प्रकार देवता, विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व, किम्पुरुष आदि पूज्य एवं पुण्यप्रद हैं, उसी प्रकार ये श्रावणी देवियाँ भी वन्दनीय एवं पुण्यमयी हैं। स्त्री-पुरुषोंको इनकी प्रसन्नताके लिये व्रत करना चाहिये तथा जल, चन्दन, पुष्प, धूप, पक्वान्न आदिसे इनकी पूजा करनी चाहिये और स्त्रियों तथा पुरुषोंको भोजन कराकर व्रतकी पारणा करनी चाहिये।

इनका व्रत न करनेसे मृत्यु-कष्ट होता है और यम-यातना सहन करनी पड़ती है। राजन्! इस विषयमें आपको एक आख्यान सुनाता हूँ—

प्राचीन कालमें नहुष नामके एक राजा थे। उनकी रानीका नाम 'जयश्री' था। वह अत्यन्त सुन्दर, शीलवती एवं पतिव्रता थी। एक बार गङ्गामें स्नान करके वह महर्षि वसिष्ठके समीपवर्ती आश्रममें गयी, वहाँ उसने देखा कि माता अरुन्धती मुनिपत्नियोंको विविध प्रकारका भोजन करा रही हैं। जयश्रीने उन्हें प्रणाम कर पूछा—'भगवति! आप यह कौन-सा व्रत कर रही हैं।' अरुन्धती बोलीं—'देवि! मैं श्रवणिकाव्रत कर रही हूँ। इस व्रतको मुझे महर्षि वसिष्ठने बताया है। यह व्रत अत्यन्त गुप्त और ब्रह्मर्षियोंका सर्वस्व है तथा कन्याओंके लिये श्रेष्ठ एवं उत्तम पति प्रदान करनेवाला है। तुम यहाँ ठहरो, मैं तुम्हारा आतिथ्य करूँगी' और उन्होंने वैसा ही किया। तदनन्तर जयश्री अपने नगरमें चली आयी। कुछ समय बाद वह उस व्रतको तथा अरुन्धतीके भोजनको भूल गयी। समय आनेपर जब वह महासती मरणासन्न हुई तो उसके गलेमें घर्घराहट होने लगी, कण्ठ अवरुद्ध हो गया, मुखसे फेन एवं लार टपकने लगा। इस प्रकार दारुण कष्ट भोगते हुए उसे पंद्रह दिन व्यतीत हो गये। उसका मुख देखनेसे भय लगता था। सोलहवें दिन अरुन्धती जयश्रीके घर आयीं और उन्होंने वैसी कष्टप्रद स्थितिमें उसे देखा। तब अरुन्धतीने राजा नहुषसे श्रवणिकाव्रतके विषयमें बतलाया। राजा नहुषने भी देवी अरुन्धतीके निर्देशानुसार जयश्रीके निमित्त तत्काल श्रवणिका-व्रतका आयोजन किया। उस व्रतके प्रभावसे जयश्रीने सुखपूर्वक मृत्युका वरण किया और इन्द्रलोकको प्राप्त किया।

श्रीकृष्णने पुनः कहा—राजन्! मार्गशीर्षसे कार्तिकतक द्वादश मासोंकी चतुर्दशी अथवा अष्टमी तिथियोंमें भक्तिपूर्वक यह व्रत करना चाहिये। प्रातःकाल नदी आदिमें स्नानकर पवित्र हो, श्रेष्ठ बारह ब्राह्मण-दम्पतियों अथवा अपने गोत्रमें उत्पन्न बारह दम्पतियोंको बुलाकर गन्ध, पुष्प, रोचना, वस्त्र, अलंकार, सिंदूर आदिसे उनका भक्तिपूर्वक पूजन करे। सुन्दर, सुडौल, अच्छिद्र, जलसे भरे हुए, सूत्रसे आवेष्टित तथा पुष्पमाला आदिसे विभूषित स्वर्णयुक्त बारह वर्धनियों (जलपूर्ण कलश)-को ब्राह्मणियोंके सामने पृथक्-पृथक् रखे। उनमेंसे मध्यकी एक वर्धनी उठाकर अपने सिरपर रखे और उन ब्राह्मणियोंसे बाल्यावस्था, कुमारावस्था तथा वृद्धावस्थामें किये गये पापोंके विनाश, सुखपूर्वक मृत्यु-प्राप्ति एवं संसार-सागरसे पार होने और भगवान्‌के परमपदको पानेके लिये प्रार्थना करे। वे ब्राह्मणियाँ भी कहें—'ऐसा ही

* गरुडपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय ७ में भी यह विषय विस्तारसे प्रतिपादित है। वहाँ इन्हें देवी न कहकर श्रवण नामका पुरुष देवता कहा गया है।

हो।' ब्राह्मणोंसे पापके विनाशके लिये प्रार्थना करे। ब्राह्मण उस वर्धनीको उसके सिरसे उतार लें और उसे आशीर्वाद प्रदान करें। उन सभी वर्धनियोंको ब्राह्मण-पत्नियोंको दे दे।

हे पार्थ! इस प्रकार इस श्रवणिकाव्रतको भक्तिपूर्वक करनेवाला सभी भोगोंका उपभोग कर सुखपूर्वक मृत्युका वरण करता है और उत्तम लोकको प्राप्त करता है। (अध्याय ९५)

नक्त एवं शिवचतुर्दशी-व्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब आप नक्तव्रतका विधान सुनिये, जिसके करनेसे मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है। किसी भी मासकी शुक्ल चतुर्दशीको ब्राह्मणको भोजन कराकर नक्तव्रत प्रारम्भ करना चाहिये। प्रत्येक मासमें दो अष्टमियाँ और दो चतुर्दशियाँ होती हैं। उस दिन भक्तिपूर्वक शिवजीका पूजन करे और उनके ध्यानमें तत्पर रहे। रात्रिके समय पृथ्वीको पात्र बनाकर उसीमें भोजर करे[1]। उपवाससे उत्तम भिक्षा, भिक्षासे उत्तम अयाचित-व्रत और अयाचित-व्रतसे भी उत्तम है नक्त-भोजन। इसलिये नक्तव्रत करना चाहिये। पूर्वाह्णमें देवता, मध्याह्नमें मुनिगण, अपराह्णमें पितर और सायंकालमें गुह्यक आदि भोजन करते हैं। इसलिये सबके बाद नक्त-भोजन करना चाहिये। नक्तव्रत करनेवाला पुरुष नित्य स्नान, स्वल्प हविष्यान्न-भोजन, सत्य-भाषण, नित्य-हवन और भूमिशयन करे। इस प्रकार एक वर्षतक व्रत करके अन्तमें घृतपूर्ण कलशके ऊपर भगवान् शिवकी मृत्तिकासे बनी प्रतिमा स्थापित करे। कपिला गौके पञ्चगव्यसे प्रतिमाको स्नान कराकर फल, पुष्प, यव, क्षीर, दधि, दूर्वाङ्कुर, तिल तथा चावल जलमें छोड़कर अष्टाङ्ग-अर्घ्य प्रदान करे। दोनों घुटनोंको पृथ्वीपर रखकर पात्रको सिरतक उठाकर महादेवजीको अर्घ्य दे। अनन्तर अनेक प्रकारके भाक्ष्य-भोज्य नैवेद्य निवेदित करे। एक उत्तम सवत्सा गौ और वृषभ वेदवेत्ता ब्राह्मणको दक्षिणासहित दे। इस व्रतको करनेवाला व्यक्ति दिव्य देह धारण कर उत्तम विमानमें बैठकर रुद्रलोकमें जाता है। वहाँ तीन सौ कोटि वर्षपर्यन्त सुख भोगकर इस लोकमें महान् राजा होता है। एक बार भी जो इस विधानसे नक्तव्रत कर श्रीसदाशिवका पूजन करता है, वह स्वर्गलोकको प्राप्त करता है।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज! अब मैं तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध शिवचतुर्दशीकी विधि बता रहा हूँ। यह माहेश्वरव्रत शिवचतुर्दशी नामसे प्रसिद्ध है[2]। इस व्रतमें मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको एक बार भोजन करे और चतुर्दशीको निराहार रहकर पार्वतीसहित भगवान् शंकरकी गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे पूजा करे। स्वर्णका वृषभ बनाकर उसकी भी पूजा करे। अनन्तर वह वृषभ तथा स्थापित जलपूर्ण कलश ब्राह्मणको प्रदान कर दे, विविध प्रकारके भक्ष्य पदार्थ भी दे और कहे—**'प्रीयतां देवदेवोऽत्र सद्योजातः पिनाकधृक्।'** अनन्तर उत्तराभिमुख हो घृतका प्राशन कर भूमिपर शयन करे। प्रतिमासकी शुक्ल चतुर्दशीको यही विधान

१-गया आदि तीर्थोंमें पृथ्वीपर ही भोजनपात्रके रूपमें थालियाँ बनी हुई हैं। पहले जैन, बौद्ध, भिक्षु, संन्यासी उन्हींमें या मिट्टीकी बनी थालियोंमें भोजन करते थे और कुछ लोग हाथमें लेकर भोजन करते थे। उन्हें करपात्री कहते थे। इसमें त्याग, व्रत, तपस्या और सहिष्णुता सब मिश्रित थी।

२-इस व्रतका वर्णन मत्स्य आदि पुराणोंमें भी प्राप्त होता है।

करे और मार्गशीर्ष आदि महीनोंमें शयनके समय इस प्रकार प्रार्थना करे—

शंकराय नमस्तुभ्यं नमस्ते करवीरक।
त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्यं महेश्वरमतः परम्॥
नमस्तेऽस्तु महादेव स्थाणवे च ततः परम्।
नमः पशुपते नाथ नमस्ते शम्भवे नमः॥
नमस्ते परमानन्द नमः सोमार्धधारिणे।
नमो भीमाय चोग्राय त्वामहं शरणं गतः॥

(उत्तरपर्व ९७। १५—१७)

बारह महीनोंमें क्रमसे गोमूत्र, गोमय, दुग्ध, दधि, घृत, कुशोदक, पञ्चगव्य, बिल्व, यवागू (यवकी काँजी), कमल तथा काले तिलका प्राशन करे और मन्दार, मालती, धतूर, सिंदुवार, अशोक, मल्लिका, कुब्जक, पाटल, अर्क-पुष्प, कदम्ब, रक्त अथवा नील कमल तथा कनेर—इन बारह पुष्पोंसे क्रमशः बारहों चतुर्दशियोंमें उमामहेश्वरका पूजन करे। अनेक प्रकारके भोजन, वस्त्र, आभूषण, दक्षिणा आदि देकर ब्राह्मणोंको संतुष्ट कर नीले (कृष्ण) रंगका वृष छोड़े और एक गौ तथा एक वृष सुवर्णका बना करके आठ मोतियोंसे युक्त उत्तम शय्यापर स्थापित करे। जल-कुम्भ, शालि-चावल, घृत, दक्षिणासहित सब सामग्री वेद-व्रत-परायण, शान्तचित्त सपत्नीक ब्राह्मणोंको प्रदान कर दे। इस व्रतको जो पुरुष भक्तिपूर्वक करता है, उसके माता-पिताके भी सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और वह स्वयं हजार अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है तथा दीर्घायु, ऐश्वर्य, आरोग्य, संतान एवं विद्या आदि प्राप्त करता है। बहुत दिनोंतक संसारका सुख भोगकर वह विष्णुलोकादिमें विहार करता हुआ अन्तमें शिवलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय ९६-९७)

सर्वफलत्याग-चतुर्दशीव्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—भारत! अब आप सर्वफलत्याग-चतुर्दशीव्रतका माहात्म्य सुनें। यह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। इस व्रतका नियम मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको अथवा अन्य मासोंकी अष्टमीको ग्रहण करना चाहिये। उस दिन ब्राह्मणोंको पायस-भोजन कराकर दक्षिणा दे। इस व्रतका आरम्भ कर वर्षभर कोई निन्द्य फल-मूल तथा अठारह प्रकारके धान्य* भक्षण न करे। वर्षके अन्तमें चतुर्दशी अथवा अष्टमीके दिन सुवर्णके रुद्र एवं धर्मराजकी प्रतिमा बनाकर दो कलशोंके ऊपर स्थापित कर उनका पूजन करे। सोनेके सोलह कूष्माण्ड और मातुलुङ्ग, बैगन, कटहल, आम्र, आमड़ा, कैथ, कलिंग (तरबूज), ककड़ी, श्रीफल, वट, अश्वत्थ, जम्बीरी नींबू, केला, बेर तथा दाडिम (अनार)—ये फल बनवाये। मूली, आँवला, जामुन, कमलगट्टा, करौंदा, गूलर, नारियल, अंगूर, दो बनभंटा, कंकोल, काकमाची, खीरा, करील, कुटज तथा शमी—ये सोलह फल चाँदीके बनवाये और ताल, अगस्त्य, पिड़ार, खजूर, सूरण, कंदक, कटहल, लकुच, खेंकसा, इमली, चित्रावल्ली, कूटशाल्मलिका, महुआ, कारवेल्ल, वल्ली तथा गुदपटोलक—ये सोलह फल ताँबेके बनवाये। इन फलोंका व्रतपर्यन्त भक्षण न करे

* ये अठारह धान्य—याज्ञवल्क्य-स्मृ० १। २०८ की अपरार्क व्याख्या, व्याकरणमहाभाष्य ५। २। ४, वाजसने० संहिता १८। १२, दानमयूख तथा विधानपारिजात आदिके अनुसार इस प्रकार हैं—सावाँ, धान, जौ, मूँग, तिल, अणु (कँगनी), उड़द, गेहूँ, कोदो, कुलथी, सतीन (छोटी मटर), सेम, आढ़की (अरहर) या मयुष्ट (उजली मटर), चना, कलाय, मटर, प्रियङ्गु (सरसों, राई या टॉगुन) और मसूर। अन्य मतसे मयुष्टादिकी जगह अतसी और नीवार ग्राह्य हैं।

अर्थात् इन फलोंके त्यागका व्रतमें संकल्प करे। व्रतकी पूर्णतापर धर्मराज एवं रुद्रकी प्रतिमा तथा स्वर्ण, रौप्य एवं ताम्रसे बनाये गये इन पलोंको वेदज्ञ, शान्त, सपत्नीक ब्राह्मणको भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये प्रार्थनापूर्वक दान कर दे। सभी उपकरणोंसहित उत्तम शय्या, भूषण, दक्षिणा भी ब्राह्मणको देकर यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराये। स्वयं भी तैल-क्षारवर्जित भोजन करे। यदि सभी फलोंको न त्याग सके तो एक ही फलका त्याग करे और सुवर्ण आदिका बनवाकर इसी विधानसे ब्राह्मणको दे। उन फलोंमें जितने परमाणु होते हैं, उतने हजार युग वर्षतक इस व्रतको करनेवाला व्यक्ति रुद्रलोकमें पूजित होता है। स्त्रियोंको भी यह व्रत करना चाहिये। इस व्रतके करनेवालोंको किसी जन्ममें इष्टका वियोग नहीं होता और अन्तमें वह स्वर्गमें निवास करता है। (अध्याय ९८)

पौर्णमासी-व्रत-विधान एवं अमावास्यामें श्राद्ध-तर्पणकी महिमा

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! पूर्णिमा चन्द्रमाकी प्रिय तिथि है. क्योंकि इसी दिन चन्द्रमा* सोलह कलाओंसे परिपूर्ण होते हैं। इसीलिये यह पौर्णमासी कही जाती है। इसी तिथिको चन्द्रमा तारासे बुध नामक पुत्रको प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। यह पौर्णमासी तिथि सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली है। चन्द्रमाने स्वयं कहा है कि 'जो इस पूर्णिमा-तिथिमें भक्तिपूर्वक विधिवत् मेरी पूजा करेगा, मैं प्रसन्न होकर उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण कर दूँगा।' व्रतीको चाहिये कि पूर्णिमाके दिन प्रातः नदी आदिमें स्नान कर देवता और पितरोंका तर्पण करे। तदनन्तर घर आकर एक मण्डल बनाये और उसमें नक्षत्रोंसहित चन्द्रमाको अङ्कित कर श्वेत गन्ध, अक्षत, श्वेत पुष्प, धूप, दीप, घृतपक्व नैवेद्य तथा श्वेत वस्त्र आदि उपचारोंसे चन्द्रमाका पूजन कर उनसे क्षमा-प्रार्थना करे एवं सायंकाल इस मन्त्रसे चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे—

वसन्तबान्धव विभो शीतांशो स्वस्ति नः कुरु।
गगनार्णवमाणिक्य चन्द्र दाक्षायणीपते॥

(उत्तरपर्व ९९।५४)

अनन्तर रात्रिमें मौन होकर शाक एवं तिन्नीके चावलका भोजन करे। प्रत्येक मासकी पौर्णमासीको इसी प्रकार उपवासपूर्वक चन्द्रमाकी पूजा करनी चाहिये। यदि कृष्ण पक्षकी अमावास्यामें कोई श्रद्धावान् व्यक्ति चन्द्रमाकी पूजा करना चाहे तो उसके लिये भी यही विधि बतलायी गयी है। इससे सभी अभीष्ट सुख प्राप्त होते हैं। अमावास्या तिथि पितरोंको अत्यन्त प्रिय है। इस दिन दान एवं तर्पण आदि करनेसे पितरोंको तृप्ति प्राप्त होती है। जो अमावास्याको उपवास करता है, उसे अक्षय-वटके नीचे श्राद्ध करनेका फल प्राप्त होता है। यह अक्षय-वट पितरोंके लिये उत्तम तीर्थ है। जो अमावास्याको अक्षय-वटमें पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्धादि क्रिया करता है, वह पुण्यात्मा अपने इक्कीस कुलोंका उद्धार कर देता है। इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त पूर्णिमा-व्रत करके नक्षत्रसहित चन्द्रमाकी सुवर्णकी प्रतिमा बना करके वस्त्राभूषण आदिसे उसका पूजन कर ब्राह्मणको दान कर दे। व्रती यदि इस व्रतको निरन्तर न कर सके तो एक पक्षके व्रतको ही करके उद्यापन कर ले। पार्थ! पौर्णमासी-व्रत करनेवाला व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो चन्द्रमाकी तरह सुशोभित होता है और पुत्र-पौत्र, धन, आरोग्य आदि प्राप्तकर बहुत कालतक सुख भोगकर अन्तसमयमें प्रयागमें प्राण त्यागकर

* मास शब्दका अर्थ चन्द्रमा होता है, हिन्दुओंके महीने अमावास्याको पूर्ण होते हैं।

विष्णुलोकको जाता है। जो पुरुष पूर्णिमाको चन्द्रमाका पूजन और अमावास्याको पितृ-तर्पण, पिण्डदान आदि करते हैं, वे कभी धन-धान्य-संतान आदिसे च्युत नहीं होते। (अध्याय ९९)

वैशाखी, कार्तिकी और माघी पूर्णिमाकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! संवत्सरमें कौन-कौन तिथियाँ स्नान-दान आदिमें अधिक पुण्यप्रद हैं। उनका आप वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! वैशाख, कार्तिक और माघ—इन तीन महीनोंकी पूर्णिमाएँ स्नान-दान आदिके लिये अति श्रेष्ठ हैं। इन तिथियोंमें स्नान, दान आदि अवश्य करने चाहिये। इन तिथियोंमें तीर्थोंमें स्नान करे और यथाशक्ति दान दे। वैशाखीको उज्जयिनी (शिप्रा)-में, कार्तिकीको पुष्करमें और माघीको वाराणसी (गङ्गा)-में स्नान करना चाहिये। इस दिन जो पितरोंका तर्पण करता है, वह अनन्त फल पाता है और पितरोंका उद्धार करता है। वैशाख-पूर्णिमाको अन्न, सुवर्ण वस्त्रसहित जलपूर्ण कलश ब्राह्मणको दान करनेसे व्रती सर्वथा शोकमुक्त हो जाता है। इस व्रतमें सुन्दर मधुर भोजनसे परिपूर्ण पात्र, गौ, भूमि, सुवर्ण तथा वस्त्र आदिका दान करना चाहिये। माघ-पूर्णिमाको देवता और पितरोंका तर्पण कर सुवर्णसहित तिलपात्र, कम्बल, रुईके वस्त्र, कपास, रत्न आदि ब्राह्मणको दे। कार्तिक-पूर्णिमाको वृषोत्सर्ग करे। भगवान् विष्णुका नीराजन करे। हाथी, घोड़े, रथ और घृत-धेनु आदि दस धेनुओंका दान करे और केला, खजूर, नारियल, अनार, संतरा, ककड़ी, बैगन, करेला, कुंदुरु, कूष्माण्ड आदि फलोंका दान करे। इन पुण्य तिथियोंमें जो स्नान, दान आदि नहीं करते, वे जन्मान्तरमें रोगी और दरिद्री होते हैं। ब्राह्मणोंको दान देनेका तो फल है ही, परंतु बहन, भानजे, बुआ आदिको तथा दरिद्र बन्धुओंको भी दान देनेसे बड़ा पुण्य होता है। मित्र, कुलीन व्यक्ति, विपत्तिसे पीड़ित व्यक्ति, दरिद्री और आशासे आये अतिथिको दान देनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। राजन्! सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्र जब वन चले गये थे, उस समय भरतजी अपने ननिहालमें थे। इधर लोगोंने माता कौसल्याको उनके विषयमें सशंकित कर दिया कि श्रीरामके वन-गमनमें भरत ही मुख्य हेतु हैं। फिर जब वे ननिहालसे वापस आये और उन्हें सारी बातें ज्ञात हुईं तो उन्होंने माताको अनेक प्रकारसे समझाया और शपथ भी ली, पर माताको विश्वास न हुआ, किंतु जब भरतने कहा कि 'माँ! भगवान् श्रीरामके वन-गमनमें यदि मेरी सम्मति रही हो तो देवताओंद्वारा पूजित तथा अनेक पुण्योंको प्रदान करनेवाली वैशाख, कार्तिक तथा माघकी पूर्णिमाएँ मेरे बिना स्नान-दानके ही व्यतीत हों और मुझे निम्न गति प्राप्त हो।' इस महान् शपथको सुनते ही माताको विश्वास हो गया और उन्होंने भरतको अपने अङ्कमें ले लिया तथा अनेक प्रकारसे आश्वस्त किया। महाराज! इन तीनों तिथियोंका सम्पूर्ण माहात्म्य कौन वर्णन कर सकता है। मैंने संक्षेपमें कहा है। इन तीनों तिथियोंको जल, अन्न, वस्त्र, स्वर्णपात्र, छत्र आदि दान करनेवाले पुरुष इन्द्रलोकको प्राप्त करते हैं। (अध्याय १००)

युगादि तिथियोंकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आप उन तिथियोंका वर्णन करें, जिनमें स्वल्प भी किया गया स्नान, दान, जप आदि पुण्यकर्म अक्षय हो जाते हैं और महान् धर्म तथा शुभ फल प्राप्त होता है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! मैं आपको अत्यन्त रहस्यकी बात बताता हूँ, जिसे आजतक मैंने किसीसे नहीं कहा था। वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया, कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी नवमी, भाद्रपद मासके कृष्ण पक्षकी त्रयोदशी और माघकी पूर्णिमा—ये चारों युगादि तिथियाँ हैं अर्थात् इन तिथियोंमें क्रमशः सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि—चारों युगोंका प्रारम्भ हुआ है। इन तिथियोंको उपवास, तप, दान, जप, होम आदि करनेसे कोटि गुना पुण्य प्राप्त होता है। वैशाख शुक्ल तृतीयाको गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्राभूषणादिसे लक्ष्मीसहित नारायणका पूजन कर सवत्सा लवण-धेनुका दान करना चाहिये। कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी नवमीको नदी, तड़ाग आदिमें स्नानकर पुष्प, धूप, नैवेद्य आदि उपचारोंसे उमाके साथ नीलकण्ठ भगवान् शंकरकी पूजा कर तिल-धेनुका दान करना चाहिये। भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशीको पितृ-तर्पणकर शहद और घृतयुक्त अनेक प्रकारके पक्वान्नोंसे ब्राह्मण-भोजन कराये तथा दूध देनेवाली सुन्दर सुपुष्ट सवत्सा प्रत्यक्ष गौ ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये। माघ-पूर्णिमाको गायत्रीसहित ब्रह्माजीका पूजन कर सुवर्ण, वस्त्र अनेक प्रकारके फलोंसहित नवनीत-धेनुका दान करना चाहिये।

राजन्! इस प्रकार दान करनेवालोंको तीनों लोकोंमें किसी वस्तुका अभाव नहीं होता। इन युगादि तिथियोंमें जो दान दिया जाता है वह अक्षय हो जाता है। निर्धन हो तो थोड़ा-थोड़ा ही दान करे, उसका भी अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। वित्तके अनुसार शय्या, आसन, छतरी, जूता, वस्त्र, सुवर्ण, भोजन आदि ब्राह्मणोंको देना चाहिये। इन तिथियोंमें यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन भी कराये। अनन्तर प्रसन्न-मनसे बन्धु-बान्धवोंके साथ मौन हो स्वयं भी भोजन करे। युगादि तिथियोंमें दान-पूजन आदि करनेसे कायिक, वाचिक और मानसिक सभी प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं और दाता अक्षय स्वर्ग प्राप्त करता है। (अध्याय १०१)

सावित्री-व्रतकथा एवं व्रत-विधि

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! अब आप सावित्री-व्रतके विधानका वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! सावित्री नामकी एक राजकन्याने वनमें जिस प्रकार यह व्रत किया था, स्त्रियोंके कल्याणार्थ मैं उस व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, उसे आप सुनें। प्राचीन कालमें मद्रदेश (पंजाब)-में एक बड़ा पराक्रमी, सत्यवादी, क्षमाशील, जितेन्द्रिय और प्रजापालनमें तत्पर अश्वपति नामका राजा राज्य करता था, उसे कोई संतान न थी। इसलिये उसने सपत्नीक व्रतद्वारा सावित्रीकी आराधना की। कुछ कालके अनन्तर व्रतके प्रभावसे ब्रह्माजीकी पत्नी सावित्रीने प्रसन्न हो राजाको वर दिया कि 'राजन्! तुम्हें (मेरे ही अंशसे) एक कन्या उत्पन्न होगी।' इतना कहकर सावित्रीदेवी अन्तर्धान हो गयीं और कुछ दिन बाद राजाको एक दिव्य कन्या उत्पन्न हुई। वह

सावित्रीदेवीके वरसे प्राप्त हुई थी, इसलिये राजाने उसका नाम सावित्री ही रखा। धीरे-धीरे वह विवाहके योग्य हो गयी। सावित्रीने भी भृगुके उपदेशसे सावित्री-व्रत किया।

एक दिन वह व्रतके अनन्तर अपने पिताके पास गयी और प्रणाम कर वहाँ बैठ गयी। पिताने सावित्रीको विवाहयोग्य जानकर अमात्योंसे उसके विवाहके विषयमें मन्त्रणा की; पर उसके योग्य किसी श्रेष्ठ वरको न देखकर पिता अश्वपतिने सावित्रीसे कहा—'पुत्रि! तुम वृद्धजनों तथा अमात्योंके साथ जाकर स्वयं ही अपने अनुरूप कोई वर ढूँढ़ लो।' सावित्री भी पिताकी आज्ञा स्वीकार कर मन्त्रियोंके साथ चल पड़ी। स्वल्प कालमें ही राजर्षियोंके आश्रमों, सभी तीर्थों और तपोवनोंमें घूमती हुई तथा वृद्ध ऋषियोंका अभिनन्दन करती हुई वह मन्त्रियोंसहित पुनः अपने पिताके पास लौट आयी। सावित्रीने देखा कि राजसभामें देवर्षि नारद बैठे हुए हैं। सावित्रीने देवर्षि नारद और पिताको प्रणामकर अपना वृत्तान्त इस प्रकार बताया—महाराज! शाल्वदेशमें द्युमत्सेन नामके एक धर्मात्मा राजा हैं। उनके सत्यवान् नामक पुत्रका मैंने वरण किया है।' सावित्रीकी बात सुनकर देवर्षि नारद कहने लगे—'राजन्! इसने बाल्य-स्वभाववश उचित निर्णय नहीं लिया। यद्यपि द्युमत्सेनका पुत्र सभी गुणोंसे सम्पन्न है, परंतु उसमें एक बड़ा भारी दोष है कि आजके ही दिन ठीक एक वर्षके बाद उसकी मृत्यु हो जायगी।' देवर्षि नारदकी वाणी सुनकर राजाने सावित्रीसे किसी अन्य वरको ढूँढ़नेके लिये कहा।

सावित्री बोली—'राजाओंकी आज्ञा एक ही बार होती है। पण्डितजन एक ही बार बोलते हैं और कन्या भी एक ही बार दी जाती है—ये तीनों बातें बार-बार नहीं होतीं[1]। सत्यवान् दीर्घायु हो अथवा अल्पायु, निर्गुण हो या गुणवान्, मैंने तो उसका वरण कर ही लिया, अब मैं दूसरे पतिको कभी नहीं चुनूँगी। जो कहा जाता है, उसका पहले विचारपूर्वक मनमें निश्चय कर लिया जाता है और जो वचन कह दिया जाय, वही करना चाहिये। इसलिये मैंने जो मनमें निश्चय कर कहा है, मैं वही करूँगी।' सावित्रीका ऐसा निश्चययुक्त वचन सुनकर नारदजीने कहा—'राजन्! आपकी कन्याको यही अभीष्ट है तो इस कार्यमें शीघ्रता करनी चाहिये। आपका यह दान-कर्म निर्विघ्न सम्पन्न हो।' इस तरह कहकर नारदमुनि स्वर्ग चले गये और राजाने भी शुभ मुहूर्तमें सावित्रीका सत्यवान्से विवाह कर दिया। सावित्री भी मनोवाञ्छित पति प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। दोनों अपने आश्रममें सुखपूर्वक रहने लगे। परंतु नारदमुनिकी वाणी सावित्रीके हृदयमें खटकती रहती थी। जब वर्ष पूरा होनेको आया, तब सावित्रीने विचार किया कि अब मेरे पतिकी मृत्युका समय समीप आ गया है। यह सोचकर सावित्रीने भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीसे तीन रात्रिका व्रत[2] ग्रहण कर लिया और वह भगवती सावित्रीका जप, ध्यान, पूजन करती रही। उसे यह निश्चय था कि आजसे चौथे दिन सत्यवान्की मृत्यु होगी। सावित्रीने तीन दिन-रात नियमसे व्यतीत किये। चौथे दिन देवता-पितरोंको संतुष्ट कर उसने अपने ससुर और सासके चरणोंमें प्रणाम किया।

सत्यवान् वनसे काष्ठ लाया करता था। उस दिन भी वह काष्ठ लेनेके लिये जाने लगा। सावित्री भी उसके साथ जानेको उद्यत हो गयी। इसपर

१-सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः। सकृत् प्रदीयते कन्या त्रीण्येतानि सकृत्सकृत्॥ (उत्तरपर्व १०२। २९)

२-यह व्रत अन्य वचनोंके अनुसार ज्येष्ठ कृष्ण तथा शुक्ल द्वादशीसे पूर्णिमातक करनेकी परम्परा भी लोकमें प्रसिद्ध है।

सत्यवान्‌ने सावित्रीसे कहा—'वनमें जानेके लिये अपने सास-ससुरसे पूछ लो।' वह पूछने गयी। पहले तो सास-ससुरने मना किया, किंतु सावित्रीके बार-बार आग्रह करनेपर उन्होंने जानेकी आज्ञा दे दी। दोनों साथ-साथ वनमें गये। सत्यवान्‌ने वहाँ काष्ठ काटकर बोझ बाँधा, परंतु उसी समय उसके मस्तकमें महान् वेदना उत्पन्न हुई। उसने सावित्रीसे कहा—'प्रिये! मेरे सिरमें बहुत व्यथा है, इसलिये थोड़ी देर विश्राम करना चाहता हूँ।' सावित्री अपने पतिके सिरको अपनी गोदमें लेकर बैठ गयी। इतनेमें ही यमराज वहाँ आ गये। सावित्रीने उन्हें देखकर प्रणाम किया और कहा—'प्रभो! आप देवता, दैत्य, गन्धर्व आदिमेंसे कौन हैं? मेरे पास क्यों आये हैं?'

धर्मराजने कहा—सावित्री! मैं सम्पूर्ण लोकोंका नियमन करनेवाला हूँ। मेरा नाम यम है। तुम्हारे पतिकी आयु समाप्त हो गयी है, परंतु तुम पतिव्रता हो, इसलिये मेरे दूत इसको न ले जा सके। अतः मैं स्वयं ही यहाँ आया हूँ। इतना कहकर यमराजने सत्यवान्‌के शरीरसे अङ्गुष्ठमात्रके पुरुषको खींच लिया और उसे लेकर अपने लोकको चल पड़े। सावित्री भी उनके पीछे चल पड़ी। बहुत दूर जाकर यमराजने सावित्रीसे कहा—'पतिव्रते! अब तुम लौट जाओ। इस मार्गमें इतनी दूर कोई नहीं आ सकता।'

सावित्रीने कहा—महाराज! पतिके साथ आते हुए मुझे न तो ग्लानि हो रही है और न कुछ श्रम ही हो रहा है। मैं सुखपूर्वक चली आ रही हूँ। जिस प्रकार सज्जनोंकी गति संत हैं, वर्णाश्रमोंका आधार वेद है, शिष्योंका आधार गुरु और सभी प्राणियोंका आश्रय-स्थान पृथ्वी है, उसी प्रकार स्त्रियोंका एकमात्र आश्रय-स्थान उसका पति ही है अन्य कोई नहीं*।

इस प्रकार सावित्रीके धर्म और अर्थयुक्त वचनोंको सुनकर यमराज प्रसन्न होकर कहने लगे—'भामिनि! मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूँ, तुम्हें जो वर अभीष्ट हो वह माँग लो।' तब सावित्रीने विनयपूर्वक पाँच वर माँगे—(१) मेरे ससुरके नेत्र अच्छे हो जायँ और उन्हें राज्य मिल जाय। (२) मेरे पिताके सौ पुत्र हो जायँ। (३) मेरे भी सौ पुत्र हों। (४) मेरा पति दीर्घायु प्राप्त करे तथा (५) हमारी सदा धर्ममें दृढ़ श्रद्धा बनी रहे। धर्मराजने सावित्रीको ये सारे वर दे दिये और सत्यवान्‌को भी दे दिया। सावित्री प्रसन्नतापूर्वक अपने पतिको साथ लेकर आश्रममें आ गयी। भाद्रपदकी पूर्णिमाको जो उसने सावित्री-व्रत किया था, यह सब उसीका फल है।

युधिष्ठिरने पुनः कहा—भगवन्! अब आप सावित्री-व्रतकी विधि विस्तारपूर्वक बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! सौभाग्यकी इच्छावाली स्त्रीको भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको पवित्र होकर तीन दिनके लिये सावित्री-व्रतका नियम ग्रहण करना चाहिये। यदि तीन दिन उपवास रहनेकी शक्ति न हो तो त्रयोदशीको नक्तव्रत, चतुर्दशीको अयाचित-व्रत और पूर्णिमाको उपवास करे। सौभाग्यकी कामनावाली नारी नदी, तड़ाग आदिमें नित्य-स्नान करे और पूर्णिमाको सरसोंका उबटन लगाकर स्नान करे।

यथाशक्ति मिट्टी, सोने या चाँदीकी ब्रह्मासहित सावित्रीकी प्रतिमा बनाकर बाँसके एक पात्रमें स्थापित करे और दो रक्त वर्णके वस्त्रोंसे उसे आच्छादित करे। फिर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप,

* सतां सन्तो गतिर्नान्या स्त्रीणां भर्ता सदा गतिः। वेदो वर्णाश्रमाणां च शिष्याणां च गतिर्गुरुः॥
सर्वेषामेव जन्तूनां स्थानमस्ति महीतलम्। भर्तार एव मनुजस्त्रीणां नान्यः समाश्रयः॥ (उत्तरपर्व १०२। ५५-५६)

नैवेद्यसे पूजन करे। कूष्माण्ड, नारियल, ककड़ी, तुरई, खजूर, कैथ, अनार, जामुन, जम्बीर, नारंगी, अखरोट, कटहल, गुड़, लवण, जीरा, अंकुरित अन्न, सप्तधान्य तथा गलेका डोरा (सावित्री-सूत्र) आदि सब पदार्थ बाँसके पात्रमें रखकर सावित्रीदेवीको अर्पण कर दे। रात्रिके समय जागरण करे। गीत, वाद्य, नृत्य आदिका उत्सव करे। ब्राह्मण सावित्रीकी कथा कहें। इस प्रकार सारी रात्रि उत्सवपूर्वक व्यतीतकर प्रातः व्रती नारी सब सामग्रीसहित सावित्रीकी प्रतिमा श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मणको दान कर दे। यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराकर स्वयं भी हविष्यान्न-भोजन करे।

राजन्! इसी प्रकार ज्येष्ठ मासकी अमावास्याको वटवृक्षके नीचे काष्ठभारसहित सत्यवान् और महासती सावित्रीकी प्रतिमा स्थापित कर उनका विधिवत् पूजन करना चाहिये। रात्रिको जागरण आदि कर प्रातः वह प्रतिमा ब्राह्मणको दान कर दे। इस विधानसे जो स्त्रियाँ यह सावित्री-व्रत करती हैं, वे पुत्र-पौत्र-धन आदि पदार्थोंको प्राप्तकर चिर-कालतक पृथ्वीपर सब सुख भोगकर पतिके साथ ब्रह्मलोकको प्राप्त करती हैं। यह व्रत स्त्रियोंके लिये पुण्यवर्धक, पापहारक, दुःखप्रणाशक और धन प्रदान करनेवाला है। जो नारी भक्तिसे इस व्रतको करती है, वह सावित्रीकी भाँति दोनों कुलोंका उद्धार कर पतिसहित चिरकालतक सुख भोगती है। जो इस माहात्म्यको पढ़ते अथवा सुनते हैं, वे भी मनोवाञ्छित फल प्राप्त करते हैं।

(अध्याय १०२)

महाकार्तिकी-व्रतके प्रसंगमें रानी कलिंगभद्राका आख्यान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! पूर्वकालमें मध्य देशके वृषस्थल नामक स्थानमें महाराज दिलीपकी कलिंगभद्रा नामकी एक सर्वगुणसम्पन्ना महारानी थी। वह सदा ब्राह्मणोंको दान देती तथा देवार्चन करती रहती। एक समय उसने कार्तिक मासमें छः महीनेका कृत्तिका-व्रतका संकल्प लिया। वह प्रत्येक पारणामें नित्य पूजन, दान, ब्राह्मण-भोजन, हवन आदिमें तत्पर रहती। एक बार व्रतमें जब किंचित् कालावशेष था, तब वह रात्रिमें अपने पतिके साथ विश्राम कर रही थी। उसी समय अचानक एक भयंकर सर्पने उसे डँस लिया। फलस्वरूप उसके प्राण निकल गये और वह जन्मान्तरमें बकरी बनी, परंतु व्रतके प्रभावसे उसे अपने पूर्वजन्मकी स्मृति बनी हुई थी। उसने अपना कृत्तिका-व्रत फिर ग्रहण किया। वह अपने यूथसे अलग होकर उपवास करने लगी।

एक बार कार्तिक मासमें किसी दूसरेके खेतमें जब वह चर रही थी, तब उस खेतका स्वामी उसे पकड़कर अपने घर ले आया। जातिस्मर अत्रि ऋषिने उस बकरीको देखा और यह जान लिया कि यह रानी कलिंगभद्रा है। दयाकर उन्होंने उसे बन्धनसे मुक्त करा दिया। वहाँसे छूटकर उसने बेरके पत्ते खाकर शीतल जल पिया और कृत्तिका-व्रतका पारण किया। ऋषि अत्रि उसे योगज्ञानका उपदेश देकर अपने आश्रमको चले गये और वह योगेश्वरी अपने व्रतमें पुनः तत्पर हो गयी तथा कुछ कालके अनन्तर उसने योगबलसे अपने प्राण त्याग दिये। तदनन्तर वह गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्याके गर्भसे उत्पन्न हुई। उस समय उसका नाम योगलक्ष्मी हुआ। गौतममुनिने महर्षि शाण्डिल्यमुनिसे योगलक्ष्मीका विवाह कर दिया। वह भी शाण्डिल्यके घरमें सरस्वती, स्वाहा, शची, अरुन्धती, गौरी, राज्ञी, गायत्री, महालक्ष्मी तथा महासतीकी भाँति सुशोभित हुई। वह देवता, पितर

और अतिथियोंके सत्कारमें नित्य लगी रहती। ब्राह्मणोंको भोजन कराती।

एक दिन महर्षि वहाँ आये और उन्होंने योगबलसे सारा वृत्तान्त जान लिया और पूछा—'महाभागे योगलक्ष्मि! कृत्तिकाएँ कितनी हैं?' यह सुनकर महासती योगलक्ष्मीको भी पूर्ववृत्त स्मरण हो आया और उसने कहा—'महायोगिन्! कृत्तिकाएँ छः हैं।' यह सुनकर दयालु अत्रिमुनिने पुनः उसे मन्त्र और कृत्तिका-व्रतका उपदेश दिया, जिसके करनेसे उसने चिरकालतक संसारका सुख भोगकर मोक्ष प्राप्त कर लिया।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! कृत्तिका-व्रतकी क्या विधि है? इसे आप बतायें।

भगवान् कहने लगे—महाराज! कार्तिककी पूर्णिमाको कृत्तिका नक्षत्रमें बृहस्पति या सोमवार होनेपर महाकार्तिकीका योग होता है। महाकार्तिकी तो बहुत वर्षोंमें और बड़े पुण्यसे प्राप्त होती है। इसलिये साधारण कार्तिकी पूर्णिमाको भी उपवास करे। कार्तिकी पूर्णिमाको प्रातः ही दन्तधावन आदि कर नक्तव्रतका अथवा उपवासका नियम ग्रहण करे। पुष्कर, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, नैमिष, शालग्राम, कुशावर्त, मूलस्थान, सकुन्तल, गोकर्ण, अर्बुद, अमरकण्टक आदि किसी पवित्र तीर्थमें अथवा अपने घरमें ही स्नान करे। फिर देवता, ऋषि, पितर और अतिथिका पूजन कर हवन करे। सायंकालके समय घृत और दुग्धसे पूर्ण छः पात्रोंमें सुवर्ण, चाँदी, रत्न, नवनीत, अन्नकण तथा पिष्टसे छः कृत्तिकाओंकी मूर्ति बनाकर स्थापित करे। फिर उन्हें रक्तसूत्रसे आवेष्टित कर सिंदूर, कुंकुम, चन्दन, चमेलीके पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उनका पूजन कर कृत्तिकाओंकी मूर्तियोंको ब्राह्मणको दान कर दे। दान करते समय यह मन्त्र पढ़े—

ॐ सप्तर्षिदारा ह्यनलस्य वल्लभा
या ब्रह्मणा रक्षितयेति युक्ताः।
तुष्टाः कुमारस्य यथार्थमातरो
ममापि सुप्रीततरा भवन्तु॥

(उत्तरपर्व १०३। ३७)

ब्राह्मण भी मूर्ति ग्रहण करते समय इस प्रकार मन्त्रोच्चारण करे—

धर्मदाः कामदाः सन्तु इमा नक्षत्रमातरः।
कृत्तिका दुर्गसंसारात् तारयन्त्वावयोः कुलम्॥

(उत्तरपर्व १०३। ३९)

तदनन्तर ब्राह्मण सब सामग्री लेकर घर जाय और छः कदमतक यजमान उसके पीछे चले। इस प्रकार जो पुरुष कृत्तिका-व्रत करता है, वह सूर्यके समान प्रकाशमान विमानमें बैठकर नक्षत्रलोकमें जाता है। जो स्त्री इस व्रतको करती है, वह भी अपने पतिसहित नक्षत्रलोकमें जाकर बहुत कालतक दिव्य भोगोंका उपभोग करती है। (अध्याय १०३)

मनोरथपूर्णिमा तथा अशोकपूर्णिमाव्रत-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! फाल्गुनकी पूर्णिमासे संवत्सरपर्यन्त किया जानेवाला एक व्रत है, जो मनोरथपूर्णिमाके नामसे विख्यात है। इस व्रतके करनेसे व्रतीके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। व्रतीको चाहिये कि वह फाल्गुन मासकी पूर्णिमाको स्नान आदि कर लक्ष्मीसहित भगवान् जनार्दनका पूजन करे और चलते-फिरते, उठते-बैठते हर समय जनार्दनका स्मरण करता रहे और पाखण्ड, पतित, नास्तिक, चाण्डाल आदिसे सम्भाषण न करे, जितेन्द्रिय रहे। रात्रिके समय चन्द्रमामें नारायण और लक्ष्मीकी भावना कर अर्घ्य प्रदान करे। बादमें तैल एवं लवणरहित भोजन करे। इसी प्रकार चैत्र, वैशाख,

ज्येष्ठ—इन तीन महीनोंमें भी पूजन एवं अर्घ्य प्रदान कर व्रती प्रथम पारणा करे। आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन—इन चार महीनोंकी पूर्णिमाको श्रीसहित भगवान् श्रीधरका पूजन कर चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे और पूर्ववत् दूसरी पारणा करे। कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष तथा माघ—इन चार महीनोंमें भूतिसहित भगवान् केशवका पूजन कर चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे और तीसरी पारणा सम्पन्न करे। प्रत्येक पारणाके अन्तमें ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। प्रथम पारणाके चार महीनोंमें पञ्चगव्य, दूसरी पारणाके चार महीनोंमें कुशोदक और तीसरी पारणामें सूर्यकिरणोंसे तप्त जलका प्राशन करे। रात्रिके समय गीत-वाद्यद्वारा भगवान्‌का कीर्तन करे। प्रतिमास जलकुम्भ, जूता, छतरी, सुवर्ण, वस्त्र, भोजन और दक्षिणा ब्राह्मणको दान करे। देवताओंके स्वामी भगवान्‌की मार्गशीर्ष आदि बारह महीनोंमें क्रमशः केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर या हृषीकेश, राम, पद्मनाभ अथवा दामोदर और देवदेवेश—इन नामोंका कीर्तन करनेवाला व्यक्ति दुर्गतिसे उद्धार पा जाता है। यदि प्रतिमास दान देनेमें समर्थ न हो तो वर्षके अन्तमें यथाशक्ति सुवर्णका चन्द्रबिम्ब बनाकर फल, वस्त्र आदिसे उसका पूजन कर ब्राह्मणको निवेदित कर दे। इस प्रकार व्रत करनेवाले पुरुषको अनेक जन्मपर्यन्त इष्टका वियोग नहीं होता। उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं और वह पुरुष नारायणका स्मरण करता हुआ दिव्यलोक प्राप्त करता है।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज! अब मैं अशोकपूर्णिमा-व्रतका वर्णन करता हूँ। इस व्रतको करनेसे मनुष्यको कभी शोक नहीं होता। फाल्गुनकी पूर्णिमाको अङ्गोंमें मृत्तिका लगाकर नदी आदिमें स्नान करे। मृत्तिकाकी एक वेदी बनाकर उसपर भगवान् भूधर और अशोका नामसे धरणीदेवीका पुष्प, नैवेद्य आदि उपचारोंसे पूजन करे। पूजनके अनन्तर हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करे—'धरणीदेवि! आप सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को धारण करनेवाली हैं। आपको जिस प्रकार भगवान् जनार्दनने रसातलसे लाकर प्रतिष्ठित करके शोकरहित किया है, उसी प्रकार आप मुझे भी सभी शोकोंसे मुक्त कर दें और मेरी समस्त कामनाओंको पूर्ण करें। इस प्रकार प्रार्थना कर रात्रिमें चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे। उस दिन उपवास रखे अथवा रात्रिके समय तैल-क्षाररहित भोजन करे। फाल्गुन आदि चार-चार मासमें एक-एक पारणा करे और प्रत्येक पारणाके अन्तमें विशेष पूजा और जागरण करे। प्रथम पारणामें धरणी, द्वितीयमें मेदिनी और तृतीयमें वसुन्धरा नामसे पूजन करे। वर्षके अन्तमें सवत्सा गौ, भूमि, वस्त्र, आभूषण आदि ब्राह्मणोंको दान करे। यह व्रत पातालमें स्थित धरणीदेवीने किया था, तब भगवान्‌ने वाराह रूप धारण कर उनका उद्धार किया और प्रसन्न होकर कहा कि 'धरणीदेवि! तुम्हारे इस व्रतसे मैं परम संतुष्ट हूँ, जो कोई भी पुरुष-स्त्री भक्तिसे इस व्रतको करते हुए मेरा पूजन करेंगे और यथाविधि पारणा करेंगे, वे जन्म-जन्ममें सब प्रकारके क्लेशोंसे मुक्त हो जायँगे और तुम्हारे समान ही कल्याणके भाजन हो जायँगे।' (अध्याय १०४-१०५)

अनन्तव्रत-माहात्म्यमें कार्तवीर्यके आविर्भावका वृत्तान्त

राजा **युधिष्ठिरने कहा**—भगवन्! भक्तिपूर्वक नारायणकी आराधना करनेसे सभी मनोवाञ्छित फल प्राप्त हो जाते हैं, किंतु स्त्री-पुरुषोंके लिये संतानहीन होनेसे अधिक कोई दुःख और शोक नहीं है, परंतु कुपुत्रता तो और भी महान् दुःखका कारण है। योग्य संतान सब सुखोंका हेतु है। जगत्में वे धन्य हैं, जो सर्वगुणसम्पन्न, आरोग्य, बलवान्, धर्मज्ञ, शास्त्रवेत्ता, दीन-अनाथोंके आश्रय, भाग्यवान्, हृदयको आनन्द देनेवाले और दीर्घायु पुत्र प्राप्त करते हैं। प्रभो! मैं ऐसा व्रत सुनना चाहता हूँ कि जिसके करनेसे ऐसे शुभ लक्षणोंसे युक्त पुत्र उत्पन्न हों।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! इस सम्बन्धमें एक प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है। हैहयवंशमें माहिष्मती (महेश्वर) नगरीमें कृतवीर्य नामका एक महान् राजा हुआ। उसकी एक हजार रानियोंमें प्रधान तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न शीलधना नामकी एक रानी थी। उसने एक दिन पुत्र-प्राप्तिके लिये ब्रह्मवादिनी मैत्रेयीसे पूछा। मैत्रेयीने उसको श्रेष्ठ अनन्तव्रतका उपदेश दिया और कहा—'शीलधने! स्त्री या पुरुष जो कोई भी भगवान् जनार्दनकी आराधना करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। मार्गशीर्ष मासमें जिस दिन मृगशिरा नक्षत्र हो उस दिन स्नान कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदिसे अनन्तभगवान्के वाम चरणका पूजन करे और प्रार्थना कर एकाग्रचित्त हो बारम्बार प्रणाम कर ब्राह्मणको दक्षिणा दे। रात्रिके समय तैल-क्षारवर्जित भोजन करे। इसी विधिसे पौष मासमें पुष्य नक्षत्रमें भगवान्के बायें कटिप्रदेशका पूजन करे। माघ मासमें मघा नक्षत्रमें भगवान्की बायीं भुजाका पूजन करे। फाल्गुनमें फाल्गुनी नक्षत्रमें बायें स्कन्धका पूजन करे। इन चार महीनोंमें गोमूत्रका प्राशन करे और सुवर्णसहित तिल ब्राह्मणको दान दे।'

चैत्रमें चित्रा नक्षत्रमें भगवान्के दाहिने कन्धेका पूजन करे, वैशाखमें विशाखा नक्षत्रमें दाहिनी भुजाका पूजन करे, ज्येष्ठमें ज्येष्ठा नक्षत्रमें दाहिने कटिप्रदेशका पूजन करे। इसी प्रकार आषाढ़ मासमें आषाढ़ा नक्षत्रमें दाहिने पैरका पूजन करे। इन चार महीनोंमें पञ्चगव्यका प्राशन करे। ब्राह्मणको सुवर्ण-दान दे और रात्रिको भोजन करे।

श्रावण मासमें श्रवण नक्षत्रमें भगवान् विष्णुके दोनों चरणोंका पूजन करे। भाद्रपद मासमें उत्तराभाद्रपद नक्षत्रमें गुह्य-स्थानका पूजन करे। आश्विनमें अश्विनी नक्षत्रमें हृदयका पूजन करे और कार्तिक मासमें कृत्तिका नक्षत्रमें अनन्तभगवान्के सिरका पूजन करे। इन चार महीनोंमें घृतका प्राशन करे और घृत ही ब्राह्मणको दान दे।

मार्गशीर्ष आदि प्रथम चार मासोंमें घृतसे, द्वितीय चैत्र आदि चार मासोंमें शालिधान्यसे और तृतीय श्रावण आदि चार मासोंमें अनन्तभगवान्की प्रीतिके लिये दुग्धसे हवन करे। हविष्यान्नका भोजन करना सभी मासोंमें प्रशस्त माना गया है। इस प्रकार बारह महीनोंमें तीन पारणा कर वर्षके अन्तमें सुवर्णकी अनन्तभगवान्की मूर्ति और चाँदीके हल-मूसल बनाये। बादमें मूर्तिको ताम्रपीठपर स्थापित कर दोनों ओर हल, मूसल रखकर पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि उपचारोंसे पूजन करे। नक्षत्र, देवता, मास, संवत्सर और नक्षत्रोंके अधिपति चन्द्रमाका भी विधिपूर्वक पूजन करे। अनन्तर पुराणवेत्ता, धर्मज्ञ, शान्तप्रिय ब्राह्मणका वस्त्र-आभूषण आदिसे पूजन कर यह सब सामग्री उसे अर्पण कर दे और '**अनन्तः प्रीयताम्**' यह वाक्य कहे। पीछे अन्य ब्राह्मणोंको भी भोजन, दक्षिणा आदि देकर संतुष्ट

करे। इस विधिसे जो इस अनन्तव्रतको सम्पन्न करता है, वह सभी अभीष्ट फलोंको प्राप्त करता है। शीलधने! यदि तुम उत्तम पुत्रकी इच्छा रखती हो तो विधिपूर्वक श्रद्धासे इस अनन्तव्रतको करो।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! इस प्रकार मैत्रेयीसे उपदेश प्राप्त कर शीलधना भक्तिपूर्वक व्रत करने लगी। व्रतके प्रभावसे भगवान् अनन्त संतुष्ट हुए और उन्होंने उसे एक श्रेष्ठ पुत्र प्रदान किया। पुत्रके जन्म होते ही आकाश निर्मल हो गया। आनन्ददायक वायु प्रवाहित होने लगी। देवगण दुन्दुभि बजाने लगे। पुष्पवृष्टि होने लगी, सारे जगत्‌में मङ्गल होने लगा। गन्धर्व गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। सभी लोगोंका मन धर्ममें आसक्त हो गया। राजा कृतवीर्यने अपने पुत्रका नाम अर्जुन रखा। कृतवीर्यका पुत्र होनेसे वही अर्जुन कार्तवीर्य कहलाया। कार्तवीर्यार्जुनने कठिन तप किया और विष्णुभगवान्‌के अवतार श्रीदत्तात्रेयजीकी आराधना की। भगवान् दत्तात्रेयने यह वर दिया कि 'अर्जुन! तुम चक्रवर्ती सम्राट् होओगे। जो व्यक्ति सायंकाल और प्रातः '**नमोऽस्तु कार्तवीर्याय**' यह वाक्य उच्चारण करेगा, उसे प्रस्थभर तिल-दानका पुण्य प्राप्त होगा और जो तुम्हारा स्मरण करेंगे, उन पुरुषोंका द्रव्य कभी नष्ट नहीं होगा।' भगवान्‌से वर प्राप्त कर राजा कार्तवीर्य धर्मपूर्वक ससद्वीपा वसुमतीका पालन करने लगे। उन्होंने बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ सम्पन्न किये और शत्रुओंपर विजय प्राप्त की। इस तरह रानी शीलधनाने अनन्तव्रतके प्रभावसे अति उत्तम पुत्र प्राप्त किया, पिताको पुत्रजनित कोई भी दुःख नहीं हुआ। जो पुरुष अथवा स्त्री इस कार्तवीर्यके जन्मको श्रवण करते हैं, वे सात जन्मपर्यन्त संतानका दुःख प्राप्त नहीं करते। जो इस अनन्त-व्रतको भक्तिसे करता है, वह उत्तम संतान और ऐश्वर्यको प्राप्त करता है। (अध्याय १०६)

मास-नक्षत्र-व्रतके माहात्म्यमें साम्भरायणीकी कथा

राजा युधिष्ठिरने कहा—प्रभो! ऐश्वर्य आदिके प्राप्त न होनेसे इतना कष्ट नहीं होता, जितना प्राप्त होकर नष्ट हो जानेसे होता है। इसलिये आप ऐसा कोई व्रत बतायें, जिसके करनेसे ऐश्वर्य-भ्रंश और इष्ट-वियोग न हो।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! यह बड़ा भारी दुःख है कि प्राप्त हुए सुखका फिर नाश हो जाता है। इसके लिये श्रेष्ठ पुरुषोंको चाहिये कि वे बारह मासोंके बारह नक्षत्रोंमें भगवान् अच्युतकी विविध उपचारोंसे पूजा करें। इस नक्षत्र-व्रतको प्रथम कार्तिक मासकी कृत्तिकामें करना चाहिये। इसी प्रकार मार्गशीर्ष मासके मृगशिरा नक्षत्रमें, पौष मासके पुष्य नक्षत्रमें तथा माघ मासके मघा नक्षत्रमें करना चाहिये। कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष तथा माघ—इन चार महीनोंमें खिचड़ीका भोग लगाये और यही ब्राह्मणको भोजन भी कराये। फाल्गुन आदि चार महीनोंके नक्षत्रोंमें संयाव (गोझिया)-का नैवेद्य लगाये और आषाढ़ आदि चार महीनोंके नक्षत्रोंमें पायसका नैवेद्य लगाये। पञ्चगव्यका प्राशन करे और भक्तिसे नारायणका अर्चन कर इस प्रकार प्रार्थना करे—

नमो नमस्तेऽच्युत मे क्षयोऽस्तु पापस्य वृद्धिं समुपैतु पुण्यम्।
ऐश्वर्यवित्तादि तथाऽक्षयं मे क्षयं च मा संततिरभ्युपैतु॥
यथाच्युतस्त्वं परतः परस्मात् स ब्रह्मभूतः परतः परात्मा।
तथाच्युतं मे कुरु वाञ्छितं त्वं हरस्व पापं च तथाप्रमेय॥
अच्युतानन्त गोविन्द प्रसीद यदभीप्सितम्।
तदक्षयममेयात्मन् कुरुष्व पुरुषोत्तम॥

(उत्तरपर्व १०७। १२—१४)

'अच्युत! आपको बार-बार नमस्कार है। मेरे पापोंका नाश हो जाय, पुण्यकी वृद्धि हो, मेरे ऐश्वर्य, वित्त आदि अक्षय हों तथा मेरी संतति कभी नष्ट न हो। जिस प्रकारसे आप परसे परे ब्रह्मभूत और उससे भी परे अच्युत परमात्मा हैं, उसी प्रकार आप मुझे अच्युत कर दें। अप्रमेय! आप मेरे पापोंको नष्ट कर दें। पुरुषोत्तम! अच्युत, अनन्त, गोविन्द, अमेयात्मन्! मेरी समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करें, मेरे ऊपर आप प्रसन्न हों।'

अनन्तर रात्रिके समय भगवान्‌का प्रसाद ग्रहण करे। वर्ष पूरा होनेपर जब भगवान् अच्युत जग जायँ, तब घृतपूर्ण ताम्रपात्र और दक्षिणा ब्राह्मणको देकर '**अच्युतः प्रीयताम्**' यह वाक्य कहे। इस प्रकार सात वर्षतक नक्षत्र-व्रत करके सुवर्णकी अच्युतकी प्रतिमा बनवाकर स्थापित करे और उसके सामने भगवान्‌की परम भक्ता और पतिव्रता साम्भरायणी ब्राह्मणीकी चाँदीकी मूर्ति बनाकर स्थापित करे। फिर उन दोनोंकी गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे पूजा कर क्षमा-प्रार्थना करे और सब सामग्री ब्राह्मणको दान कर दे। इस विधिसे जो श्रद्धापूर्वक व्रत करता है और भगवान् अच्युतका पूजन करता है, उसके धन, संतति, ऐश्वर्य आदिका कभी क्षय नहीं होता। उसकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। अतः मनुष्यको चाहिये कि सर्वथा अक्षय होनेके लिये इस मास-नक्षत्र-व्रतका पालन करे।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आपने साम्भरायणीकी प्रतिमा बनाकर पूजन करनेको कहा है, ये साम्भरायणीदेवी कौन हैं? आप इसे बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! ऐसा सुना जाता है कि स्वर्गमें साम्भरायणी नामकी एक तपोधना कठिन व्रतोंका आचरण करनेवाली प्रख्यात सिद्धा नारी थी, जो देवताओंकी भी शंकाओंका समाधान कर देती थी। एक समय देवराज इन्द्रने देवगुरु बृहस्पतिसे पूछा—'भगवन्! हमारे पहले जितने इन्द्र हो गये हैं, उनका क्या आचरण और चरित्र था, आप कृपाकर इसका वर्णन कीजिये।'

देवगुरु बृहस्पति बोले—'देवेन्द्र! सब इन्द्रोंका वृत्तान्त तो मुझे नहीं मालूम, केवल अपने समयमें हुए इन्द्रोंके विषयमें मुझे जानकारी है।' इन्द्रने कहा—'गुरो! आपके बिना हम यह वृत्तान्त किससे पूछें।' बृहस्पति कुछ काल विचारकर कहने लगे—'पुरन्दर! इस विषयको तपस्विनी धर्मज्ञा साम्भरायणी- देवीसे ही पूछो।' यह सुनकर बृहस्पतिको साथ लेकर देवराज इन्द्र साम्भरायणीके पास गये। साम्भरायणीने बड़े सत्कारसे उनको बैठाया और अर्घ्यादिसे पूजन कर विनयपूर्वक आगमनका प्रयोजन पूछा। इसपर बृहस्पतिजी बोले—'साम्भरायणि! देवराज इन्द्रको प्राचीन वृत्तान्त सुननेका बड़ा कौतूहल है। यदि आप विगत इन्द्रोंका चरित्र जानती हों तो उसे बतायें।'

साम्भरायणी बोली—'देवगुरो! जितने इन्द्र हो चुके हैं, सबका वृत्तान्त मैं अच्छी तरह जानती हूँ। मैंने बहुत-से मनुओं, देवसृष्टियों और सप्तर्षियोंको देखा है। मनुपुत्रोंको भी जानती हूँ और सब मन्वन्तरोंका चरित्र मुझे ज्ञात है। जो आप पूछें, वही मैं बताऊँगी। साम्भरायणीका यह वचन सुनकर देवराज इन्द्र और देवगुरु बृहस्पतिने स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष आदि मनुओं, मन्वन्तरों और व्यतीत इन्द्रोंका वृत्तान्त उससे पूछा। साम्भरायणीने सम्पूर्ण वृत्तान्तोंका यथावत् वर्णन किया। राजन्! उसने एक अत्यन्त आश्चर्यकी बात यह बतलायी कि पूर्वकालमें शंकुकर्ण नामका एक बड़ा प्रतापी दैत्य हुआ। वह लोकपालोंको जीतकर स्वर्गमें इन्द्रको जीतने आया और निर्भय

हो इन्द्रके भवनमें प्रविष्ट हो गया। शंकुकर्णको देखकर इन्द्र भयभीत होकर छिप गये और वह इन्द्रके आसनपर बैठ गया। उसी समय देवताओंके साथ विष्णु भी वहाँ आये। भगवान्‌को देखकर शंकुकर्ण अत्यन्त प्रसन्न हो गया और उसने बड़े स्नेहसे भगवान्‌का आलिङ्गन किया। भगवान् उसकी नियतको समझ रहे थे, अतः उन्होंने भी उसका आलिङ्गन कर ऐसा निष्पीडन किया कि उसके सब अस्थिपञ्जर चूर-चूर हो गये और वह घोर शब्द करता हुआ मृत्युको प्राप्त हो गया। दैत्यको मरा जानकर इन्द्र भी उपस्थित हो गये और विष्णुभगवान्‌की स्तुति करने लगे।'

साम्भरायणीने पुनः कहा—देवराज! यह वृत्तान्त मैंने अपने नेत्रोंसे देखा था।

इन्द्रने साम्भरायणीसे पूछा—देवि! इतने प्राचीन वृत्तान्तको आप कैसे जानती हैं?

साम्भरायणीने कहा—देवेन्द्र! स्वर्गका कोई ऐसा वृत्तान्त नहीं है, जो मैं न जानती होऊँ।

इन्द्रने पूछा—धर्मज्ञे! आपने ऐसा कौन-सा सत्कर्म किया है, जिसके प्रभावसे आपको अक्षय स्वर्ग प्राप्त हुआ?

साम्भरायणी बोली—मैंने प्रतिमास मास-नक्षत्रोंमें सात वर्षपर्यन्त भगवान् अच्युतका विधिवत् पूजन और उपवास किया है। यह सब उसी पुण्य-कर्मका फल है। जो पुरुष अक्षय स्वर्गवास, इन्द्रपद, ऐश्वर्य, संतति आदिकी इच्छा करे, उसे अवश्य ही भगवान् विष्णुकी आराधना करनी चाहिये। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पदार्थ भगवान् विष्णुकी आराधनासे प्राप्त होते हैं। इतना सुनकर देवगुरु बृहस्पति और देवराज इन्द्र साम्भरायणीपर बहुत प्रसन्न हुए और दोनों भक्तिपूर्वक उसके द्वारा बताये गये मास-नक्षत्र-व्रतका पालन करने लगे।

(अध्याय १०७)

वैष्णव एवं शैव नक्षत्रपुरुष-व्रतोंका विधान

राजा युधिष्ठिरने पूछा—यदुसत्तम! पुरुष और स्त्रियोंको उत्तम रूप किस कर्मके करनेसे प्राप्त होता है? आप सर्वाङ्गसुन्दर श्रेष्ठ रूपकी प्राप्तिका उपाय बताइये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! यही बात अरुन्धती वसिष्ठजीसे पूछी थीं और महर्षि वसिष्ठने उनसे कहा था—'प्रिये! विष्णुभगवान्‌की बिना आराधना और पूजन किये उत्तम रूप प्राप्त नहीं हो सकता। जो पुरुष अथवा स्त्री उत्तम रूप, ऐश्वर्य और संतानकी अभिलाषा करे, उसे नक्षत्रपुरुषरूप भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये।' इसपर अरुन्धतीने नक्षत्रपुरुष-व्रतका विधान पूछा। वसिष्ठजीने कहा—'प्रिये! चैत्र मासमें लेकर भगवान्‌के पाद आदि अङ्गोंका उपवासपूर्वक पूजन करे। स्नानादिसे पवित्र होकर नक्षत्रपुरुषरूपी भगवान् विष्णुकी प्रतिमा बनाकर उनके पादसे सिरतकके अङ्गोंका इस विधिसे पूजन करे। मूल नक्षत्रमें दोनों पैर, रोहिणी नक्षत्रमें दोनों जंघा, अश्विनीमें दोनों घुटनों, आषाढमें दोनों ऊरुओं, दोनों फाल्गुनीमें गुह्यस्थान, कृत्तिकामें कटिप्रदेश, दोनों भाद्रपदाओंमें पार्श्वभाग और टखना, रेवतीमें दोनों कुक्षि, अनुराधामें वक्षःस्थल, धनिष्ठामें पीठ, विशाखामें दोनों भुजाएँ, हस्तमें दोनों हाथ, पुनर्वसुमें अंगुली, आश्लेषामें नख, ज्येष्ठामें ग्रीवा, श्रवणमें कर्ण, पुष्यमें मुख, स्वातीमें दाँत, शतभिषामें मुख, मघामें नासिका, मृगशिरामें नेत्र, चित्रामें ललाट, भरणीमें सिर और आर्द्रामें केशोंका पूजन करे। उपवासके दिन

तैलाभ्यङ्ग न करे। नक्षत्रके देवताओं और नक्षत्रराज चन्द्रमाका भी प्रति नक्षत्रमें पूजन करे और विद्वान् ब्राह्मणको भोजन कराये। यदि व्रतमें अशौच आदि हो जाय तो दूसरे नक्षत्रमें उपवास कर पूजन करे। इस प्रकार माघ मासमें व्रत पूरा हो जानेपर उद्यापन करे। अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णका नक्षत्रपुरुष बनाकर उसे अलंकृत करे, एक उत्तम शय्यापर प्रतिमा स्थापित करे और ब्राह्मण-दम्पतिको शय्यापर बैठाकर वस्त्राभूषण आदिसे उनका पूजन कर सप्तधान्य, सवत्सा गौ, छतरी, जूता, घृतपात्र और दक्षिणासहित वह नक्षत्रपुरुषकी प्रतिमा उन्हें दान कर दे। श्रद्धापूर्वक इस व्रतके करनेसे सर्वाङ्गसुन्दर रूप, मनकी प्रसन्नता, आरोग्य, उत्तम संतान, मधुर वाणी और जन्म-जन्मान्तरतक अखण्ड ऐश्वर्य प्राप्त होता है और सभी पाप निवृत्त हो जाते हैं। इतनी कथा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'महाराज! इस प्रकार नक्षत्रपुरुष-व्रतका विधान वसिष्ठजीने अरुन्धतीको बतलाया। वही मैंने आपको सुनाया। जो इस विधिसे नक्षत्ररूप भगवान्का पूजन करते हैं, वे अवश्य ही उत्तम रूप पाते हैं।'

राजा युधिष्ठिरने पुनः पूछा—भगवन्! शिवभक्तोंके कल्याणके लिये आप शैवनक्षत्रपुरुष-व्रतका विधान बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! शैवनक्षत्र-पुरुष-व्रतके दिन भगवान् शंकरके अङ्गोंका पूजन और उपवास अथवा नक्तव्रत करना चाहिये। फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षसें जब हस्त नक्षत्र हो, उस दिनसे शैवनक्षत्रपुरुष-व्रतका नियम ग्रहण करना चाहिये और रातमें भगवान् शिवका पूजन करना चाहिये। हस्त आदि सत्ताईस नक्षत्रोंमें भगवान् शंकरके सत्ताईस नामोंसे उनके चरणसे लेकर सिरतककी क्रमशः अङ्ग-पूजा करनी चाहिये। रात्रिके समय तैल-क्षाररहित भोजन करे। प्रतिनक्षत्रमें सेरभर शालि-चावल और घृतपात्र ब्राह्मणको प्रदान करे। दो नक्षत्र एक दिन हो जायँ तो दो अङ्गोंका दो नामोंसे एक ही दिन पूजन करे। इस प्रकार व्रतकर पारणामें ब्राह्मणोंको भोजन, दक्षिणा आदिसे संतुष्ट करना चाहिये। सुवर्णकी शिव-पार्वतीकी प्रतिमा बनाकर उसे उत्तम शय्यापर स्थापित करे। बादमें सभी उपचारोंसे पूजनकर कपिला गौ, बर्तन, छत्र, चामर, दर्पण, जूता, वस्त्र, आभूषण, अनुलेपन आदिसहित वह प्रतिमा ब्राह्मणको निवेदित कर दे। बादमें प्रदक्षिणा कर विसर्जन करे और शय्या, गौ आदि सब सामग्री ब्राह्मणके घर पहुँचा दे। महाराज! दुश्शील, दाम्भिक, कुतार्किक, निन्दक, लोभी आदिको यह व्रत नहीं बताना चाहिये। शान्त-स्वभाव, सद्गुणी, शिवभक्त इस व्रतके अधिकारी हैं। इस व्रतके करनेसे महापातक भी निर्वृत्त हो जाते हैं। जो स्त्री पतिकी आज्ञा प्राप्त कर इस व्रतको सम्पन्न करती है, उसे कभी इष्ट-वियोग नहीं होता। जो इस व्रतके माहात्म्यको पढ़ता अथवा श्रवण करता है, उसके भी पितरोंका नरकसे उद्धार हो जाता है।

(अध्याय १०८-१०९)

भग्न-व्रतकी प्रायश्चित्त-विधि तथा पण्यस्त्री-व्रत

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! यदि मनुष्य नक्षत्रपुरुष-व्रतको ग्रहण कर उसे न कर सके तो किस कर्मके द्वारा वह चीर्ण (कृत) माना जाता है, इसे बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! यह अत्यन्त रहस्यपूर्ण बात है। आपके आग्रहसे मैं इसे बतला रहा हूँ। अनेक प्रकारके उपद्रव, मद, मोह या असावधानी आदिसे यदि व्रत-भग्न हो जायँ तो उनकी पूर्णताके लिये यह व्रत करना चाहिये। इस व्रतके करनेसे खण्डित-व्रत पूर्ण फल देनेवाले हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं। जिस देवी-देवताका व्रत-भग्न हो जाय, उसकी सुवर्ण अथवा चाँदीकी प्रतिमा बनाकर उस व्रतके दिन ब्राह्मणको बुलाकर प्रतिमाको पञ्चामृतसे स्नान कराये, बादमें जलपूर्ण कलशके ऊपर प्रतिमाको प्रतिष्ठितकर गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, वस्त्र, आभूषण तथा नैवेद्य आदिसे उनका पूजन करे। अनन्तर देवताके उद्देश्यसे नाममन्त्र (**ॐ अमुक देवाय नमः**) द्वारा अर्घ्य प्रदान करे तथा फिर व्रतकी पूर्णता एवं व्रत-भङ्गदोषकी निवृत्तिके लिये इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे और भगवान्‌की शरण ग्रहण करे—

उपसन्नस्य दीनस्य प्रायश्चित्तकृताञ्जलेः।
शरणं च प्रपन्नस्य कुरुष्वाद्य दयां प्रभो॥
परत्र भयभीतस्य भग्नखण्डव्रतस्य च।
कुरु प्रसादं सम्पूर्णं व्रतं सम्पूर्णमस्तु मे॥
तपश्छिद्रं व्रतच्छिद्रं यच्छिद्रं भग्नके व्रते।
तव प्रसादाद्देवेश सर्वमच्छिद्रमस्तु नः॥

(उत्तरपर्व ११०। १३—१५)

तात्पर्य यह है कि 'प्रभो! मैं आपकी शरण हूँ, मुझपर आप दया करें। किसी भी प्रकारसे मेरे द्वारा किये गये व्रत, तप इत्यादि कर्मोंमें जो कोई भी त्रुटि, अपराध एवं च्युति हो गयी हो, हे देवदेवेश! आपके अनुग्रहसे वे सब दोष दूर हो जायँ और मेरा व्रत पूर्ण हो जाय। आपको नमस्कार है।'

तदनन्तर दिक्पालोंको अर्घ्य प्रदान कर मुख्य देवताकी अङ्ग-पूजा करे और अन्तमें फिर प्रार्थना करे। ब्राह्मणका पूजन करे और ब्राह्मण भी व्रतकी पूर्णताके लिये इस प्रकार आशीर्वाद प्रदान करे—

वाक्सम्पूर्णं मनः पूर्णं पूर्णं कायव्रतेन ते।
सम्पूर्णस्य प्रसादेन भव पूर्णमनोरथः॥
ब्राह्मणा यत्प्रभाषन्ते ह्यनुमोदन्ति देवताः।
सर्वदेवमया विप्रा नैतद्वचनमन्यथा॥
जलधिः क्षारतां नीतः पावकः सर्वभक्षताम्।
सहस्रनेत्रः शक्रोऽपि कृतो विप्रैर्महात्मभिः॥
ब्राह्मणानां तु वचनाद् ब्रह्महत्या प्रणश्यति।
अश्वमेधफलं साग्रं प्राप्यते नात्र संशयः॥
व्यासवाल्मीकिवचनाद् ब्राह्मणवचनाच्च गर्गगौतम-
पराशरधौम्याङ्गिरसवसिष्ठनारदादिमुनिवचनात् सम्पूर्णं भवतु ते व्रतम्॥ (उत्तरपर्व ११०। २३—२७)

यजमान भी ब्राह्मणको बिदा कर सब सामग्री उसके घर भेज दे। पीछे पञ्चयज्ञ कर भोजन करे। इस सम्पूर्ण व्रतको जो एक बार भी भक्तिसे करता है, वह खण्डित-व्रतका सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लेता है और व्रत-भग्नके पापसे मुक्त हो जाता है। इस व्रतको जो करता है, वह धन, रूप, आरोग्य, कीर्ति आदि प्राप्त कर सौ वर्षपर्यन्त भूमिपर सुख भोगकर स्वर्ग प्राप्त करता है और अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है। महाराज! प्रायश्चित्तरूप इस सम्पूर्ण व्रतको प्रसन्न हो महर्षि गर्गजीने मुझे बताया था और बाल्यावस्थामें मैंने भी इसे किया था। इसलिये राजन्! आप भी इस व्रतको करें, जिससे जन्मान्तरोंमें भी किये खण्डित व्रत पूर्ण हो जायँ।

राजन्! इसी प्रकार एक अन्य पण्यस्त्री-व्रत

है, जो रविवारको हस्त, पुष्य अथवा पुनर्वसु नक्षत्र आनेपर प्रारम्भ किया जाता है तथा उसमें विधिपूर्वक विष्णुस्वरूप कामदेवका पूजन किया जाता है, अन्तमें सभी उपकरणोंसे युक्त शय्या तथा विष्णुप्रतिमा ब्राह्मणको दान कर दी जाती है। व्रती स्त्रीको चाहिये कि वह सदाचारके नियमोंका पालन करती रहे। इस व्रतके करनेसे पण्यस्त्रियों-जैसी अधम स्त्रियोंका भी उद्धार हो जाता है।

(अध्याय ११०-१११)

वृन्ताक-त्याग एवं ग्रह-नक्षत्र-व्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं वृन्ताक (बैगन)-के त्यागकी विधि बता रहा हूँ। व्रतीको चाहिये कि एक वर्ष, छः मास अथवा तीन मास वृन्ताकका त्याग कर उद्यापन करे। उसके बाद संकल्पपूर्वक भरणी अथवा मघा नक्षत्रमें उपवासकर एक स्थण्डिल बनाकर उसपर अक्षत-पुष्पोंसे यमराजका तथा उनके परिकरोंका आवाहन कर गन्ध, पुष्प, नैवेद्य आदि उपचारोंसे यम, काल, नील, चित्रगुप्त, वैवस्वत, मृत्यु तथा परमेष्ठी—इन पृथक्-पृथक् नामोंसे विधिपूर्वक पूजन करे। तदनन्तर अग्निस्थापन कर तिल और घीसे इन्हीं नाम-मन्त्रोंके द्वारा हवन करे। तदनन्तर स्विष्टकृत् एवं प्रायश्चित्त होम करे। आभूषण, वस्त्र, छाता, जूता, काला कम्बल, काला बैल, काली गाय और दक्षिणाके साथ सोनेका बना हुआ वृन्ताक ब्राह्मणको दान कर दे और अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मण-भोजन कराये। ऐसा करनेसे पौण्डरीक-यज्ञका फल प्राप्त होता है। साथ ही व्रतीको सात जन्मतक यमका दर्शन नहीं करना पड़ता और वह दीर्घ समयतक स्वर्गमें समादृत होकर निवास करता है।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज! अब मैं ग्रह-नक्षत्र-व्रतकी विधि बतलाता हूँ, जिसके करनेसे सभी क्रूर ग्रह शान्त हो जाते हैं और लक्ष्मी, धृति, तुष्टि तथा पुष्टिकी प्राप्ति होती है। जिस रविवारको हस्त नक्षत्र हो उस दिन भगवान् सूर्यका पूजन कर नक्तव्रत करना चाहिये। इस नक्तव्रतको सात रविवारतक भक्तिपूर्वक करके अन्तमें भगवान् सूर्यकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर ताम्रपात्रमें स्थापित करे। फिर उसे घीसे स्नान कराकर रक्त चन्दन, रक्त पुष्प, रक्त वस्त्र, धूप, दीप आदिसे पूजनकर लड्डूका भोग लगाये। जूता, छाता, दो लाल वस्त्र और दक्षिणाके साथ वह प्रतिमा ब्राह्मणको दे। इस व्रतको करनेसे आरोग्य, सम्पत्ति और संतानकी प्राप्ति होती है।

चित्रा नक्षत्रसे युक्त सोमवारसे आरम्भ कर सात सोमवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें चन्द्रमाकी चाँदीकी प्रतिमा बनाकर, चाँदी अथवा काँसेके पात्रमें स्थापित कर श्वेत पुष्प, श्वेत वस्त्र आदिसे उनका पूजन करे। दध्योदनका भोग लगाकर जूता, छाता तथा दक्षिणासहित वह मूर्ति ब्राह्मणको प्रदान करे। यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराये, इससे चन्द्रमा प्रसन्न होते हैं। उनके प्रसन्न होनेसे दूसरे सभी ग्रह प्रसन्न हो जाते हैं।

स्वाती नक्षत्रसे युक्त भौमवारसे आरम्भ कर सात भौमवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें सुवर्णकी भौमकी प्रतिमा बनाकर ताम्रपात्रमें स्थापित कर रक्त चन्दन, रक्त वस्त्र आदिसे पूजनकर घीयुक्त कसारका भोग लगाकर सब सामग्री ब्राह्मणको दे। इसी प्रकार विशाखायुक्त बुधवारको बुधका पूजन कर उद्यापनमें स्वर्णमयी बुधकी प्रतिमा ब्राह्मणको प्रदान कर दे। अनुराधा नक्षत्रसे युक्त बृहस्पतिवारके दिनसे सात बृहस्पतिवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें

सुवर्णकी देवगुरु बृहस्पतिकी मूर्ति बनाकर सुवर्णपात्रमें स्थापित करे। तदनन्तर गन्ध, पीत पुष्प, पीत वस्त्र, यज्ञोपवीत आदिसे उनकी पूजा करके खाँड़का भोग लगाकर सब सामग्री एवं मूर्ति ब्राह्मणको प्रदान कर दे। इसी प्रकार ज्येष्ठायुक्त शुक्रवारको व्रतका आरम्भ कर सात शुक्रवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें सुवर्णकी शुक्रकी प्रतिमा बनाकर चाँदी अथवा बाँसके पात्रमें स्थापित कर श्वेत चन्दन, श्वेत वस्त्र आदिसे पूजनकर घी और पायसका भोग लगाये। सब पदार्थ एवं प्रतिमा ब्राह्मणको प्रदान करे।

इसी विधिसे मूल नक्षत्रयुक्त शनिवारसे आरम्भ कर सात शनिवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें शनि, राहु और केतुका पूजन करना चाहिये और तिल तथा घीसे ग्रहोंके नाम-मन्त्रोंसे हवन करके नवग्रहोंकी समिधाओंसे प्रत्येक ग्रहको क्रमसे एक सौ आठ अथवा अट्ठाईस बार आहुति दे। शनैश्चर आदिकी प्रतिमा लौह अथवा सुवर्णकी बनाये। कृशरान्नका भोग लगाकर सब सामग्रीसहित वे प्रतिमाएँ ब्राह्मणको प्रदान कर दे। इससे सभी ग्रहोंकी पीड़ा शान्त हो जाती है। इस व्रतको विधिपूर्वक करनेसे क्रूर ग्रह भी सौम्य एवं अनुकूल हो जाते हैं और उसे शान्ति प्रदान करते हैं। (अध्याय ११२-११३)

शनैश्चर-व्रतके प्रसंगमें महामुनि पिप्पलादका आख्यान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! एक बार त्रेतायुगमें अनावृष्टिके कारण भयंकर दुर्भिक्ष पड़ गया। उस घोर अकालमें कौशिकमुनि अपनी स्त्री तथा पुत्रोंके साथ अपना निवास-स्थान छोड़कर दूसरे प्रदेशमें निवास करने निकल पड़े। कुटुम्बका भरण-पोषण दूभर हो जानेके कारण बड़े कष्टसे उन्होंने अपने एक बालकको मार्गमें ही छोड़ दिया। वह बालक अकेला भूख-प्याससे तड़पता हुआ रोने लगा। उसे अकस्मात् एक पीपलका वृक्ष दिखायी पड़ा। उसके समीप ही एक बावड़ी भी थी। बालकने पीपलके फलोंको खाकर ठंडा जल पी लिया और अपनेको स्वस्थ पाकर वह वहीं कठिन तपस्या करने लगा तथा नित्यप्रति पीपलके फलोंको खाकर समय व्यतीत करने लगा। अचानक वहाँ एक दिन देवर्षि नारद पधारे, उन्हें देखकर बालकने प्रणाम किया और आदरपूर्वक बैठाया। दयालु नारदजी उसकी अवस्था, विनय और नम्रताको देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने बालकका मौञ्जीबन्धन आदि सब संस्कार कर पद-क्रम-रहस्यसहित वेदका अध्ययन कराया तथा साथ ही द्वादशाक्षर वैष्णवमन्त्र (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**)-का उपदेश दिया।

अब वह प्रतिदिन विष्णुभगवान्का ध्यान और मन्त्रका जप करने लगा। नारदजी भी वहीं रहे। थोड़े समयमें ही बालकके तपसे संतुष्ट होकर भगवान् विष्णु गरुड़पर सवार हो वहाँ पहुँचे। देवर्षि नारदके वचनसे बालकने उन्हें पहचान लिया, तब उसने भगवान्में दृढ़ भक्तिकी माँग की। भगवान्ने प्रसन्न होकर ज्ञान और योगका उपदेश प्रदान किया और अपनेमें भक्तिका आशीर्वाद देकर वे अन्तर्धान हो गये। भगवान्के उपदेशसे वह बालक महाज्ञानी महर्षि हो गया।

एक दिन बालकने नारदजीसे पूछा—'महाराज! यह किस कर्मका फल है जो मुझे इतना कष्ट उठाना पड़ा। इतनी छोटी अवस्थामें भी मैं क्यों ग्रहोंद्वारा पीड़ित हो रहा हूँ। मेरे माता-पिताका कुछ भी पता नहीं, वे कहाँ हैं। फिर भी मैं अत्यन्त कष्टसे जी रहा हूँ। द्विजोत्तम! सौभाग्यवश आपने दया करके मेरा संस्कार किया और मुझे ब्राह्मणत्व प्रदान किया।' नारदजी यह वचन सुनकर बोले—

'बालक! शनैश्चरग्रहने तुम्हें बहुत पीड़ा पहुँचायी और आज यह सम्पूर्ण देश उसके मन्दगतिसे चलनेके कारण उत्पीड़ित है। देखो, वह अभिमानी शनैश्चर-ग्रह आकाशमें प्रज्वलित दिखायी पड़ रहा है।'

यह सुनकर बालक क्रोधसे अग्निके समान उद्दीप्त हो उठा। उसने उग्र दृष्टिसे देखकर शनैश्चरको आकाशसे भूमिपर गिरा दिया। शनैश्चर एक पर्वतपर गिरे और उनका पैर टूट गया, जिससे वे पंगु हो गये। देवर्षि नारद भूमिपर गिरे हुए शनैश्चरको देखकर अत्यन्त प्रसन्नतासे नाच उठे। उन्होंने सभी देवताओंको बुलाया। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, अग्नि आदि देवता वहाँ आये और नारदजीने शनैश्चरकी दुर्गति सबको दिखायी।

ब्रह्माजीने बालकसे कहा—महाभाग! तुमने पीपलके फल भक्षण कर कठिन तप किया है। अतः नारदजीने तुम्हारा पिप्पलाद[1] नाम उचित ही रखा है। तुम आजसे इसी नामसे संसारमें विख्यात होओगे। जो कोई भी शनिवारको तुम्हारा भक्तिभावसे पूजन करेंगे अथवा 'पिप्पलाद' इस नामका स्मरण करेंगे, उन्हें सात जन्मतक शनिकी पीड़ा नहीं सहन करनी पड़ेगी और वे पुत्र-पौत्रसे युक्त होंगे। अब तुम शनैश्चरको पूर्ववत् आकाशमें स्थापित कर दो; क्योंकि इनका वस्तुतः कोई अपराध नहीं है। ग्रहोंकी पीड़ासे छुटकारा पानेके लिये नैवेद्य निवेदन, हवन, नमस्कार आदि करना चाहिये। ग्रहोंका अनादर नहीं करना चाहिये। पूजित होनेपर ये शान्ति प्रदान करते हैं[2]।

शनिकी ग्रहजन्य पीड़ाकी निवृत्तिके लिये शनिवारको स्वयं तैलाभ्यङ्ग करके ब्राह्मणोंको भी अभ्यङ्गके लिये तैल देना चाहिये। शनिकी लौह-प्रतिमा बनाकर तैलयुक्त लौह-पात्रमें रखकर एक वर्षतक प्रति शनिवारको पूजन करनेके बाद कृष्ण पुष्प, दो कृष्ण वस्त्र, कसार, तिल, भात आदिसे उनका पूजन कर काली गाय, काला कम्बल, तिलका तेल और दक्षिणासहित सब पदार्थ ब्राह्मणको प्रदान करना चाहिये। पूजन आदिमें शनिके इस मन्त्रका प्रयोग करना चाहिये—

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्त्रवन्तु नः॥ (यजु० ३६। १२)

राज्य नष्ट हुए राजा नलको शनिदेवने स्वप्नमें अपने एक प्रार्थना-मन्त्रका उपदेश दिया था। उसी नाम-स्तुतिसे उन्हें पुनः राज्य उपलब्ध हुआ था। उस स्तुतिसे शनिकी प्रार्थना करनी चाहिये। सर्वकामप्रद वह स्तुति इस प्रकार है—

क्रोडं नीलाञ्जनप्रख्यं नीलवर्णसमस्त्रजम्।
छायामार्तण्डसम्भूतं नमस्यामि शनैश्चरम्॥
नमोऽर्कपुत्राय शनैश्चराय
नीहारवर्णाञ्जनमेचकाय ।
श्रुत्वा रहस्यं भवकामदश्च
फलप्रदो मे भव सूर्यपुत्र॥
नमोऽस्तु प्रेतराजाय कृष्णदेहाय वै नमः।
शनैश्चराय क्रूराय शुद्धबुद्धिप्रदायिने॥

१-यहाँ यह कथा बड़ी सुन्दर है। इसके पढ़नेसे शनिग्रहकी पीड़ा भी शान्त हो जाती है। ये महर्षि अथर्वण पैप्पलादसंहिताके द्रष्टा हैं। इनकी कथा प्रायः अनेक व्रत-माहात्म्य एवं स्कन्द आदि पुराणोंमें मिलती है। पर अन्तर यह है कि अन्यत्र सर्वत्र इन्हें दधीचि ऋषिका पुत्र बताया गया है। माताके नाममें भी थोड़ा अन्तर है, कहीं प्रातिथेयीका और कहीं सुवर्चाका नाम मिलता है, जो पतिके साथ सती हो गयी थीं। तब ये पीपलके द्वारा पालित हुए। सभी कथाएँ बड़ी पुण्यप्रद एवं शनि-पीड़ाको शान्त करनेवाली हैं। अन्तर कल्पभेदका है, अतः संदेह नहीं करना चाहिये।

२-चरन्वृक्षं शनैरेष शुभाशुभफलप्रदः। हतसाध्या ग्रहाश्चैते न भवन्ति कदाचन॥
बलिहोमनमस्कारैः शान्तिं यच्छन्ति पूजिताः। अतोऽर्थमस्य दिवसे स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम्॥ (उत्तरपर्व ११४। २९-३०)
इसी भावके श्लोक याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियोंमें भी आये हैं।

य एभिर्नामभिः स्तौति तस्य तुष्टो भवाम्यहम्।
मदीयं तु भयं तस्य स्वप्नेऽपि न भविष्यति॥

(उत्तरपर्व ११४। ३९—४२)

जो भी व्यक्ति प्रत्येक शनिवारको एक वर्षतक इस व्रतको करता है और इस विधिसे उद्यापन करता है, उसे कभी शनिकी पीड़ा नहीं भोगनी पड़ती। यह कहकर ब्रह्माजी सभी देवताओंके साथ अपने परमधामको चले गये और पिप्पलादमुनिने भी ब्रह्माजीके आज्ञानुसार शनैश्चरको उनके स्थानपर प्रतिष्ठित कर दिया। महामुनि पिप्पलादने शनिग्रहकी इस प्रकार प्रार्थना की—

कोणस्थः पिङ्गलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रोऽन्तको यमः।
सौरिः शनैश्चरो मन्दः प्रीयतां मे ग्रहोत्तमः॥

(उत्तरपर्व ११४। ४७)

जो व्यक्ति शनैश्चरोपाख्यानको भक्तिपूर्वक सुनता है तथा शनिकी लौह-प्रतिमा बनाकर तेलसे भरे हुए लौह-कलशमें रखकर ब्राह्मणको दक्षिणासहित दान देता है, उसको कभी भी शनिकी पीड़ा नहीं होती।

(अध्याय ११४)

आदित्यवार नक्त-व्रत तथा संक्रान्ति-व्रतके उद्यापनकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवान् गोविन्द! आप कोई ऐसा व्रत बतलाइये, जो सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला, आरोग्यदायक और अनन्त फलप्रद हो।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! परब्रह्म विश्वात्मा जो परम सनातन धाम है, वह संसारमें सूर्य, अग्नि तथा चन्द्र—इन तीनोंमें विभक्त होकर स्थित है। कुरुनन्दन! उस परमात्माकी आराधना कर मनुष्य क्या नहीं प्राप्त कर सकता? इसलिये रविवारके दिन नक्तव्रत करना चाहिये। भगवान् सूर्यमें अनन्य भक्ति रखकर आदित्यवारको यह व्रत करना चाहिये। ब्राह्मणोंकी विधिवत् पूजा कर सायंकाल रक्त चन्दनसे एक द्वादशदल कमलकी रचना करे और उसके द्वादशदलोंमें सूर्य, दिवाकर, विवस्वान्, भग, वरुण, महेन्द्र, आदित्य, शान्त, सूर्यके अश्व, यम, मार्तण्ड तथा रविकी स्थापना करे और उनका पूजन कर तिल, रक्त चन्दन, फल तथा अक्षतसे युक्त अर्घ्य प्रदान करे। अनन्तर विसर्जन कर दे। रात्रिमें भगवान् भास्करका स्मरण करता हुआ तैलरहित भोजन करे। व्रतके पूर्व दिन शनिवारको तैलाभ्यङ्ग न करे। इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त व्रत करके उद्यापन करे और यथाशक्ति गुड़से पूर्ण एक ताम्रपात्रमें स्वर्णकमल स्थापित करे तथा उसके ऊपर स्वर्णमयी भगवान् सूर्यकी द्विभुज प्रतिमा स्थापित करे, साथ ही एक सुवर्णमयी सवत्सा गौ भी स्थापित करे। इनका पूजन कर विद्वान् ब्राह्मणको यह सब सामग्री निवेदित कर दे।

इस प्रकार जो स्त्री-पुरुष इस व्रतको वर्षभर सम्पन्न कर विधिपूर्वक उद्यापन करते हैं, वे नीरोग, धार्मिक, धन-धान्य, पुत्र-पौत्रसे सम्पन्न हो जाते हैं और अन्तमें सूर्यलोकको प्राप्त करते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—राजन्! अब मैं संक्रान्तिके समय किये जानेवाले उद्यापनरूप अन्य व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जो इस लोकमें समस्त कामनाओंके फलका प्रदाता और परलोकमें अक्षय फलदायक है। सूर्यके उत्तरायण या दक्षिणायनके दिन अथवा विषुवयोगमें इस संक्रान्ति-व्रतका आरम्भ करना चाहिये। इस व्रतमें संक्रान्तिके पहले दिन एक बार भोजन करके (रात्रिमें शयन करे।) संक्रान्तिके दिन प्रातःकाल दातून करनेके पश्चात् तिलमिश्रित जलसे स्नान करना चाहिये। सूर्य-संक्रान्तिके दिन भूमिपर चन्दनसे कर्णिकासहित अष्टदल कमलकी रचना करे और उसपर सूर्यका

आवाहन करे। कर्णिकामें '**सूर्याय नमः**', पूर्वदलपर '**आदित्याय नमः**', अग्निकोणस्थित दलपर '**सप्तार्चिषे नमः**', दक्षिणदलपर '**ऋङ्मण्डलाय नमः**', नैर्ऋत्यकोणवाले दलपर '**सवित्रे नमः**', पश्चिमदलपर '**वरुणाय नमः**', वायव्यकोणस्थित दलपर '**सप्तसप्तये नमः**', उत्तरदलपर '**मार्तण्डाय नमः**' और ईशानकोणवाले दलपर '**विष्णवे नमः**'—इन मन्त्रोंसे सूर्यदेवको स्थापित कर उनकी बार-बार अर्चना करे। तत्पश्चात् वेदीपर भी चन्दन, पुष्पमाला, फल और खाद्य पदार्थोंसे उनकी पूजा करनी चाहिये और अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। पुनः अपनी शक्तिके अनुसार सोनेका कमल बनवाकर उसे घृतपूर्ण पात्र और कलशके साथ ब्राह्मणको दान कर दे। तत्पश्चात् चन्दन और पुष्पयुक्त जलसे भूमिपर सूर्यदेवको अर्घ्य प्रदान करे (अर्घ्यका मन्त्रार्थ इस प्रकार है—) 'अनन्त! आप ही विश्व हैं, विश्व आपका स्वरूप है, आप विश्वमें सर्वाधिक तेजस्वी, स्वयं उत्पन्न होनेवाले, धाता और ऋग्वेद, सामवेद एवं यजुर्वेदके स्वामी हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है।' इस विधिसे मनुष्यको प्रत्येक मासमें सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये अथवा (यदि ऐसा करनेमें असमर्थ हो तो) वर्षकी समाप्तिके दिन यह सारा कार्य बारह बार करे (दोनोंका फल समान ही है)।

एक वर्ष व्यतीत होनेपर घृतमिश्रित खीरसे अग्नि और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भलीभाँति संतुष्ट करे तथा बारह गौ एवं रत्नसहित स्वर्णमय कमलके साथ कलशोंको दान कर दे। इसी प्रकार सोने, चाँदी अथवा ताँबेकी शेषनागसहित पृथ्वीकी प्रतिमा बनवाकर दान करना चाहिये। जो ऐसा करनेमें असमर्थ हों, वे आटेकी शेषसहित पृथ्वीकी प्रतिमा बनाकर स्वर्णनिर्मित सूर्यके साथ दान कर सकता है। जबतक इस मृत्युलोकमें महेन्द्र आदि देवगणों, हिमालय आदि पर्वतों और सातों समुद्रोंसे युक्त पृथ्वीका अस्तित्व है, तबतक स्वर्गलोकमें अखिल गन्धर्वसमूह उस व्रतीकी भलीभाँति पूजा करते हैं। पुण्य क्षीण होनेपर वह सृष्टिके आदिमें उत्तम कुल और शीलसे सम्पन्न होकर भूतलपर सातों द्वीपोंका अधीश्वर होता है। वह सुन्दर रूप और सुन्दर पत्नीसे युक्त होता है, बहुत-से पुत्र एवं भाई-बन्धु उसके चरणोंकी वन्दना करते हैं। इस प्रकार जो मनुष्य सूर्य-संक्रान्तिकी इस पुण्यमयी अखिल विधिको भक्तिपूर्वक पढ़ता या श्रवण करता है अथवा इसे करनेकी सम्मति देता है, वह भी इन्द्रलोकमें देवताओंद्वारा पूजित होता है।

(अध्याय ११५-११६)

भद्राका चरित्र एवं उसके व्रतकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! लोकमें भद्रा विष्टि नामसे प्रसिद्ध है, वह कैसी है, कौन है, वह किसकी पुत्री है, उसका पूजन किस विधिसे किया जाता है? कृपया आप बतानेका कष्ट करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! भद्रा भगवान् सूर्यनारायणकी कन्या है। यह भगवान् सूर्यकी पत्नी छायासे उत्पन्न है और शनैश्चरकी सगी बहिन है। वह काले वर्ण, लम्बे केश, बड़े-बड़े दाँत और बहुत ही भयंकर रूपवाली है। जन्मते ही वह संसारका ग्रास करनेके लिये दौड़ी, यज्ञोंमें विघ्न-बाधा पहुँचाने लगी और उत्सवों तथा मङ्गल-यात्रा आदिमें उपद्रव करने लगी और पूरे जगत्को पीड़ा पहुँचाने लगी। उसके उच्छृङ्खल स्वभावको देखकर भगवान् सूर्य अत्यन्त चिन्तित हो उठे और उन्होंने शीघ्र ही उसका विवाह करनेका विचार किया। जब जिस-जिस भी देवता, असुर,

किन्नर आदिसे सूर्यनारायणने विवाहका प्रस्ताव रखा, तब उस भयंकर कन्यासे कोई भी विवाह करनेको तैयार न हुआ। दु:खित हो सूर्यनारायणने अपनी कन्याके विवाहके लिये मण्डप बनवाया, पर उसने मण्डप-तोरण आदि सबको उखाड़कर फेंक दिया और सभी लोगोंको कष्ट देने लगी। सूर्यनारायणने सोचा कि इस दुष्टा, कुरूपा, स्वेच्छाचारिणी कन्याका विवाह किसके साथ किया जाय। इसी समय प्रजाके दु:खको देखकर ब्रह्माजीने भी सूर्यके पास आकर उनकी कन्याद्वारा किये गये दुष्कर्मोंको बतलाया। यह सुनकर सूर्यनारायणने कहा—'ब्रह्मन्! आप ही तो इस संसारके कर्ता तथा भर्ता हैं, फिर आप मुझसे ऐसा क्यों कह रहे हैं। जो भी आप उचित समझें वही करें।' सूर्यनारायणका ऐसा वचन सुनकर ब्रह्माजीने विष्टिको बुलाकर कहा—'भद्रे! वव, बालव, कौलव आदि करणोंके अन्तमें तुम निवास करो और जो व्यक्ति यात्रा, प्रवेश, माङ्गल्य कृत्य, खेती, व्यापार, उद्योग आदि कार्य तुम्हारे समयमें करे, उन्हींमें तुम विघ्न करो। तीन दिनतक किसी प्रकारकी बाधा न डालो। चौथे दिनके आधे भागमें देवता और असुर तुम्हारी पूजा करेंगे। जो तुम्हारा आदर न करें उनका कार्य तुम ध्वस्त कर देना।' इस प्रकार विष्टिको उपदेश देकर ब्रह्माजी अपने धामको चले गये, इधर विष्टि भी देवता, दैत्य, मनुष्य सब प्राणियोंको कष्ट देती हुई घूमने लगी। महाराज! इस तरहसे भद्राकी उत्पत्ति हुई और वह अति दुष्ट प्रकृतिकी है, इसलिये माङ्गलिक कार्योंमें उसका अवश्य त्याग करना चाहिये।

भद्रा पाँच घड़ी मुखमें, दो घड़ी कण्ठमें, ग्यारह घड़ी हृदयमें, चार घड़ी नाभिमें, पाँच घड़ी कटिमें और तीन घड़ी पुच्छमें स्थित रहती है। जब भद्रा मुखमें रहती है तब कार्यका नाश होता है, कण्ठमें धनका नाश, हृदयमें प्राणका नाश, नाभिमें कलह, कटिमें अर्थभ्रंश होता है, पर पुच्छमें निश्चितरूपसे विजय एवं कार्य-सिद्धि हो जाती है[१]।

भद्राके बारह नाम हैं—(१) धन्या, (२) दधिमुखी, (३) भद्रा, (४) महामारी, (५) खराननना, (६) कालरात्रि, (७) महारुद्रा, (८) विष्टि, (९) कुलपुत्रिका, (१०) भैरवी, (११) महाकाली तथा (१२) असुरक्षयकरी।

इन बारह नामोंका प्रात:काल उठकर जो स्मरण करता है, उसे किसी भी व्याधिका भय नहीं होता। रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है और सभी ग्रह अनुकूल हो जाते हैं। उसके कार्योंमें कोई विघ्न नहीं होता। युद्धमें तथा राजकुलमें वह विजय प्राप्त करता है[२]। जो विधिपूर्वक नित्य विष्टिका पूजन करता है, नि:संदेह उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। अब मैं भद्राके व्रतकी विधि बता रहा हूँ—

राजन्! जिस दिन भद्रा हो उस दिन उपवास करना चाहिये। यदि रात्रिके समय भद्रा हो तो दो दिनतक एकभुक्त व्रत करना चाहिये। एक प्रहरके बाद भद्रा हो तो तीन प्रहरतक उपवास करना चाहिये अथवा एकभुक्त रहना चाहिये। स्त्री अथवा

१-मुखे तु घटिका: पञ्च द्वे कण्ठे तु सदा स्थिते। हृदि चैकादश प्रोक्ताश्चतस्रो नाभिमण्डले॥
कट्यां पञ्चैव विज्ञेयास्तिस्र: पुच्छे जयावहा: । मुखे कार्यविनाशाय ग्रीवायां धननाशिनी॥
हृदि प्राणहरा ज्ञेया नाभ्यां तु कलहावहा । कट्यामर्थपरिभ्रंशो विष्टिपुच्छे ध्रुवो जय:॥
(उत्तरपर्व ११७। २३—२५)

२-धन्या दधिमुखी भद्रा महामारीखराननना। कालरात्रिर्महारुद्रा विष्टिश्च कुलपुत्रिका॥
भैरवी च महाकाली असुराणां क्षयंकरी । द्वादशैव तु नामानि प्रातरुत्थाय य: पठेत्॥
न च व्याधिर्भवेत् तस्य रोगी रोगात्प्रमुच्यते । ग्रहा: सर्वेऽनुकूला: स्युर्न च विघ्नादि जायते॥
रणे राजकुले द्यूते सर्वत्र विजयी भवेत्॥ (उत्तरपर्व ११७। २७—३०)

पुरुष व्रतके दिन सुगन्ध आमलक लगाकर सर्वौषधि-युक्त जलसे स्नान करे अथवा नदी आदिपर जाकर विधिपूर्वक स्नान करे। देवता एवं पितरोंका तर्पण तथा पूजन कर कुशाकी भद्राकी मूर्ति बनाये और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उसकी पूजा करे। भद्राके बारह नामोंसे एक सौ आठ बार हवन करनेके बाद तिल और पायस ब्राह्मणको भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर तिलमिश्रित कृशरान्नका भोजन करना चाहिये। फिर पूजनके अन्तमें इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

छायासूर्यसुते देवि विष्टिरिष्टार्थदायिनि।
पूजितासि यथाशक्त्या भद्रे भद्रप्रदा भव॥

(उत्तरपर्व ११७। ३९)

इस प्रकार सत्रह भद्राव्रत कर अन्तमें उद्यापन करे। लोहेकी पीठपर भद्राकी मूर्तिको स्थापित कर काला वस्त्र पहनाकर गन्ध, पुष्प आदिसे पूजन कर प्रार्थना करे। लोहा, तैल, तिल, बछड़ासहित काली गाय, काला कम्बल और यथाशक्ति दक्षिणाके साथ वह मूर्ति ब्राह्मणको दान कर देना चाहिये और विसर्जन करना चाहिये। इस विधिसे जो भी व्यक्ति भद्राव्रत और व्रतका उद्यापन करता है, उसके किसी भी कार्यमें विघ्न नहीं पड़ता। भद्राव्रत करनेवाले व्यक्तिको प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी तथा ग्रह आदि कष्ट नहीं देते। उसका इष्टसे वियोग नहीं होता और अन्तमें उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है*। (अध्याय ११७)

महर्षि अगस्त्यकी कथा और उनके अर्घ्य-दानकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! अब आप सभी पापोंको दूर करनेवाले अगस्त्यमुनिके चरित्र, अर्घ्य-दानकी विधि और अगस्त्योदय-कालका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! एक बार देवश्रेष्ठ मित्र और वरुण दोनों मन्दराचलपर कठिन तपस्या कर रहे थे। उनकी तपस्यामें बाधा डालनेके लिये इन्द्रने उर्वशी अप्सराको भेजा। उसे देखकर दोनों क्षुब्ध हो उठे। अपने मनके विकारको जानकर उन्होंने अपना तेज एक कुम्भमें स्थापित कर दिया। राजा निमिके शापसे उसी कुम्भसे प्रथम महर्षि वसिष्ठका अनन्तर दिव्य तपोधन महात्मा अगस्त्यका प्रादुर्भाव हुआ।

अगस्त्यमुनिका विवाह लोपामुद्रासे हुआ। अनन्तर विप्रोंसे घिरे हुए अगस्त्यमुनि अपनी पत्नीके साथ रहकर मलयपर्वतके एक प्रदेशमें वैखानस-विधिके अनुसार अत्यन्त कठोर तप करने लगे। वे बहुत कालतक तपस्या करते रहे, उसी समय बड़े ही दुराचारी और ब्राह्मणोंद्वारा किये जा रहे यज्ञोंका विध्वंस करनेवाले दो दैत्य जिनका नाम इल्वल और वातापि था, वहाँ उपस्थित हुए। ये दोनों बड़े ही मायावी थे। इन दोनोंका प्रतिदिनका कार्य यह था कि एक भाई मेष बनकर विविध प्रकारके भोजनोंका रूप धारण कर लेता और दूसरा भाई श्राद्धमें भोजन करने-हेतु ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देकर बुलाता और भोजन कराता। भोजन कर लेनेके तुरंत बाद ही इल्वल अपने भाईका नाम लेकर पुकारता। दैत्यकी पुकार सुनते ही उसका दूसरा भाई ब्राह्मणोंके पेटको चीरता हुआ बाहर निकल जाता

* भद्राके विषयमें ज्योतिष-ग्रन्थोंमें विस्तारसे वर्णन मिलता है, विशेषकर मुहूर्त-चिन्तामणिकी पीयूषधारा व्याख्यामें। पञ्चाङ्गोंकी यह व्यापक वस्तु है। यह प्रायः प्रत्येक द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, द्वादशी और त्रयोदशीको लगी रहती है। इसका पूरा समय प्रायः २४ घंटेका होता है। इस अध्यायमें उसके रहस्यको ठीकसे समझानेका प्रयत्न किया गया है और उसकी शान्तिका भी उपाय बतलाया है।

था। इस प्रकार उन दोनों दैत्योंने अनेक ब्राह्मणों तथा मुनियोंको मार डाला।

एक दिनकी बात है, इल्वलने भृगुवंशमें उत्पन्न ब्राह्मणोंके साथ अगस्त्यमुनिको भोजनके लिये आमन्त्रित किया। भोजनके समय अगस्त्यमुनिने इल्वलके द्वारा बनाया गया भोजन सारा-का-सारा खा डाला, पर मुनि निर्विकार होकर शुद्ध हो गये थे। इल्वलने पूर्वरीतिसे अपने भाई वातापिको पुकारकर कहा—'भाई! अब क्यों विलम्ब कर रहे हो, मुनिके शरीरको चीरकर बाहर आ जाओ।' इसपर अगस्त्यमुनिने कहा—'अरे दुष्ट दैत्य! तुम्हारा भाई वातापि तो उदरमें ही भस्म होकर समाप्त हो गया, अब वह बाहर कहाँसे आयेगा। यह सुनकर इल्वल बहुत ही क्रुद्ध हो उठा, परंतु अगस्त्यमुनिने उसको भी अपनी क्रुद्ध दृष्टिसे जलाकर भस्म कर डाला। उन दोनों दैत्योंके मारे जानेपर शेष दैत्य भी मुनिके वैरको स्मरण करते हुए भयभीत होकर समुद्रमें जाकर छिप गये। वे रात्रिके समय समुद्रसे बाहर निकलकर मुनियोंका भक्षण करते, यज्ञपात्र फोड़ डालते और पुनः समुद्रमें जाकर छिप जाते। दैत्योंके इस प्रकारके उत्पातको देखकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र आदि सभी देवता आपसमें विचारकर महर्षि अगस्त्यजीके पास आकर बोले—'ब्रह्मर्षे! आप समुद्रके जलको सोख लीजिये।' यह सुनकर अगस्त्यजीने अपनेमें आग्नेयी धारणाका अवधान कर समुद्रके जलका पान कर लिया। समुद्रके सूख जानेपर देवताओंने उन सभी दैत्योंका संहार कर डाला।

इस प्रकार महर्षि अगस्त्यने इस संसारको निष्कण्टक कर दिया। उसके बाद गङ्गाजीके जलसे समुद्र पुनः भर गया। तब देवता और दैत्योंने मिलकर मन्दराचल पर्वतको मथानी तथा नागराज वासुकिको रस्सी बनाकर समुद्रका मन्थन किया। उस समय समुद्रसे चन्द्रमा, लक्ष्मी, अमृत, कौस्तुभमणि, ऐरावत हाथी आदि उत्तम-उत्तम रत्न निकले। समुद्रसे ही अति भयंकर कालकूट विष भी निकला, जिसके गन्धमात्रसे ही देवता और दैत्य सभी मूर्च्छित होने लगे। इस कालकूट विषका कुछ भाग भगवान् शंकरने पान कर लिया। जिससे वे नीलकण्ठ कहलाये, तब ब्रह्माजीने कहा कि 'भगवान् शंकरके अतिरिक्त संसारमें ऐसा किसीमें सामर्थ्य नहीं है, जो इस शेष विषका पान करे, अतः देवगणो! आप सब दक्षिण दिशामें लङ्काके समीप निवास करनेवाले अगस्त्यमुनिके पास जायँ, वे हमलोगोंके शरणदाता हैं। ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर सभी देवता अगस्त्यमुनिके पास गये। मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने सबको भयभीत पाकर उन्हें यह आश्वासन दिया कि मैं उस विषको अपने तपोबलके प्रभावसे हिमालय पर्वतमें प्रविष्ट कर दूँगा। तब महर्षि अगस्त्यजीके तपोबलके प्रभावसे वही विष हिमालयके शिखरों, निकुञ्जों तथा वृक्षोंमें बिखर गया और शेष बचे हुए विषको धतूर, अर्क आदि वृक्षोंमें उन्होंने बाँट दिया। उसी हिमालय पर्वतके विषसे युक्त वायुके प्रभावसे प्राणियोंमें अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं, जिससे प्राणियोंको कष्ट सहन करना पड़ता है। उस विषयुक्त वायुका प्रभाव वृषकी संक्रान्तिसे लेकर सिंह-संक्रान्तितक बना रहता है। बादमें उसका वेग शान्त हो जाता है। इस प्रकार कालकूट विषके विनाशकारी प्रभावसे अगस्त्यमुनिने समस्त प्राणियोंकी रक्षा की।'

पूर्वकालमें प्रजाकी बहुत वृद्धि हुई। उस समय ब्रह्माजीने अपने शरीरसे मृत्युको उत्पन्न किया और मृत्युने प्रजाका भयंकर विनाश किया। एक दिन वह मृत्यु अगस्त्यमुनिके समीप भी आयी। अगस्त्यजीने क्रोधभरी दृष्टिसे मृत्युको तत्काल

भस्म कर दिया। पुनः ब्रह्माजीको दूसरी व्याधिरूप मृत्युकी उत्पत्ति करनी पड़ी।

दण्डकारण्यमें श्वेत नामक एक राजा रहता था, स्वर्ग जानेपर भी वह प्रतिदिन क्षुधाके कारण अपने मांसको ही खाकर कष्ट भोग रहा था। एक दिन दुःखी हो राजाने अगस्त्यमुनिसे कहा—'महाराज! सभी वस्तुओंका दान तो मैंने किया है, परंतु अन्न और जलका दान मैं नहीं कर सका और न मैंने श्राद्ध ही किया। इसलिये मुझे इस रूपमें प्रतिदिन अपना ही मांस खाना पड़ रहा है। प्रभो! आप दया करके कोई उपाय कीजिये, जिससे कि मुझे इस विपत्तिसे छुटकारा प्राप्त हो।' राजाद्वारा इस प्रकार दीन वचन सुनकर अगस्त्यमुनि दयार्द्र हो उठे और उन्होंने रत्नोंद्वारा श्राद्ध कराया। श्राद्धके फलस्वरूप सहसा वह दिव्य देह धारणकर स्वर्गलोकमें दिव्य भोग भोगने लगा।

एक बार विन्ध्याचल पर्वतके हृदयमें यह प्रश्न उठा कि सूर्यनारायण मेरुपर्वतकी परिक्रमा तो करते हैं, पर मेरी नहीं करते। क्यों न मैं उनका मार्ग रोक दूँ। मनमें यह निश्चय कर विन्ध्यगिरि प्रतिदिन बढ़ने लगा। विन्ध्याचलको बढ़ते हुए देखकर सभी देवता व्याकुल हो उठे और उन्होंने अगस्त्यमुनिके पास जाकर निवेदन किया—'प्रभो! आप कृपाकर सूर्यके मार्गको अवरुद्ध करनेवाले उस विन्ध्यगिरिको रोकें और उसे स्थिर कर दें।' देवताओंका विनययुक्त वचन सुनकर अगस्त्यजीने विन्ध्याचल पर्वतके पास पहुँचकर कहा—'पर्वतोत्तम! मैं तीर्थयात्रा करने जा रहा हूँ, तुम थोड़ा नीचे हो जाओ तो उस पार चला जाऊँ।' मुनिकी आज्ञासे विन्ध्याचल नीचा हो गया। अगस्त्यमुनिने पर्वतको लाँघकर कहा—'जबतक मैं तीर्थयात्रासे वापस नहीं आ जाता, तबतक तुम इसी स्थितिमें रहना।' इतना कहकर अगस्त्यमुनि दक्षिण दिशाको चले गये और फिर वापस नहीं लौटे। आज भी आकाशमें दक्षिण दिशामें देदीप्यमान हो रहे हैं और लोपामुद्राके साथ महर्षि अगस्त्यकी यह त्रिलोकी वन्दना करता है।

एक समयकी बात है, अपनी पत्नी लोपामुद्राकी इच्छापर अगस्त्यजीने कुबेरको बुलाकर आनन्दके सभी ऐश्वर्य महल, शय्या, वस्त्राभूषण आदि उन्हें उपलब्ध करा दिये और लोपामुद्राके साथ अगस्त्यजी बहुत समयतक आनन्दित होते रहे।

राजन्! इस प्रकार अगस्त्यमुनिके अनेक अद्भुत दिव्य चरित्र हैं। आप भी भगवान् अगस्त्यके लिये अर्घ्य प्रदान करें, इससे आपको महान् पुण्य प्राप्त होगा। उनके अर्घ्य-दानकी विधि इस प्रकार है—

जब कन्या राशिमें सूर्यके सात अंश (५।२२) शेष रहते हैं, उसी दिन महर्षि अगस्त्यका पूर्वमें उदय होता है, उसी समय उनके निमित्त अर्घ्य देना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि प्रातः श्वेत तिलोंसे स्नानकर श्वेत वस्त्र, श्वेत पुष्पोंकी माला आदिसे विभूषित होकर पञ्चरत्नसहित एक सुवर्ण कलश स्थापित करे। उसके ऊपर अनेक प्रकारके भोज्य पदार्थ और सप्तधान्यसहित घीका पात्र रखे। उसके ऊपर जटाधारी, हाथमें कमण्डलु धारण किये हुए, शिष्योंके साथ अगस्त्यमुनिकी स्वर्ण-प्रतिमा बनाकर स्थापित करना चाहिये। तत्पश्चात् श्वेत चन्दन, चमेलीके पुष्प, उत्तम धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उनकी पूजा करनेके बाद अर्घ्य देना चाहिये। खजूर, नारियल, कूष्माण्ड, खीरा, ककड़ी, कर्कोटक, आरवेल्ल, बीजपूर (बिजौरा), बैगन, अनार, नारंगी, केला, कुशा, काश, दूर्वाके अंकुर, नीलकमल तथा अंकुरित अन्न—यह सभी सामग्री एक बाँसके पात्रमें रखकर सुवर्ण, चाँदी अथवा ताँबेका अर्घ्यपात्र नम्र हो सिरसे लगाकर प्रसन्न-चित्तसे जानुओंको पृथ्वीपर टेककर

दक्षिणाभिमुख हो इन मन्त्रोंसे भक्तिपूर्वक भगवान् अगस्त्यको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये—

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते॥
विन्ध्यवृद्धिक्षयकर मेघतोयविषापह।
रत्नवल्लभ देवर्षे लङ्कावास नमोऽस्तु ते॥
वातापिर्भक्षितो येन समुद्राः शोषिताः पुरा।
लोपामुद्रापतिः श्रीमान् योऽसौ तस्मै नमो नमः॥
येनोदितेन पापानि प्रलयं यान्ति व्याधयः।
तस्मै नमोऽस्त्वगस्त्याय सशिष्याय सुपुत्रिणे॥

(उत्तरपर्व ११८। ६९—७२)

'देवर्षे! आपका वर्ण काश-पुष्पके समान है, आप अग्नि और मरुत्‌से उद्भूत हैं। मित्रावरुणके पुत्र कुम्भयोने! आपको नमस्कार है। आप वृष्टिमें अमृतका संचार करनेवाले हैं, आपने बढ़ते हुए विन्ध्यगिरिको निवृत्त किया था और आप दक्षिण दिशामें निवास करते हैं, आपको नमस्कार है। आपने वातापि राक्षसको भस्म कर दिया तथा समुद्रको सोख लिया, लोपामुद्राके पति भगवान् अगस्त्य! आपको बार-बार नमस्कार है। आपके उदय होनेपर सारी व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं, शिष्यों और पुत्रोंके साथ भगवन्! आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार अर्घ्य प्रदान कर वह प्रतिमा विद्वान् श्रेष्ठ ब्राह्मणको दानमें दे दे।

किसी एक फल अथवा धान्य आदिका एक वर्षतक त्याग करे। इस विधिसे यदि ब्राह्मण सात वर्षतक अर्घ्य दे तो चारों वेदोंका ज्ञाता और सभी शास्त्रोंका मर्मज्ञ हो जाता है। क्षत्रिय समस्त पृथ्वीको जीतकर राजा बनता है। वैश्य धन-धान्य तथा पशुओं एवं समृद्धिको प्राप्त करता है तथा शूद्र धन, सम्मान, आरोग्य प्राप्त करता है और स्त्रियोंको सौभाग्य, ऋद्धि-वृद्धि तथा पुत्रकी प्राप्ति होती है। विधवाको अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है, कन्याको श्रेष्ठ पति प्राप्त होता है तथा रोगी अगस्त्यमुनिको अर्घ्य देकर रोगसे छुटकारा पा जाता है। जिस देशमें भगवान् अगस्त्यका इस विधिसे पूजन होता है और अर्घ्य दिया जाता है, वहाँ कभी दुर्भिक्ष, अकाल आदिका भय नहीं होता। अगस्त्य-ऋषिके आख्यानको सुननेवाले सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकको प्राप्त करते हैं*। (अध्याय ११८)

नवोदित चन्द्र, गुरु एवं शुक्रको अर्घ्य देनेकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं नवोदित चन्द्रमाको अर्घ्य देनेकी विधि बता रहा हूँ। प्रतिमास शुक्ल पक्षकी द्वितीयाको प्रदोषकालके समय भूमिपर गोबरका एक मण्डल बनाकर उसमें रोहिणीसहित चन्द्रमाकी प्रतिमाको स्थापित करके श्वेत चन्दन, श्वेत पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, अनेक प्रकारके फल, नैवेद्य, दही, श्वेत वस्त्र तथा दूर्वाङ्कुर आदिसे उनका पूजन करे और इस मन्त्रसे चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे—

नवो नवोऽसि मासान्ते जायमानः पुनः पुनः।
आप्यायस्व स मे त्वेवं सोमराज नमो नमः॥

(उत्तरपर्व ११९। ६)

जो व्यक्ति इस विधिसे चन्द्रमाको प्रतिमास अर्घ्य देता है, उसे पुत्र, पौत्र, धन, पशु, आरोग्य

* इस व्रतका उल्लेख मत्स्यपुराण अध्याय ६१ आदिमें तथा इनकी कथा, इनका अनेक आश्रमोंमें निवास और अगस्त्यार्घ्यपर ऋग्वेद १। १७९। ६ से लेकर अग्नि, गरुड, बृहद्धर्म आदि पुराणोंतकमें अपार सामग्री भरी पड़ी है। हेमाद्रि, गोपाल तथा रत्नाकर आदिने भी इन्हें अपने व्रत-निबन्धोंमें कई पृष्ठोंमें संगृहीत किया है।

आदिकी प्राप्ति होती है तथा सौ वर्षतक सुख भोगकर अन्तमें वह चन्द्रलोकको और फिर मोक्षको प्राप्त करता है।

राजन्! शुक्रके दोषकी निवृत्तिके लिये यात्राके आरम्भमें, गमनकालमें और शुक्रोदयके समय शुक्रदेवकी पूजा अवश्य करनी चाहिये। शुक्रकी पूजन-विधिको मैं बता रहा हूँ, उसे आप ध्यानपूर्वक सुनें—

सुवर्ण, चाँदी अथवा कांस्यके पात्रमें मोतीयुक्त चाँदीकी शुक्रकी मूर्तिको पुष्प तथा श्वेत वस्त्रसे अलंकृतकर श्वेत चावलोंपर स्थापित करे। षोडशोपचार अथवा पञ्चोपचारसे शुक्रदेवकी पूजा करके इस मन्त्रसे उन्हें अर्घ्य प्रदान करे—

नमस्ते सर्वदेवेश नमस्ते भृगुनन्दन।
कवे सर्वार्थसिद्ध्यर्थं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व १२०।४)

तदनन्तर प्रणामपूर्वक मूर्तिको विसर्जित कर सवत्सा गौके साथ वह प्रतिमा तथा अन्य सभी सामग्री ब्राह्मणको दे दे। इस विधिसे शुक्रदेवकी पूजा करनेसे सभी मनःकामनाओंकी पूर्ति हो जाती है और फसल अच्छी होती है।

इसी प्रकार सुवर्ण आदिके पात्रमें सुवर्णकी बृहस्पतिकी मूर्ति स्थापित करे। प्रतिमाको सर्षपयुक्त जल तथा पञ्चगव्यसे स्नान कराकर पीत पुष्प और पीत वस्त्रोंसे अलंकृत करे। अनन्तर विविध उपचारोंसे उनका पूजन कर अर्घ्य प्रदान कर घीसे हवन करे। सवत्सा गौके साथ वह बृहस्पतिकी मूर्ति दक्षिणासहित ब्राह्मणको दान कर दे। यात्राकाल, बृहस्पतिकी संक्रान्ति और उनके उदयके समय जो इनका पूजन करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। शुक्र तथा बृहस्पतिका इस विधिसे पूजन करनेसे पूजकके घरमें उनका दोष नहीं होता।

(अध्याय ११९-१२०)

प्रकीर्ण-व्रत *

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं अत्यन्त गुप्त विविध प्रकीर्ण व्रतोंका वर्णन कर रहा हूँ। जो प्रातः स्नानकर अश्वत्थ-वृक्षका पूजन कर ब्राह्मणोंको तिलसे भरे हुए पात्रका दान करता है, उसे कृत-अकृत किसी कार्यके लिये शोक नहीं करना पड़ता। यह **पात्रव्रत** सभी पापोंको दूर करनेवाला है। सुवर्णकी बृहस्पतिकी प्रतिमा बनाकर उसे पीत वस्त्रादिसे अलंकृतकर पुण्य दिनमें ब्राह्मणको दान करना चाहिये। यह **वाचस्पतिव्रत** बल और बुद्धिप्रदायक है। एकभुक्त रहकर लवण, कटु, तिक्त, जीरक, मरिच, हींग और सोंठसे युक्त पदार्थ तथा शिलाजीत—ये सात पदार्थ सात कुटुम्बी ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये, इस **शिलाव्रत**को करनेसे लक्ष्मीलोककी तथा वाक्पटुता प्राप्त होती है। नक्तव्रतकर गाय, वस्त्र और सुवर्णका सुदर्शनचक्र तथा त्रिशूल गृहस्थ ब्राह्मणको दानमें दे और उन्हें प्रणाम कर '**शिवकेशवौ प्रीयेताम्**' यह वाक्य कहे। यह **शिवकेशवव्रत** महापातकोंको भी नष्ट कर देता है। एक वर्षतक एकभुक्त रहकर सुवर्णका बना हुआ बैल और उपस्करोंसहित तिलधेनु ब्राह्मणको दान करे। इस व्रतको **रुद्रव्रत** कहते हैं। यह व्रत सभी प्रकारके पाप एवं शोकको दूर करता है और व्रतीको शिवलोककी प्राप्ति कराता है।

पञ्चमी तिथिके दिन सर्वौषधिमिश्रित जलसे स्नानकर गृहस्थाश्रमके सात उपस्करों—घर, ऊखल, सूप, सिल, थाली, घड़ा तथा चूल्हाका दान गृहस्थ

* मत्स्यपुराणके १०१ वें अध्याय तथा पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय २० में भी स्वल्प भेदके साथ इन व्रतोंका वर्णन है।

ब्राह्मणको देना चाहिये। इसे **गृहव्रत** कहते हैं। इस व्रतको करनेसे सभी सुख प्राप्त होते हैं। इस व्रतका उपदेश अत्रिमुनिने अनसूयाको किया था।

सुवर्णका कमल तथा नील कमल शर्करापात्रसहित श्रद्धासे गृहस्थ ब्राह्मणको दान देना चाहिये। यह **नीलव्रत** है। इस व्रतको जो कोई भी व्यक्ति करता है, उसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। आषाढ़ आदि चार महीनोंमें तैलाभ्यङ्ग नहीं करना चाहिये। अन्तमें पारणामें तिलके तेलसे भरा हुआ नया घड़ा ब्राह्मणको दे और घी तथा पायसयुक्त भोजन कराये, इस व्रतको **प्रीतिव्रत** कहते हैं। इसे भक्तिपूर्वक करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

चैत्र मासमें दही, दूध, घी और गुड़, खाँड़, ईखके द्वारा बने पदार्थोंका त्याग करना चाहिये और बादमें दो ब्राह्मणोंकी पूजा कर दही, दूध तथा दो वस्त्र, रससे भरे पात्र आदि पदार्थ '**गौरी मे प्रीयताम्**' कहकर ब्राह्मणको देना चाहिये। यह **गौरीव्रत** है। इस व्रतको जो करता है, उसे गौरीलोककी प्राप्ति होती है।

त्रयोदशीसे एक वर्षतक नक्तव्रत करनेके बाद पारणामें दो वस्त्रोंसहित सुवर्णका अशोक-वृक्ष तथा ब्राह्मणको दक्षिणा देकर '**प्रद्युम्नः प्रीयताम्**' यह वाक्य कहना चाहिये। यह **कामव्रत** है। इस व्रतको करनेसे सभी प्रकारके शोक दूर हो जाते हैं तथा विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। आषाढ़ आदि चार मासोंमें अपने नख नहीं काटने चाहिये और बैगनका भोजन भी नहीं करना चाहिये। अन्तमें कार्तिक पूर्णिमाके दिन घी और शहदसे भरे हुए घटके साथ सुवर्णका बैगन ब्राह्मणको दान दे। इसे **शिवव्रत** कहते हैं। शिवव्रत करनेवाला व्यक्ति रुद्रलोकको प्राप्त करता है। इसी प्रकार पूर्णिमाको एकभुक्तव्रत करनेके बाद चन्दनसे पूर्णिमाकी मूर्ति बनाकर उसका पूजन करे। अनन्तर दूध, दही, घी, शहद और श्वेत शर्करा—इन पाँच सामग्रियोंसे भरे हुए पाँच घड़े पाँच ब्राह्मणोंको दानमें दे। इस व्रतको **पञ्चव्रत** कहते हैं। इस व्रतको करनेसे समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। हेमन्त और शिशिर-ऋतुमें उद्भूत पुष्पोंका त्याग कर फाल्गुनकी पूर्णिमाको यथाशक्ति सुवर्णके बने हुए तीन पुष्प ब्राह्मणको दान देकर '**शिवकेशवौ प्रीयेताम्**' इस वाक्यका उच्चारण करना चाहिये। इसे **सौगन्ध्यव्रत** कहते हैं। इस व्रतके करनेसे शिरःप्रदेशसे सुगन्धि उत्पन्न होती रहती है और व्रतीको उत्तम लोककी प्राप्ति होती है।

फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको नमक नहीं खाना चाहिये। जो व्यक्ति एक वर्षतक नियमपूर्वक इस **सौभाग्यव्रत**को करके अन्तमें सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा कर गृहके साथ गृहस्थके उपयोगी सामग्रियों तथा उत्तम शय्याका दान देकर '**भवानी प्रीयताम्**' इस वाक्यको कहता है, उसे गौरीलोककी प्राप्ति होती है। यह उत्तम सौभाग्यको प्रदान करनेवाला है।

संध्या-समय एक वर्षतक मौनव्रत रखकर पारणाकर तथा घृतकुम्भ, दो वस्त्र और घण्टा ब्राह्मणको दान करना चाहिये। इसे **सारस्वतव्रत** कहते हैं। यह व्रत विद्या और रूपको देनेवाला है। इस व्रतको करनेसे सरस्वतीलोककी प्राप्ति होती है।

एक वर्षतक पञ्चमी तिथिको उपवास करनेके बाद सुवर्णकमल और श्रेष्ठ गौ ब्राह्मणको दान देना चाहिये। इसे **लक्ष्मीव्रत** कहते हैं। यह व्रत कान्ति एवं सौभाग्यको प्रदान करता है। व्रतीको जन्म-जन्ममें लक्ष्मीकी प्राप्ति और अन्तमें विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

जो स्त्री चैत्र माससे आरम्भ कर नियमसे (प्रातःकाल) एक वर्षतक जलका पान करे और (भगवान् सूर्यके निमित्त) जलधारा प्रदान करे

और वर्षके अन्तमें घृतपूर्ण नवीन कलशका दान करे तो उसे सौभाग्य प्राप्त होता है। इसे **धाराव्रत** कहा गया है। यह सभी रोगोंका नाशक, कान्ति एवं सौभाग्य-प्रदायक तथा सपत्नीके दर्पको नाश करनेवाला है।

गौरीसहित रुद्र, लक्ष्मीसहित विष्णु और राज्ञीसहित भगवान् सूर्यकी मूर्तिको विधिपूर्वक स्थापित कर उनका पूजन करे, घण्टायुक्त गौ, दोहनी और दक्षिणाके साथ उस मूर्तिको ब्राह्मणको दान दे। इस व्रतको **देवव्रत** कहते हैं। इस व्रतको करनेसे शरीर दिव्य हो जाता है।

श्वेत चन्दन, श्वेत पुष्प आदिसे शिवलिङ्ग और विष्णुकी मूर्तिका प्रतिदिन एक वर्षतक उपलेपन करनेके बाद जलसे भरे हुए घटके साथ सुन्दर गाय ब्राह्मणको दान दे। यह **शुक्लव्रत** है। यह व्रत बहुत कल्याणकारी है। इस व्रतको करनेवाला शिवलोकको प्राप्त करता है।

अश्वत्थ, सूर्यनारायण और गङ्गाजीका नित्य प्रणामपूर्वक पूजनकर नौ वर्षतक एकभुक्तव्रत करे, अन्तमें सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा कर तीन गाय और सुवर्णका वृक्ष ब्राह्मणको दान दे। इस व्रतको **कीर्तिव्रत** कहते हैं। यह व्रत ऐश्वर्य और कीर्तिको देनेवाला है। प्रतिदिन गोबरका मण्डल बनाकर उसमें अक्षतोंद्वारा कमल बनाये, उसके ऊपर शिव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, गौरी तथा गणपतिको घीसे स्नान कराकर एक वर्षतक प्रतिदिन पूजन करनेके बाद सामवेदका गान करके अन्तमें आठ अंगुलके सुवर्ण-कमलसहित उत्तम गाय ब्राह्मणको दान दे। इस व्रतको **सामव्रत** कहते हैं। इस व्रतको करनेवाला व्यक्ति शिवलोकको प्राप्त करता है।

नवमीको एकभुक्तव्रत कर अन्तमें कन्याओंको भोजन कराये तथा उन्हें कंचुकी, दो वस्त्र प्रदान करे एवं सुवर्णका सिंहासन भी ब्राह्मणको दे। इस व्रतको **वीरव्रत** कहते हैं। जो स्त्री इस व्रतको करती है, उसे अनेक जन्मोंतक सुन्दर रूप, अखण्ड सौभाग्य और सुखकी प्राप्ति होती रहती है। व्रतीको शिवलोककी प्राप्ति होती है। अमावास्यासे जो एक वर्षपर्यन्त श्राद्ध करता है और श्रद्धापूर्वक पाँच पयस्विनी सवत्सा गौ, पीले वस्त्र तथा जलपूर्ण कलश दान करता है, वह व्यक्ति अपने पूर्वजोंका उद्धारकर विष्णुलोकको प्राप्त करता है। यह **पितृव्रत** कहलाता है।

जो स्त्री एक वर्षतक ताम्बूलका त्यागकर अन्तमें सुवर्णके तीन ताम्बूल बनाकर उसमें चूनेकी जगह मोती रखकर तथा सुपारीके चूर्णके साथ गणेशको निवेदित कर ब्राह्मणको दान करती है, उसे कभी भी दुर्भाग्यकी प्राप्ति नहीं होती, साथ ही मुखमें उत्तम सुगन्ध और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। यह **पत्रव्रत** है। चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ तथा आषाढ़—इन चार मासोंमें अथवा एक मास या एक पक्षपर्यन्त जलका अयाचितव्रत करना चाहिये। अन्तमें जलपूर्ण कलश, अन्न, वस्त्र, घी, सप्तधान्य, तिलपात्र और सुवर्ण ब्राह्मणको दे। इस व्रतको **वारिव्रत** कहते हैं। वारिव्रतको करनेवाला व्यक्ति एक कल्पपर्यन्त ब्रह्मलोकमें निवास करनेके बाद पृथ्वीपर चक्रवर्ती राजा होता है।

जो एक वर्षतक पञ्चामृतसे भगवान् शिव और भगवान् विष्णुको स्नान कराकर अन्तमें गाय, शङ्ख और सुवर्ण ब्राह्मणको दान करता है, वह बहुत कालतक शिवलोकमें निवास करता है और राजाका पद प्राप्त करता है। यह **वृत्तिव्रत** कहलाता है। जो व्यक्ति सर्वथा मांसाहारका परित्याग कर अन्तमें सुवर्णका हरिण और सवत्सा गौ ब्राह्मणको दान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। इसे **अहिंसाव्रत** कहते हैं, यह सम्पूर्ण शान्तियोंको देनेवाला है। जो माघ मासमें प्रातःकाल स्नानकर

अन्तमें ब्राह्मण-दम्पतिकी वस्त्र, आभूषण, पुष्पमाला आदिसे पूजा कर उनको स्वादिष्ट भोजन कराता है, वह आरोग्य और सौभाग्यको प्राप्त करता है और कल्पपर्यन्त सूर्यलोकमें निवास करता है। इस व्रतको **सूर्यव्रत** कहते हैं।

जो आषाढ़ आदि चार मासोंमें प्रातःकाल स्नानकर कार्तिक पूर्णिमाके दिन घृतकुम्भ और गौ गृहस्थ ब्राह्मणको दान देकर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मण-भोजन कराता है, उसकी सभी मनःकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और उसे अन्तमें विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। यह **वैष्णवव्रत** कहलाता है। जो एक अयनसे दूसरे अयनतक मधु और घीका त्याग करके अन्तमें घी तथा गौ ब्राह्मणको दानकर घी और पायस ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, उसे शील और आरोग्यकी प्राप्ति होती है। इस व्रतको **शीलव्रत** कहते हैं। जो (नियतकालतक) प्रतिदिन संध्याके समय दीपदान करता है तथा अभक्ष्य पदार्थ एवं तेलका सेवन नहीं करता, फिर व्रत समाप्त होनेपर ब्राह्मणको दीपक, सुवर्णके बने चक्र, त्रिशूल और दो वस्त्र दान करता है, वह महान् तेजस्वी होता है। यह कान्ति प्रदान करनेवाला व्रत **दीपव्रत** कहलाता है।

जो स्त्री एकभुक्त रहकर एक सप्ताहतक गन्ध, पुष्प, रक्त चन्दन आदिसे भगवती गौरीकी पूजा करती है, साथ ही प्रत्येक दिन क्रम-क्रमसे कुमुदा, माधवी, गौरी, भवानी, पार्वती, उमा तथा काली—इन सात नामोंसे एक-एक सुवासिनी स्त्रीका पुष्प, चन्दन, कुंकुम, ताम्बूल तथा नारिकेल एवं अलंकारोंसे पूजनकर '**कुमुदा प्रीयताम्**' इस प्रकारसे कहकर विसर्जन करती है तथा आठवें दिन उन्हीं पूजित सुवासिनी स्त्रियोंको निमन्त्रित कर उन्हें षड्रस भोजन आदिसे तृप्तकर वस्त्र, माला तथा आभूषण एवं दर्पण आदि प्रदान करती है, साथ ही एक ब्राह्मणकी भी पूजा करती है, उसे सुन्दर देह और सौभाग्य प्राप्त होता है, इसे **सप्तसुन्दरकव्रत** कहा जाता है। चैत्र मासमें सभी प्रकारके सुगन्धित पदार्थोंका त्याग करना चाहिये और अन्तमें सुगन्धद्रव्यसे पूर्ण एक सीपी, दो सफेद वस्त्र अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणाके साथ ब्राह्मणको दान देना चाहिये। इस व्रतको **वरुणव्रत** कहते हैं। इसको करनेसे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और वरुणलोककी प्राप्ति होती है।

वैशाख मासमें नमकका त्यागकर अन्तमें सवत्सा गौ ब्राह्मणको दे। यह **कान्तिव्रत** है। इस व्रतको करनेसे कीर्ति और कान्तिकी वृद्धि होती है तथा अन्तमें विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। जो तीन पलसे अधिक परिमाणका सोनेका ब्रह्माण्ड बनाकर उसे तिलकी ढेरीमें रखे तथा 'मैं अहंकाररूपी तिलका दान करनेवाला हूँ', ऐसी भावना करके घीसे अग्निको तथा दक्षिणासे ब्राह्मणको तृप्त करे एवं तीन दिनतक तिलव्रती रहे। फिर माला, वस्त्र तथा आभूषणोंद्वारा ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करके विश्वात्माकी तृप्तिके उद्देश्यसे किसी शुभ दिनमें तिलसहित ब्रह्माण्ड ब्राह्मणको दान करे तो ऐसा करनेवाला पुरुष पुनर्जन्मसे रहित ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। इसका नाम **ब्रह्मव्रत** है। यह मनुष्योंको मोक्ष देनेवाला है।

जो तीन दिनतक दुग्धका आहार कर सुवर्णसहित सवत्सा गौ तथा एक पलसे अधिक सुवर्णसे कल्पवृक्ष बनाकर चावलोंके ढेरपर स्थापित कर उत्तम वस्त्र और पुष्पमालाओंसे ढककर ब्राह्मणको दान करता है, उसे कल्पभर स्वर्गमें निवास-स्थान मिलता है, इसे **कल्पव्रत** कहते हैं। जो अयाचितव्रतकर सभी अलंकारोंसे अलंकृत एक श्रेष्ठ बछियाका व्यतीपात तथा ग्रहण, अयन-संक्रान्तिमें ब्राह्मणको दान करता है, उसे परलोकगमनमें

कोई कष्ट नहीं होता तथा उसका मार्ग सुखदायी होता है, इसे **द्वारव्रत** कहते हैं।

जो एक वर्षतक अष्टमीको रात्रिमें एक बार भोजन करता है तथा अन्तमें ब्राह्मणको पयस्विनी गौका दान करता है, वह इन्द्रलोकमें जाता है। इसे **सुगतिव्रत** कहते हैं। जो हेमन्त और शिशिर-ऋतुमें ईंधनका दान करता है और अन्तमें घी तथा गाय ब्राह्मणको दान करता है, वह आरोग्य, द्युति, कान्ति तथा ब्रह्मपदको प्राप्त करता है। यह **वैश्वानरव्रत** सभी पापोंका नाशक है। जो एकादशीको नक्तव्रतकर चैत्र मासके चित्रा नक्षत्रमें सुवर्णका शङ्ख और चक्र ब्राह्मणको दान करता है, वह कल्पपर्यन्त विष्णुलोकमें निवास कर पृथ्वीपर राजाका पद प्राप्त करता है। यह **विष्णुव्रत** कहलाता है। जो एक वर्षतक पञ्चमीको दुग्धाहार कर अन्तमें दो गाय ब्राह्मणको दान करता है, वह एक कल्पतक लक्ष्मीलोकमें निवास करता है। यह **देवीव्रत** कहलाता है। जो एक वर्षतक सप्तमीके दिन नक्तव्रत कर अन्तमें पयस्विनी गाय ब्राह्मणको दान करता है, उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। इसे **भानुव्रत** कहते हैं। जो चतुर्थीको एक वर्षतक रात्रिमें भोजन करता है और अन्तमें आठ गौएँ अग्निहोत्री ब्राह्मणको दान करता है, उसके सभी तरहके विघ्न दूर हो जाते हैं। इसे **विनायकव्रत** कहते हैं। जो चातुर्मास्यमें फलोंका त्याग कर कार्तिकमें सुवर्णका फल, दो गौ, दो श्वेत वस्त्र और घीसे पूर्ण घट दक्षिणासहित ब्राह्मणको दान करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। इसे **फलव्रत** कहते हैं।

एक वर्षतक सप्तमीको उपवास कर अन्तमें सुवर्णका कमल बनाकर और कांस्यकी दोहनीसहित सवत्सा गौ पौराणिक ब्राह्मणको दान करनेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। यह **सौरव्रत** है। जो बारह द्वादशियोंको उपवास करके अन्तमें यथाशक्ति वस्त्रसहित जलपूर्ण बारह घट ब्राह्मणोंको दान करता है, उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। यह **गोविन्दव्रत** भगवान् गोविन्दके पदको प्राप्त करानेवाला है।

कार्तिक पूर्णिमाको वृषोत्सर्गकर रात्रिमें भोजन करना चाहिये। इस व्रतको **वृषव्रत** कहते हैं। इस व्रतको करनेसे गोलोककी प्राप्ति होती है। कृच्छ्र-प्रायश्चित्तके अन्तमें गोदान कर यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। यह **प्राजापत्यव्रत** है। इससे पापशुद्धि होती है। जो एक वर्षतक चतुर्दशीको नक्तव्रत करके अन्तमें दो गायोंका दान करता है, वह शैवपदको प्राप्त करता है। यह **त्र्यम्बकव्रत** है। सात रात्रि उपवास कर ब्राह्मणको घृतपूर्ण घटका दान करे। इसे **ब्रह्मव्रत** कहते हैं, इससे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है।

कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको उपवास कर रात्रिके समय पञ्चगव्य-पान करे अर्थात् कपिला गौका मूत्र, कृष्णा गौका गोबर, श्वेत गौका दूध, लाल गौका दही तथा कबरी गौका घी लेकर मन्त्रोंसे कुशोदक मिलाकर प्राशन करे। दूसरे दिन प्रातः स्नानकर देवता और पितरोंका तर्पण आदि करनेके बाद ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। इसे **ब्रह्मकूर्चव्रत** कहते हैं। इस व्रतको करनेसे बाल्य, यौवन और बुढ़ापेमें किये गये सभी प्रकारके पापोंका नाश हो जाता है। जो एक वर्षतक तृतीयाको बिना पकाये अन्न, फल इत्यादिका भोजन करता है और अन्तमें सुन्दर गौ ब्राह्मणको दानमें देता है, वह शिवलोकमें निवास करता है। इसे **ऋषिव्रत** कहते हैं।

एक वर्षतक ताम्बूल आदि मुखवासके पदार्थोंका त्यागकर अन्तमें ब्राह्मणको गायका दान करे। यह **सुमुखव्रत** है। इससे कुबेरलोककी प्राप्ति होती है। रात्रिभर जलमें निवास कर प्रातःकाल जो गोदान करता है, उसे वरुणलोककी प्राप्ति होती है। यह

वरुणव्रत कहलाता है। जो चान्द्रायणव्रत करनेके बाद सुवर्णका चन्द्रमा बनाकर ब्राह्मणको दान करता है, उसे चन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। यह **चन्द्रव्रत** है।

ज्येष्ठ मासकी अष्टमी और चतुर्दशीको पञ्चाग्नि-सेवन करके सुवर्णसहित गौका ब्राह्मणको दान करे, यह **रुद्रव्रत** है। इससे रुद्रलोककी प्राप्ति होती है। जो एक वर्षतक तृतीयाको शिवालयमें उपलेपन करनेके बाद गोदान करता है वह स्वर्गलोक प्राप्त करता है। यह **भवानीव्रत** है।

जो माघ मासकी सप्तमी तिथिको रात्रिमें आर्द्र वस्त्रोंको धारण किये रहता है और उपवास कर ब्राह्मणको गौका दान करता है, वह कल्पभरतक स्वर्गमें निवास करता है। यह **तापनव्रत** कहलाता है। जो तीन रात्रि उपवास कर फाल्गुनकी पूर्णिमाको गृहदान करता है, उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। यह **धामव्रत** है। पूर्णमासीको उपवासकर तीनों संध्याओंमें वस्त्र, आभूषण, भोजन आदि देकर सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिये। इस व्रतको **इन्दुव्रत** कहते हैं। इस व्रतके प्रभावसे उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। जो शुक्ल पक्षकी द्वितीयाको नमकसे भरे हुए काँसेके पात्रके साथ वस्त्र और दक्षिणा एक वर्षतक ब्राह्मणको देता है और अन्तमें शिवमन्दिरमें गोदान करता है, वह कल्पभरतक शिवलोकमें निवास करनेके बाद राजाओंका राजा होता है। इसे **सोमव्रत** कहते हैं। एक वर्षतक प्रत्येक प्रतिपदाको एक समय भोजन करनेके बाद कपिला गौ ब्राह्मणको दान करे। यह **आग्नेयव्रत** है। इसके करनेसे अग्निलोककी प्राप्ति होती है।

जो माघ मासकी एकादशी, चतुर्दशी और अष्टमीको एकभुक्त रहता है तथा वस्त्र, जूता, कम्बल, चर्म आदि शीत निवारण करनेवाली वस्तुओंका दान करता है तथा चैत्रमें इन्हीं तिथियोंमें छाता, पंखा आदि उष्णनिवारक पदार्थोंका दान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञ करनेका फल प्राप्त होता है। यह **सौख्यव्रत** है। एक वर्षतक दशमी तिथिको एकभुक्तव्रत करके अन्तमें सुवर्णकी स्त्री-रूप दस दिशाओंकी मूर्ति तिलोंकी राशिपर स्थापितकर गायसहित ब्राह्मणको दान करनेसे महापातक दूर हो जाते हैं। यह **विश्वव्रत** है। इसे करनेसे ब्रह्माण्डका आधिपत्य मिलता है। जो शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको नक्तव्रत करके सूर्यनारायणका पूजन कर सप्तधान्य और लवण ब्राह्मणको दान देता है, वह अपने सात कुलोंका उद्धार करता है। यह **धान्यव्रत** है। एक मास उपवासकर जो ब्राह्मणको गाय प्रदान करता है, उसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। इसे **भीमव्रत** कहते हैं।

जो तीस पलसे अधिक पर्वत और समुद्रोंसहित स्वर्णकी पृथ्वी बनाकर तिलोंकी राशिपर रखकर कुटुम्बी ब्राह्मणको दान करता है तथा दूध पीकर रहता है, वह सात कल्पतक रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यह **महीव्रत** कहलाता है।

माघ अथवा चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको गुड़का भक्षण करे तथा सभी उपस्करोंसहित गुडधेनु ब्राह्मणको दान दे, उसे **उमाव्रत** कहते हैं। इस व्रतको करनेवाला गौरीलोकमें निवास करता है। जो एक वर्षतक केवल एक ही अन्नका भोजन करता है और भक्ष्य पदार्थोंके साथ जलका घड़ा दान करता है, वह कल्पपर्यन्त शिवलोकमें निवास करता है। इसे **प्राप्तिव्रत** कहते हैं। जो कार्तिकसे आरम्भ कर प्रत्येक मासकी तृतीयाको रात्रिमें गोमूत्रमें पकायी गयी लपसीका प्राशन करता है, वह गौरीलोकमें एक कल्पतक निवास करता है, अनन्तर पृथ्वीपर राजा होता है। यह महान् कल्याणकारी **रुद्रव्रत** है। जो पुरुष कन्यादान करता है अथवा कराता है, वह अपने इक्कीस कुलोंसहित ब्रह्मलोकको

प्राप्त करता है। कन्यादानसे बढ़कर कोई भी दान उत्तम नहीं है। इस दानको करनेसे अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। यह **कन्यादानव्रत** है। तिलपिष्टका हाथी बनाकर दो लाल वस्त्र, अङ्कुश, चामर, माला आदिसे उसको सजाकर तथा ताम्रपात्रमें स्थापित करनेके बाद वस्त्राभूषण आदिसे पत्नीसहित ब्राह्मणका पूजन करके गलेतक जलमें स्थित होकर वह हाथी उनको दान कर दे। यह **कान्तारव्रत** है। इस व्रतको करनेसे जंगल आदिसे सम्बन्धित समस्त संकट और पापोंसे छुटकारा मिल जाता है।

जो ज्येष्ठा नक्षत्र आनेपर '**त्रातारमिन्द्र-मवितारमिन्द्रम्०**' आदि मन्त्रोंसे इन्द्रदेवताका व्रत-पूजन तथा हवन करते हैं, वे प्रलयपर्यन्त इन्द्रलोकमें निवास करते हैं। इसे **पुरन्दरव्रत** या **इन्द्रव्रत** कहते हैं। जो पञ्चमीको दूधका आहार करके सुवर्णकी नाग-प्रतिमा ब्राह्मणको देता है, उसे कभी सर्पका भय नहीं रहता। शुक्ल पक्षकी अष्टमीको उपवास कर दो श्वेत वस्त्र और घण्टासे भूषित बैल ब्राह्मणको दान दे। इसे **वृषव्रत** कहते हैं। इस व्रतको करनेवाला एक कल्पतक शिवलोकमें निवास करता है तथा पुनः राजाका पद प्राप्त करता है। उत्तरायणके दिन एक सेर घीसे सूर्यनारायणको स्नान कराकर उत्तम घोड़ी ब्राह्मणको दे। इस व्रतको **राज्ञीव्रत** कहते हैं। इस व्रतको करनेवाले व्यक्तिको अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है तथा अन्तमें वह पुत्र, भाई, स्त्री आदिसहित सूर्यलोकमें निवास करता है। जो नवमीको नक्तव्रतकर भगवती विन्ध्यवासिनीकी पूजा कर पिञ्जरके साथ सुवर्णका शुक ब्राह्मणको प्रदान करता है, उसे उत्तम वाणी और अन्तमें अग्निलोककी प्राप्ति होती है। इसे **आग्नेयव्रत** कहते हैं।

विष्कुम्भ आदि सत्ताईस योगोंमें नक्तव्रत करके क्रमसे घी, तेल, फल, ईख, जौ, गेहूँ, चना, सेम, शालि-चावल, नमक, दही, दूध, वस्त्र, सुवर्ण, कम्बल, गाय, बैल, छतरी, जूता, कपूर, कुंकुम, चन्दन, पुष्प, लोहा, ताम्र, कांस्य और चाँदी ब्राह्मणको देना चाहिये। यह **योगव्रत** है। इस व्रतको करनेवाला व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और उसको कभी अपने इष्टसे वियोग नहीं होता। जो कार्तिकी पूर्णिमासे आरम्भ कर आश्विनकी पूर्णिमातक बारह पूर्णिमाओंमें क्रमसे मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन—इन बारह राशियोंकी स्वर्णप्रतिमाओंको वस्त्र, माल्य आदिसे अलंकृत एवं पूजितकर दक्षिणाके साथ ब्राह्मणको दान करता है, उसके सम्पूर्ण उपद्रवोंका शमन हो जाता है एवं सारी आशाएँ पूर्ण हो जाती हैं और उसे सोमलोककी प्राप्ति होती है। यह **राशिव्रत** कहलाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! मैंने इन विविध व्रतोंको बतलाया है, इन व्रतोंकी विधि श्रवण करने या पढ़नेमात्रसे ही पातक, महापातक और उपपातक नष्ट हो जाते हैं। जो कोई भी व्यक्ति इन व्रतोंको भक्तिपूर्वक करेगा, उसे धन, सौख्य, संतान, स्वर्ग आदि कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं होगा। (अध्याय १२१)

माघ-स्नान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! कलियुगमें मनुष्योंको स्नान-कर्ममें शिथिलता रहती है, फिर भी माघ-स्नानका विशेष फल होनेसे इसकी विधिका वर्णन कर रहा हूँ। जिसके हाथ, पाँव, वाणी, मन अच्छी तरह संयत हैं और जो विद्या, तप तथा कीर्तिसे समन्वित हैं, उन्हें ही तीर्थ, स्नान-दान आदि पुण्य कर्मोंका शास्त्रोंमें निर्दिष्ट फल प्राप्त होता है। परंतु श्रद्धाहीन, पापी, नास्तिक, संशयात्मा

और हेतुवादी (कुतार्किक)—इन पाँच व्यक्तियोंको शास्त्रोक्त तीर्थ-स्नान आदिका फल नहीं मिलता[१]।

प्रयाग, पुष्कर तथा कुरुक्षेत्र आदि तीर्थोंमें अथवा चाहे जिस स्थानपर माघ-स्नान करना हो तो प्रातःकाल ही स्नान करना चाहिये। माघ मासमें प्रातः सूर्योदयसे पूर्व स्नान करनेसे सभी महापातक दूर हो जाते हैं और प्राजापत्य-यज्ञका फल प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण सदा प्रातःकाल स्नान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। उष्ण जलसे स्नान, बिना ज्ञानके मन्त्रका जप, श्रोत्रिय ब्राह्मणके बिना श्राद्ध और सायंकालके समय भोजन व्यर्थ होता है। वायव्य, वारुण, ब्राह्म और दिव्य—ये चार प्रकारके स्नान होते हैं। गायोंके रजसे वायव्य, मन्त्रोंसे ब्राह्म, समुद्र, नदी, तालाब इत्यादिके जलसे वारुण तथा वर्षाके जलसे स्नान करना दिव्य स्नान कहलाता है। इनमें वारुण स्नान विशिष्ट स्नान है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी और बालक, तरुण, वृद्ध, स्त्री तथा नपुंसक आदि सभी माघ मासमें तीर्थोंमें स्नान करनेसे उत्तम फल प्राप्त करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मन्त्रपूर्वक स्नान करें और स्त्री तथा शूद्रोंको मन्त्रहीन स्नान करना चाहिये। माघ मासमें जलका यह कहना है कि जो सूर्योदय होते ही मुझमें स्नान करता है, उसके ब्रह्महत्या, सुरापान आदि बड़े-से-बड़े पाप भी हम तत्काल धोकर उसे सर्वथा शुद्ध एवं पवित्र कर डालते हैं[२]।

माघ-स्नानके व्रत करनेवाले व्रतीको चाहिये कि वह संन्यासीकी भाँति संयम-नियमसे रहे, दुष्टोंका साथ नहीं करे। इस प्रकारके नियमोंका दृढ़तासे पालन करनेसे सूर्य-चन्द्रके समान उत्तम ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है।

पौष-फाल्गुनके मध्य मकरके सूर्यमें तीस दिन प्रातः माघ-स्नान करना चाहिये। ये तीस दिन विशेष पुण्यप्रद हैं। माघके प्रथम दिन ही संकल्पपूर्वक माघ-स्नानका नियम ग्रहण करना चाहिये। स्नान करने जाते समय व्रतीको बिना वस्त्र ओढ़े जानेसे जो कष्ट सहन करना पड़ता है, उससे उसे यात्रामें पग-पगपर अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। तीर्थमें जाकर स्नानकर मस्तकपर मिट्टी लगाकर सूर्यको अर्घ्य देकर पितरोंका तर्पण करे। जलसे बाहर निकलकर इष्टदेवको प्रणामकर शङ्ख-चक्रधारी पुरुषोत्तम भगवान् श्रीमाधवका पूजन करे। अपनी सामर्थ्यके अनुसार यदि हो सके तो प्रतिदिन हवन करे, एक बार भोजन करे, ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करे और भूमिपर शयन करे। असमर्थ होनेपर जितना नियमका पालन हो सके उतना ही करे, परंतु प्रातःस्नान अवश्य करना चाहिये। तिलका उबटन, तिलमिश्रित जलसे स्नान, तिलोंसे पितृतर्पण, तिलका हवन, तिलका दान और तिलसे बनी हुई सामग्रीका भोजन करनेसे किसी भी प्रकारका कष्ट नहीं होता[३]। तीर्थमें शीतके निवारण करनेके लिये अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिये। तैल और आँवलेका दान करना चाहिये। इस प्रकार एक माहतक स्नानकर अन्तमें वस्त्र, आभूषण, भोजन आदि देकर ब्राह्मणका पूजन करे और कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र, रत्न तथा अनेक प्रकारके पहननेवाले कपड़े, रजाई, जूता एवं जो भी शीतनिवारक वस्त्र हैं, उनका दान कर '**माधवः प्रीयताम्**' यह वाक्य कहना चाहिये। इस प्रकार माघ मासमें स्नान करनेवालेके अगम्यागमन, सुवर्णकी चोरी आदि गुप्त अथवा प्रकट जितने भी पातक हैं,

१-यस्य हस्तौ च पादौ च वाङ्मनस्तु सुसंयतम्। विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥
अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः। हेतुनिष्ठाश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः॥ (उत्तरपर्व १२२। ३-४)

२-माघमासे रटन्त्यापः किञ्चिदभ्युदिते रवौ। ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा कं कं तं तं पुनीमहे॥ (उत्तरपर्व १२२। १५)

३-तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलभोक्ता तिलोदकी। तिलहोता च दाता च षट्तिलो नावसीदति॥ (उत्तरपर्व १२२। २७)

सभी नष्ट हो जाते हैं। माघ-स्नायी पिता, पितामह, प्रपितामह तथा माता, मातामह, वृद्धमातामह आदि इक्कीस कुलोंसहित समस्त पितरों आदिका उद्धार कर और सभी आनन्दोंको प्राप्तकर अन्तमें विष्णुलोकको प्राप्त करता है[१]।

(अध्याय १२२)

स्नान और तर्पण-विधि

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! स्नानके बिना न तो शरीर ही निर्मल होता है और न भावकी ही शुद्धि होती है, अतः शरीरकी शुद्धिके लिये सबसे पहले स्नान करनेका विधान है। घरमें रखे हुए अथवा तुरंतके निकाले हुए जलसे स्नान करना चाहिये। (किसी जलाशय या नदीका स्नान सुलभ हो तो और उत्तम है।) मन्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुषको मूल मन्त्रके द्वारा तीर्थकी कल्पना कर लेनी चाहिये। '**ॐ नमो नारायणाय**'—यह मूल मन्त्र है। पहले हाथमें कुश लेकर विधिपूर्वक आचमन करे तथा मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए बाहर-भीतरसे पवित्र रहे। फिर चार हाथका चौकोर मण्डल बनाकर उसमें निम्नाङ्कित मन्त्रोंद्वारा भगवती गङ्गाका आवाहन करे—'गङ्गे! तुम भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई हो, श्रीविष्णु ही तुम्हारे देवता हैं, इसीलिये तुम्हें वैष्णवी कहते हैं। देवि! तुम जन्मसे लेकर मृत्युतक मेरे द्वारा किये गये समस्त पापोंसे मेरा त्राण करो। स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्षमें कुल साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं, इसे वायुदेवताने (गिनकर) कहा है। माता जाह्नवि! वे सब-के-सब तीर्थ तुम्हारे जलमें स्थित हैं। देवलोकमें तुम्हारा नाम नन्दिनी और नलिनी है। इनके अतिरिक्त क्षमा, पृथ्वी, आकाशगङ्गा, विश्वकाया, शिवा, अमृता, विद्याधरा, सुप्रसन्ना, लोक-प्रसादिनी, क्षेम्या, जाह्नवी, शान्ता और शान्तिप्रदायिनी आदि भी तुम्हारे अनेकों नाम हैं[२]।' जहाँ स्नानके समय इन पवित्र नामोंका कीर्तन होता है, वहाँ त्रिपथगामिनी भगवती गङ्गा उपस्थित हो जाती हैं।

सात बार उपर्युक्त नामोंका जप करके सम्पुटके आकारमें दोनों हाथोंको जोड़कर उनमें जल ले। तीन, चार, पाँच या सात बार उसे अपने मस्तकपर डाले, फिर विधिपूर्वक मृत्तिकाको अभिमन्त्रित कर अपने अङ्गोंमें लगाये। अभिमन्त्रित करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे सर्वं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
नमस्ते सर्वलोकानामसुधारिणि सुव्रते॥

(उत्तरपर्व १२३। १२-१३)

'वसुन्धरे! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चला करते हैं। भगवान् श्रीविष्णुने भी वामनरूपसे तुम्हें एक पैरसे नापा था। मृत्तिके! मैंने जो बुरे कर्म किये हों, उन सबोंको दूर कर दो। देवि! भगवान् श्रीविष्णुने सैकड़ों भुजाओंवाले वराहका रूप धारण करके तुम्हें जलसे बाहर निकाला था। तुम सम्पूर्ण लोकोंके समस्त प्राणियोंमें प्राण संचार करनेवाली हो। सुव्रते! तुम्हें मेरा नमस्कार है।'

१-माघ-स्नान-माहात्म्यके नामसे विभिन्न पुराणोंके कई स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। जिनका सारभूत अंश इस अध्यायमें उद्धृत है।

२-विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता। पाहि नस्त्वेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात्॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत्। दिवि भूम्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि॥
नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च। क्षमा पृथ्वी च विहगा विश्वकाया शिवामृता॥
विद्याधरा सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसादिनी। क्षेम्या तथा जाह्नवी च शान्ता शान्तिप्रदायिनी॥ (उत्तरपर्व १२३। ५—८)